रत्नाकर

अर्थात्

गोलोकवासी श्री जगन्नाथदास रत्नाकर
के संपूर्ण काव्यों का संग्रह



प्रकाशक

काशी-नागरीप्रचारिणी सभा

सं० १९९०

भूमिका

आधुनिक युग के व्रज-भाषा के सर्वश्रेष्ठ कवि स्व० श्री बाबू जगन्नाथदास जी रत्नाकर के काव्य-ग्रंथों और कविताओं का यह संग्रह हिंदी-पाठकों के सामने रखा जाता है। यद्यपि रत्नाकर जी ने गद्य में भी बहुत से लेख आदि लिखे थे और ऐसे लेख भी लिखे थे जिनके कारण हिंदी-संसार में आंदोलन सा मच गया था, तो भी इसमें संदेह नहीं कि रत्नाकर जी कवि ही थे और बहुत ऊँचे दरजे के कवि थे। उनका सारा महत्त्व कवि के नाते ही था और इसी लिए इस संग्रह में उनके सब काव्य और कविताएँ ही रखी गई हैं। आशा है, रत्नाकर जी की कृतियों का यह संग्रह—रत्नाकर जी का यह सर्वस्व—हिंदी-संसार में उचित आदर और सम्मान प्राप्त करेगा।

रत्नाकर जी की सबसे प्राचीन कविता-पुस्तक "हिंडोला" है। यह प्रबंध-काव्य है और पहले पहल संवत् १९५१ में प्रकाशित हुआ था। दो तीन वर्ष बाद रत्नाकर जी ने इसका संशोधन किया था और स्थान स्थान पर इसमें कुछ पाठ-भेद भी किया था। आपकी दूसरी रचना "समालोचनादर्श" है जो अनुवाद है, और नागरी-प्रचारिणी पत्रिका के प्रथम वर्ष के प्रथम अंक में प्रकाशित हुआ था। इसके उपरांत आपने "हरिश्चंद्र" नाम का एक छोटा काव्य लिखा था जो सबसे पहले काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा-द्वारा प्रकाशित "भाषासारसंग्रह" नामक पाठ्य-पुस्तक में छपा था। इस बीच में आपने "कल-काशी" नामक एक काव्य की रचना आरंभ की थी जिसमें काशी का वर्णन था। पर दुख है कि उसे आप समाप्त न कर सके और वह अधूरा ही रह गया। यहाँ तक कि उसके अंतिम छंद की चौथी पंक्ति भी नहीं लिखी गई। आप समय समय पर "उद्धव-शतक" की भी रचना करते चलते थे और उसके बहुत से छंद आपने रच भी डाले थे, पर उनकी संख्या सौ से कुछ कम ही थी कि उसकी कापी आपके यहाँ से चोरी हो गई। उसमें के बहुत से छंद तो आपने अपनी स्मृति की सहायता से ही फिर से लिख डाले और शेष छंदों की पूर्ति फिर से नये सिरे से की। यह ग्रंथ प्रयाग के रसिक-मंडल-द्वारा प्रकाशित हुआ है। इसके उपरांत श्रीमती महारानी अयोध्या की प्रेरणा से आपने अपने सुप्रसिद्ध काव्य "गंगावतरण" की रचना आरंभ की। यह गंगावतरण पूरा हो जाने पर प्रयाग के इंडियन प्रेस से प्रकाशित हुआ और इसके लिए आपको प्रयाग की हिंदुस्तानी एकेडेमी से ५००) पुरस्कार मिला था।

रत्नाकर जी का विचार था कि एक रत्नाष्टक लिखा जाय जिसमें १४ अष्टक हों और ८-८ कविताओं के देवाष्टक और वीराष्टक भी लिखे जायँ। पर इन अष्टकों का आप बहुत ही थोड़ा काम कर सके थे और इस संबंध की आपकी इच्छा काल के कुटिल प्रहार के कारण पूरी न हो सकी। प्रत्येक अष्टक के जितने छंद आप लिख सके थे, उतने ही छंद उन्हीं अष्टक-नामों के शीर्षक में इस संग्रह में दिये गये हैं। अंत में आपके फुटकर छंदों का संग्रह है। जिन

अज्ञात होने के कारण छोड़ दिया गया है। रत्नाकर जी के यहाँ इधर-उधर बिखरी हुई जो सामग्री प्राप्त हो सकी, उसी के आधार पर यह फुटकर संग्रह प्रस्तुत किया गया है। संभव है कि इनके अतिरिक्त और भी बहुत से छंद आदि हों जो या तो लिखे न गये हों और या हमें न मिले हों। जिन सज्जनों के पास ऐसे छंद आदि हों जो इस संग्रह में न आये हों, वे यदि कृपापूर्वक वे छंद आदि हमें लिख भेजें तो इस संग्रह के आगामी संस्करण में उनका समुचित सदुपयोग किया जायगा।

रत्नाकर जी की जो कृतियाँ इस संग्रह में संगृहीत हैं, इनके अतिरिक्त उनकी और दो बहुत बड़ी और सबसे अधिक महत्त्व की कृतियाँ हैं। इनमें से पहली कृति "बिहारी-रत्नाकर" है जो बिहारी-सतसई की सबसे बड़ी और सबसे उत्कृष्ट तथा बहुमूल्य टीका है। पर वह कृति इस संग्रह में नहीं ली गई है और इसका मुख्य कारण यही है कि वह टीका है—रत्नाकर जी की स्वतंत्र या मौलिक कृति नहीं। दूसरी और इससे भी बड़ी तथा चिरस्थायी कृति "सूर-सुधा" है। रत्नाकर जी ने बहुत दिनों तक बहुत अधिक परिश्रम करके और अपने पास का बहुत सा धन व्यय करके सूर-सागर का संग्रह और संपादन किया था। वह कार्य आप पूरा नहीं कर सके थे और उसका केवल तीन चतुर्थांश करके ही स्वर्गवासी हो गये थे। जितना अंश आपने ठीक किया था, उसमें भी अभी कुछ काम बाकी था। इस संबंध में उन्होंने जो कुछ काम किया था और जो सामग्री आदि एकत्र की थी, वह सब उनके सुयोग्य पुत्र श्रीयुक्त राधाकृष्णदास जी ने काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा को समर्पित कर दी और अब सभा उसे ठीक करके उसके प्रकाशन की व्यवस्था कर रही है। आशा है, बहुत शीघ्र इसका प्रकाशन आरंभ हो जायगा और "रत्नाकर" का यह सबसे बड़ा रत्न हिंदी संसार को अपने प्रकाश से चकित और विस्मित कर देगा।

रत्नाकर जी के इस प्रथम वार्षिक श्राद्ध के अवसर पर उनके ४० वर्ष पुराने मित्र की यह श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्मा के सुख और शांति के लिए परम आदर और स्नेहपूर्वक समर्पित है। आशा है, इससे हिंदी-प्रेमियों का यथेष्ट मनोरंजन और उपकार होगा और अमर रत्नाकर की कीर्ति सदा स्थायी तथा अक्षुण्ण बनी रहेगी। एवमस्तु।

काशी
१ जून १९३३

श्यामसुंदरदास

प्रस्तावना

विगत वर्ष इन्हीं दिनों जब "रत्नाकर" जी के स्वास्थ्य-समाचार की प्रतीक्षा करते हुए हरिद्वार से उनके स्वर्गवासी होने का तार मिला, तब मर्माहत होकर भी एक क्षणिक कल्पना के प्रकाश में हमने देखा कि हमारे कविमित्र के निधन से हरिद्वार का रूढ़िबंधन छूट गया है और गंगावतरण की पंक्ति—"करि हरिद्वार कौ अति सुगम द्वार अगम हरिलोक कौ" सार्थक हो गई है। रत्नाकर में हरि का निवास कहा जाता है। तो उनके द्वार पर जगन्नाथदास की यह सद्गति स्वाभाविक ही हुई। "भाव कुभाव अनख आलसहू" नाम लेते ही जब दिशाएँ मंगलमयी हो जाती हैं, तब रत्नाकर जी को यह सिद्धि सुलभ ही समझनी चाहिए। नास्तिकता और नवीनता के इस अग्रगामी युग में यह कवि जिस आशा और विश्वास के साथ पुरानी ही तानें छेड़ने में लगा रहा, उसका प्रतिफल इसे अवश्य ही मिलेगा। इसने हमें पहले के सुने, पर भूलते हुए, गान फिर से गाकर सुनाए, पिछली याद दिलायी और हमारे विस्मृत स्वर का संधान किया। इसका यह पुरस्कार कम नहीं है। यह काशीवासी रत्नाकर पुरातन व्रजजीवन की स्वच्छ भावनाधारा में स्नात, एकाधार में भाषा और काव्य-शास्त्र का पंडित, कलाविद् और भक्त हो गया है। अपने कतिपय श्रेष्ठ सहयोगियों और समकालीनों में, जो व्रजभाषा-साहित्य का शृंगार कर रहे थे, रत्नाकर की विशिष्ट मर्यादा माननी पड़ेगी। भारतेंदु हरिश्चंद्र में अधिक प्रतिभा थी; किंतु उन्हें अवसर न मिला। कविरत्न सत्यनारायण अधिक ऊँचे दरजे के भावुक और गायक थे; किंतु उनका न तो इतना अध्ययन था और न उनमें इतनी कला-कुशलता थी। श्रीधर पाठक व्रजभाषा से अधिक खड़ी बोली के ही आचार्य हुए। वर्तमान और जीवित कवियों में कोई ऐसा नहीं जो आजीवन इनकी धाक न मानता रहा हो। विक्रम की बीसवीं शताब्दी अब समाप्त हो रही है। अतः जब आगामी शताब्दी के आरंभ में पुराने कवियों और उनकी कृतियों की जाँच-पड़ताल की जायगी, तब रत्नाकर को इस क्षेत्र में शीर्ष स्थान देते हुए, आशा है, किसी को कुछ भी असमंजस न होगी।

परंतु यह शीर्ष स्थान नवीन प्रासाद-निर्माण का पुरस्कार नहीं है, केवल पुरानी पच्चीकारी का पारिश्रमिक है। (पुरातन और नूतन का यह अंतर समझ लेना ही रत्नाकर का यथार्थ मूल्य आँकना होगा।

व्रजभाषा

भाषा तो भाषा ही है, चाहे वह व्रज हो या खड़ी बोली। कवि की अभिव्यक्ति के लिए हर एक भाषा उपयुक्त हो सकती है। वह तो साधन मात्र है, साध्य नहीं।) इस प्रकार की विवेचना वे ही कर सकते हैं, जो यह परिचय नहीं रखते कि भाषाओं की भी आत्मा होती है। अथवा उनके जीवन की भी एक गति होती है। प्रत्येक भाषा की प्रगति का एक

क्रम होता है जो सूक्ष्म दृष्टि से देखा जा सकता है। भाषा केवल हमारे भावों तथा विचारों की वाहन नहीं है जो ठोंक-पीट कर सब समय काम में लाई जा सके। उसका एक स्वतंत्र व्यक्तित्व और वातावरण भी होता है। हमारी ही तरह उसकी भी शक्ति, इच्छा और संस्कार होते हैं। समय के परिवर्तनशील पटल पर उसकी भी अनेक प्रकार की आकृतियां बनती रहती हैं। उन्हें पहचानना कविजनों के लिए उपयोगी ही नहीं, आवश्यक भी है। जो व्रजभाषा भक्तों की भावनाओं से भर कर रीति-कवियों की साज-सज्जा से चटकीली हो रही है, उसके साथ आलाप करना या तो किसी बड़े कलाभिज्ञ का ही काम है और या किसी निपट अनाड़ी का ही। जो भाषा अपनी संपूर्ण प्रौढ़ प्रतिभा और देशव्यापी प्रभाव के रहते हुए भी अपनी ही परिचारिका खड़ी बोली को अपना सौभाग्य सौंप कर विवश पड़ी हो, उस मानिनी को सांत्वना देने के लिए उसके किसी अनन्य प्रेमी की ही आवश्यकता होगी। व्रज की वह सभ्य सुंदरी जब ग्रामीण और अनुपयोगी कही जा रही हो, तब उसके रोष-दीप्त मुख के अश्रु-मुक्ताओं को सँभालने के लिए बहुत बड़ी सहानुभूति अपेक्षित है।

जो लोग भाषाओं की यह परिवर्तित परिस्थिति नहीं समझते, वे सच्चे अर्थ में कविता-रसिक नहीं कहे जा सकते। उनके लिए तो सभी भाषाएँ सभी वेषों और सब कामों में लगाई जा सकती है। परंतु वास्तव में भाषा के प्रति यह बहुत ही निर्दय व्यवहार है। बहुत दिन नहीं हुए जब हिंदी की एक पुस्तक में पढ़ा था कि—व्रजभाषा और खड़ी बोली में कोई अंतर नहीं है। दोनों ही हिंदी हैं। दोनों को मिला-जुला कर व्यवहार करना ही हिंदी की सच्ची सेवा है। इनका पृथक् अस्तित्व न मानना ही इनका झगड़ा दूर करना है।" आदि। इसके लेखक महोदय अपने को व्रजभाषा का समर्थक और उपकारी मानते हैं और उन्होंने अपनी कविता-पुस्तक की भूमिका में ये बातें लिखी हैं। उनकी पद्य रचनाएँ पढ़ने पर विदित हुआ कि उन्होंने खिचड़ी भाषा लिखकर अपनी भूमिका को चरितार्थ भी किया है। विषय भी उन्होंने कुछ नए और कुछ पुराने चुनकर अपना सिद्धांत सोलह आने सार्थक करने का प्रयास किया है। पर हमारे देखने में उनकी यह सारी चेष्टा व्यर्थ हो गई है। उनकी कविता में न तो व्रजभाषा का उन्नत शब्द-सौंदर्य है और न उसकी चिर दिन की अभ्यस्त भंगिमाएँ। उनकी खड़ी बोली भी मानों शिथिल होकर लेटे लेटे चलना चाहती हो। जब रचना में रस ही नहीं आया, तब उससे क्या लाभ ?

हम यह नहीं कहते कि व्रजभाषा का व्यवहार नए विषयों के वर्णन में किया ही नहीं जा सकता; परंतु इसके लिए प्रचुर प्रतिभा चाहिए। भारतेंदु हरिश्चंद्र को छोड़कर व्रजभाषा के और किसी उपासक को इस युग में वह प्रतिभा कदाचित् ही मिली हो। अँगरेजी शिक्षा के प्रचार और अँगरेजी कविता के अध्ययन-अभ्यास से खड़ी बोली चैतन्य गति से हमारे हृदय चुराकर चल रही है। पर व्रजभाषा को वह सौभाग्य न मिल सका। यद्यपि नवलता ही जगत के आह्लाद का हेतु है, परंतु पुरानी कलाएँ भी चिरंतन आनंद को विषय बनी रहती हैं। यदि जनता की परिवर्तित रुचि के कारण व्रजभाषा समय का साथ देने में असमर्थ हो अथवा यदि कोई ऐसा कवि न हो जो अपनी अपूर्व

क्षमता से उसका नवीन रूप-विन्यास करके उसे आधुनिक जीवन की सहचरी बना सके, तो भी उसके लिए अपनी पूर्व-संचित कांति सुरक्षित रखने में कोई बाधा नहीं है। यदि व्रजभाषा केवल मध्यकालीन विषयों और भावों की व्यंजना के लिए ही उपयुक्त मान ली जाय तो भी वह स्थायी और स्मरणीय होगी। यदि बोलचाल की भाषा का पद ग्रहण करके खड़ी बोली जन साधारण को आकर्षित कर रही है तो शताब्दियों तक देश की आत्मा की रक्षा और उन्नति करनेवाली व्रजभाषा अपनी वर्तमान स्थिरता में भी सम्राज्ञी के पद का गौरव बढ़ा रही है।

तात्पर्य यह कि यदि भाषा के स्वभाव को न समझकर बेसुरी तान छेड़नेवालों को छोड़ दिया जाय तो भी साहित्य के पंडितों में इस समय व्रजभाषा विषयक दो विशेष विचार फैल रहे हैं। एक तो यह कि व्रजभाषा अब भी नवीन जीवन के उपयुक्त बनाई जा सकती है और नव्य संदेश सुना सकती है। दूसरा यह कि वह अपनी विगत शोभा को ही सँवारकर अपनी अभीष्ट-सिद्धि कर सकती है। उसे नवीन विषयों की ओर झुकाने में कोई लाभ नहीं है। यह भी वैसा ही मतभेद है—जैसा प्राचीन अजंता की चित्र-विद्या के संबंध में है। एक ओर तो बंगाल के कलाविद् उसे नवीन उपकरणों में प्रयुक्त करते हैं और दूसरी ओर कुछ लोग इस मिश्रण का विरोध करते हैं। वस्तुतः यह भाषा के स्थिर सौंदर्य और चलित सौंदर्य का विवाद है। बहुतों की यह ऐषणा होती है कि हमारी प्राचीन परिचिता हमारे दैनिक जीवन में सदैव साथ रहे; पर बहुतों को उसे यह कष्ट देना इष्ट नहीं होता। वे उसकी केवल स्मृति ही रक्षित रखना चाहते हैं। इस उदाहरण पर यह आक्षेप किया जा सकता है कि व्रजभाषा हमारी प्राचीन परिचिता ही नहीं है; वह तो आज भी व्रज में बोली-चाली जाती है। परंतु यहाँ हम साहित्यिक व्रजभाषा की बात कह रहे हैं जो शताब्दियों की पुरानी है और खड़ी बोली के नवीन उत्थान की तुलना में प्राचीन ही कही जायगी। हम उस व्रजभाषा की चर्चा कर रहे हैं जो सारे उत्तर भारत पर एक-छत्र शासन कर चुकी है और देश के ओर-छोर तक अपनी कीर्ति-कौमुदी का प्रसार कर चुकी है। यहाँ व्रज की प्रादेशिक बोली से हमारा अभिप्राय नहीं है। अस्तु इन द्विविध मतों में से रत्नाकर जी दूसरे मत के अवलंबी थे। यद्यपि आरंभिक जीवन में उन्होंने अँगरेज कवि पोप के "समालोचनादर्श" को व्रजभाषा-पद्य में अवतरित करने की चेष्टा की थी, किंतु अपनी शेष रचनाओं में उन्होंने ठीक ठीक व्रज की काव्य-कला का ही अनुसरण किया था।

काशी और अयोध्या में रहकर व्रज की काव्य-कला का अनुसरण बिना गंभीर अध्ययन के साध्य नहीं है। रत्नाकर जी का अध्ययन बहुत विस्तृत और बहु-वर्ष-व्यापक था। इनके पिता बा० पुरुषोत्तमदास जी फारसी भाषा के विद्वान् थे और उनके यहां फारसी तथा हिंदी कवियों का जमघट लगा रहता था। बाबू हरिश्चंद्र उनके मित्रों में से थे। बालक रत्नाकर में कविता के संस्कार इसी सत्संग से उत्पन्न हुए। एक धनिक परिवार में जन्म लेने के कारण उनके अध्ययन में सैकड़ों बाधाएं आ सकती थीं और इसी लिए बिना विक्षेप बी० ए० तक पहुँच जाना और पास कर लेना इनके लिए एक असाधारण घटना प्रतीत होती

भाषा-शास्त्री

है और इसे हम उनके अध्ययन की उत्कट अभिरुचि ही कह सकते हैं। यद्यपि इन्हें व्रजभाषा के अनुशीलन का सुयोग कुछ दिनों बाद प्राप्त हुआ था, तथापि रत्नाकर-ग्रंथावली के अध्ययन से प्रकट होता है कि व्रजभाषा पर इनका अधिकार व्यापक और निर्विकल्प था। आरंभ की रचनाओं में भी व्रजभाषा का एक सुष्ठु रूप है; किंतु प्रौढ़ कृतियों में, विशेष कर उद्धव-शतक में, रत्नाकर का भाषा-पांडित्य प्रखर रूप में प्रस्फुटित हुआ है। संस्कृत की पदावली को इतने अधिकार के साथ व्रज की बोली में गूँथ देना मामूली काम नहीं है। यही नहीं, रत्नाकर जी ने अपनी काशी की बोली से भी शब्द ले लेकर व्रजभाषा के सांचे में ढाल दिए हैं जो एक अतिशय दुष्कर कार्य है। यदि रत्नाकर जैसे मनस्वी व्यक्ति के सिवा किसी दूसरे को यह कार्य करना पड़ता तो वह अपनी प्रांतीय भाषा को व्रज की टकसाली पदावली में मिलाते समय सौ बार आगा-पीछा करता। बहुतों ने इस मिश्रण कार्य में विफल होकर भाषा की निजता ही नष्ट कर दी है। पर रत्नाकर 'अजगुतहाई', 'गमकावत', 'बगीची', 'धरना', 'पराना' आदि अविरल देशी प्रयोग करते चलते हैं और कहीं वे प्रयोग अस्वाभाविक नहीं जान पड़ते। उनकी भाषा की नाड़ी की यह पहचान बहुतों को नहीं होती। कहीं कहीं 'प्रत्युत', 'निर्धारित' आदि अकाव्योपयोगी शब्दों के शैथिल्य और 'स्वामि-प्रसेद', 'पात-थल', 'दंद-उम्मस' आदि दुरूह पद-जालों के रहते हुए भी उनकी भाषा क्लिष्ट और अग्राह्य नहीं हुई। फुटकर पदों और कृष्णकाव्य में वह शुद्ध व्रज और गंगावतरण में संस्कृत मिश्रित होती हुई भी किसी न किसी मार्मिक प्रयोग की शक्ति से व्रज की माधुरी से पूरित हो गई है। दोनों का एक एक उदाहरण लीजिए—

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैं
तातैं तुम ऊधौ हमैं सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ॥
सोवत मैं जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं ही तुम आपही सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग जोग कबहूँ न जानैं कहा जोहि जकौ
ब्रह्म ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ॥
(शुद्ध व्रज)

स्यामा सुघर अनूप रूप गुन सील सजोली।
मंडित मृदु मुखचंद मंद मुसक्यानि लजीली॥
काम बाम अभिराम सहस सोभा सुभ धारिनि।
साजे सकल सिँगार दिव्य हेरति हिय हारिनि॥
(संस्कृत-मिश्रित)

फारसी के अच्छे पंडित होते हुए भी रत्नाकर जी ने बड़े संयम से काम लिया है; और न तो कहीं कठिन या अप्रचलित फारसी शब्दों का प्रयोग किया है और न कहीं नैसर्गिकता का तिरस्कार ही किया है। गोपियाँ कृष्ण के लिए दो एक बार "सिरताज" का प्रयोग करती हैं। पर वह उपयुक्त और व्यवहार-प्राप्त है, कठोर या खटकनेवाला नहीं।

(पिछले दिनों "सूरसागर" का संपादन करते हुए रत्नाकर जी ने पद-प्रयोगों और विशेषतः विभक्ति-चिह्नों के संबंध में जो नियम बनाए थे, वे उनके व्रजभाषा-आधिपत्य के स्पष्टतम सूचक हैं। भाषा पर इस प्रकार अनुशासन करने का अधिकार बहुत बड़े वैयाकरण ही प्राप्त कर सकते हैं। व्याकरण के साथ रत्नाकर जी का संबंध बहुत ही साधारण था, तथापि उनकी वे विधियां बहुत अंशों में संभवतः सदैव मान्य ही समझी जायँगी; और यदि किसी कारण से मान्य न भी समझी जायँ, तो भी उनसे रत्नाकर जी की वह अधिकार-भावना तो प्रकट ही होती रहेगी जिसके बल पर उन्होंने वे विधियाँ बनाई हैं।)

कलाविद्

(छंदों की कारीगरी और संगीतात्मकता में रत्नाकर जी की अधिकार-पूर्ण कलम स्वीकार की गई है—विशेषतः इनके कवित्त बेजोड़ हुए हैं। हिंदी और अँगरेजी के कवियों की भ्रांत तुलनाएं अधिकांश पत्र-पत्रिकाओं में देखने को मिलती हैं; परंतु भाषा-सौंदर्य, संगीत और छंद-संघटन में—कविता की कला पक्ष की सुघरता में—यदि रत्नाकर की तुलना अँगरेज कवि टेनीसन से की जाय तो बहुत अंशों में उपयुक्त होगी। टेनीसन की कारीगरी भी रत्नाकर की ही भांति विशेष पुष्ट और संगीत से अनुमोदित हुई है। इन दोनों कवियों की सर्वश्रेष्ठ विशेषता यही भाषा-चमत्कार और छंदों की रमणीयता स्थापित करने में है। चाहे इन दोनों में भावना की मौलिकता अधिक व्यापक और उदात्त न हो, तो भी रचना-चातुरी में ये दोनों ही पारंगत हुए हैं।) आधुनिक खड़ी बोली में भी कवित्त छंद बने हैं और बन रहे हैं, परंतु उन्हें रत्नाकर जी के कवित्तों से मिलाते ही दोनों का भेद स्पष्ट हो जाता है। नवीन हिंदी के कवियों को "रतनाकर" की यह कला वर्षों सीखने पर भी आ सकेगी या नहीं, इसमें संदेह ही है।) खड़ी बोली में अनूप के कवित्त कुछ अधिक प्रौढ़ हैं, पर उनके एक सुंदर कवित्त से रत्नाकर के किसी छंद को मिलाकर देखिए—

आदिम बसंत का प्रभात काल सुंदर था
आशा की उषा से भूरि भासित गगन था।
दिव्य रमणीयता से भासमान रोदसी में
स्वच्छ समालोकित दिगंगना सदन था॥
उच्छल तरंगों से तरंगित पयोनिधि था
सारा व्योम-मंडल समुज्ज्वल अघन था।
आई तुम दाहिने अमृत बाएं कालकूट
आगे था मदन पीछे त्रिविध पवन था॥

(अनूप)

कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिबै कौं ब्रह्म
मधुपुरियानि की चपल कँखियाँ चहै।
कहै रतनाकर हँसैं कै कहौ रोवैं अब
गगन अथाह थाह लेन मखियाँ चहैं॥

अगुन सगुन फंद बंद निरवारन कौं
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहै ।
मोर-पँखियाँ कौ मौरवारौ चारु चाहन कौं
ऊधौ अँखियाँ चहैं न मोर-पखियाँ चहैं ॥
(रत्नाकर)

प्रथम कवित्त में वह असाधारण दृढ़ता है जो खड़ी बोली के कम कवित्तों में मिलेगी; पर उस अंतरंग गहन संगीत की ध्वनि नहीं जो दूसरे कवित्त से पद पद पर प्रकट हो रही है, यह केवल शब्द-सौंदर्य की बात नहीं है। छंद के घटन-जन्य सौंदर्य की पंक्ति पंक्ति की, एक से दूसरी की सन्निधि की, और उस सन्निधि में सन्निहित संगीत की बात है। यहां रत्नाकर की व्रजभाषा और नवीन खड़ी बोली का भेद बहुत कुछ प्रकट हो जाता है। यही उस पुरानी पच्चीकारी की बात है जिसका उल्लेख हम ऊपर कर चुके हैं। नवीन प्रासाद-निर्माण के कार्य में और इस मीनाकारी में जो अंतर है, वह यहाँ थोड़ा बहुत स्पष्ट हो जाता है। खड़ीबोली के कवित्त में कलम पकड़ते ही लिख चलने का सुभीता है; पर व्रजभाषा के कवित्त के लिए रियाज और तैयारी चाहिए। इसी कारण इन दिनों खड़ी बोली में भावना का अधिक सत्य रूप और व्रज में अधिक आकर्षक रूप उतरने की आशा की जाती है।

रत्नाकर जी के छंदों की चर्चा करते हुए हमने उनकी जिस रचना-चातुरी की प्रशंसा की, वह काव्य का चरम लाभ नहीं है। वह तो कवियों की वह श्रम-लभ्य कला है जिसकी सहायता से वे अद्वितीय चमत्कार की सृष्टि करके सुख-संचार करते हैं। बहुधा प्रथम श्रेणी के जगद्विख्यात कवियों में यह कला कम देखी जाती है और मध्यम श्रेणी के पारखी कवि उन अवसरों पर इसका अधिक प्रयोग करते हैं जब उन्हें वास्तविक काव्य-भावना के अभाव की पूर्त्ति करनी होती है। इस अनमोल उपाय से कविगण अपना उत्कर्ष साधन करते हैं। अँगरेजी कवियों में टेनीसन ने इसी की सहायता से अपनी मर्यादा भाषा के श्रेष्ठ कवियों के समकक्ष स्थापित की थी। उसमें चॉसर और कोलरिज की सी स्वच्छ रचना की मौलिक शक्ति नहीं; स्पेंसर का सा बहुत भारी और व्यापक विषय का ग्रहण-सामर्थ्य नहीं; शेक्सपियर की सहज विश्वजनीनता नहीं; न वह उत्थान, न वह विस्तार, न वह सर्व-गुण-संपन्नता है; मिल्टन का गंभीर स्वर भी उसे नहीं मिला; न वर्ड्सवर्थ की आध्यात्मिक प्रकृति-प्रियता; न शैली की आधिदैविक भावना; न कीट्स का स्वच्छंद सरस प्रवाह। फिर भी टेनीसन काव्य-कला के आश्चर्य-प्रदर्शन के द्वारा शेक्सपियर को छोड़कर शेष सबके समकक्ष आसन पाने का अधिकारी हुआ है। हम देखते हैं कि रत्नाकर में भी काव्यकला का वही प्रदर्शन, सर्वत्र नहीं तो कम से कम कवित्तों में अवश्य, दृष्टिगोचर है। इनकी अधिकांश भावना भक्तों से ली हुई है, परंतु भक्तों में इनकी तरह कविता-रीति नहीं थी। वे तो भजनानंदी ही अधिक थे। उनके उपरांत जो रीति-कवि हुए, उनमें अनुभूति की कमी और भाषा-शृंगार अधिक हो गया। इस कवि-परंपरा में पद्माकर अन्यतम समझे जाते हैं और रत्नाकर जी इस विषय में अपने को पद्माकर से प्रभावित मानते थे। तथापि "उद्धवशतक" में उनकी कविता पद्माकर से अधिक ओजपूर्ण और भक्ति-भावापन्न है और "गंगावतरण"

में प्रबंध का विचार पद्माकर के "रामरसायन" से अधिक प्रौढ़ है। भक्तों की अपेक्षा रत्नाकर कम रसमय किंतु अधिक सूक्तिप्रिय हैं—रीति-कवियों की अपेक्षा वे साधारणतः अधिक भावनावान्, अधिक शुद्ध और गहन संगीत के अभ्यासी हैं। हम कह सकते हैं कि भक्तों और शृंगारियों के बीच की कड़ी रत्नाकर के रूप में प्रकट हुई थी।

प्रबंध-कविता

यह नहीं कहा जा सकता कि "गंगावतरण" का प्रबंध निर्माण करते हुए रत्नाकर के सामने कौन सा आदर्श था। रामचरितमानस का प्रबंध अधिक बलशाली और दुरतिगम्य है। बालकांड और उत्तरकांड के आदि तथा अंत में तुलसीदास ने अपने काव्य पर से देश और काल के बंधन हटा देने की चेष्टा की है। पात्र का बंधन भी उन्होंने दूर किया है। परंतु इस विषय में उन्हें सफलता केवल राम के संबंध में हुई है। मानस में राम का वास्तविक रूप अरूप ही है। शेष पात्रों को तुलसीदास ने रूप-रेखा दी है और उनमें गुणों का आरोप भी किया है। केवल राम में वह बात नहीं है। कवि ने आकाश-पाताल एक कर दिए हैं; क्योंकि हनूमान पाताल में पैठकर महिरावण का बध करते हैं और आकाश से उड़कर लंका-पार जाते हैं—पहाड़ उठा लाते हैं। राम के अवतार के कई प्रसंग गिनाकर काल-संकलन का निर्वाह करने की चेष्टा की गई है। तुलसी के इस महत् अनुष्ठान से प्रायः सभी परवर्ती कवि प्रभावित हुए हैं, यद्यपि यह प्रभाव परिस्थिति के अनुसार भला और बुरा दोनों पड़ा है। ("गंगावतरण" के देखने से उसमें भी मानस की छाया मिलेगी। सगर-सुतों का पाताल-प्रवेश, गंगा का स्वर्ग से आगमन—आकाश-पाताल की खबर यहाँ भी लाई गई है। समय-संकलन में रत्नाकर जी अवश्य चूक गए हैं। सगर-सुतों के भस्म होने के कई पीढ़ियों बाद उनके मोक्ष का जो कार्य भगीरथ ने किया, वह उतना प्रभाव नहीं डालता। यदि "गंगावतरण" का मुख्य आशय यही मोक्ष माना जाय तो रत्नाकर जी को मोक्ष-व्यापार के प्रति अधिक दत्तचित्त होने की आवश्यकता थी। आरंभ में यदि इतना विलंब हो गया था तो कार्य की गुरुता और विफल प्रयासों का अधिक महत्त्वपूर्ण वर्णन अपेक्षित था। रत्नाकर जी काव्य की नियताप्ति के साथ अधिक तन्निष्ठ क्यों नहीं हुए। संभवतः "मानस" की छाया पड़ी है। परंतु मानस में नियताप्ति की चेष्टा का अभाव स्वाभाविक है, क्योंकि उसमें नियत (सीमा) कुछ है ही नहीं। उसमें तो उसका सब ओर से अतिक्रमण ही अभीष्ट जान पड़ता है। गंगावतरण के कवि यहाँ उसका अनुकरण करते समय यदि अधिक सावधान रहते तो अच्छा होता। रामचरितमानस भाषा-साहित्य के कानन का वह विशाल वट है जिसकी शाखा-प्रशाखाएं नितांत अनर्दिष्ट दिशाओं में फैलकर छाया-दान करती हैं। इस अक्षयवट की यह स्वाभाविकता है कि जहाँ तहाँ इसके बरोह क्षेपकों, अंतर्कथाओं और प्रसंग-विपर्यय के रूपों में डालों से निकलकर भूमि में गड़े देख पड़ते हैं। यदि ये बरोह दूसरे पेड़ों में हों तो मानों ऐसा जान पड़ेगा कि वे वृक्ष उखड़ गए हैं और उनको टिकाने के लिए उनके नीचे टेक लगे हुए हैं, रामचरितमानस में जो बात परम स्वाभाविक जान पड़ती है, वही लघुतर रचनाओं में किमाकार अथवा असंभव सी हो जाती । गंगावतरण की कथा भी रामचरित की ही भाँति पौराणिक होने के कारण अलौकिक चित्रों

से युक्त है। दोनों की कथा में ही इतना आकर्षण है कि घटना-अनुक्रम और सूक्ष्म कला का प्रदर्शन उतना आवश्यक नहीं रह जाता। रत्नाकर जी ने गंगा के अवतार की जो विशद, ओजपूर्ण और रहस्यमयी वर्णना की है, वह पौराणिक काव्य के उपयुक्त ही हुई है। पर यदि आरंभ के सर्गों को संक्षिप्त करके उत्तर सर्गों को कुछ विस्तृत कर दिया जाता तो यह प्रबंध-काव्य और भी अधिक उत्कृष्ट श्रेणी का बन जाता। फिर भी अपने प्रस्तुत रूप में भी मध्य के कतिपय सर्ग स्थायी सौंदर्य से समन्वित हुए हैं।)

(यदि "शृंगार लहरी" और "उद्धवशतक" को मिला दिया जाय तो कृष्णकाव्य की एक संक्षिप्त, पर अच्छी कथा बन सकती है। इनमें "शृंगार-लहरी" यद्यपि कुछ परवर्ती रचना है, तो भी "उद्धवशतक" उससे अधिक प्रौढ़ और मर्मस्पर्शी हुआ है। यही शतक रत्नाकर जी की सर्वश्रेष्ठ कृति कही जा सकती है। इसका संगीत हमारी भावनाओं पर अधिकार करने में समर्थ है। इसका पाठ करते समय भावों की मौलिकता और उक्तियों की नवीनता का अपूर्व आनंद आता है और सूर के पद स्मरण हो आते हैं। यह कोई साधारण विशेषता नहीं है, वरन् इसे रत्नाकर जी की सबसे बड़ी विशेषता समझनी चाहिए। ऊपर कह चुके हैं कि भक्तों में भावुकता अधिक है और रत्नाकर जी में सूक्तिप्रियता अधिक। परंतु "उद्धवशतक" की सूक्तियाँ भी एक अंतर्निहित रस में डूबी हुई जान पड़ती हैं। इसका अर्थ यही है कि इन छंदों में रत्नाकर जी का कवि-हृदय कारीगरी की खोज करता हुआ भी अपना वह व्यापार भूल गया है और मानों शिथिल होकर उन्हीं भावनाओं में विश्राम चाहने लगा है। रत्नाकर जी की इससे अधिक तन्मयी काव्य-साधना दूसरी नहीं मिलती। भवभूति की प्रसिद्ध पंक्ति—"एको रसः करुण एव निमित्तभेदात्" भिन्न भिन्न व्यक्तियों को भिन्न भिन्न मात्रा में मान्य होगी। महा कवि रवींद्रनाथ ने एक स्थान पर कहा है "हमारे सुख-शृंगार के संपूर्ण साज में दुख की एक प्रच्छन्न छाया मिली हुई है।" रत्नाकर जी भी शृंगार-प्रिय व्यक्ति थे; उन्होंने अधिकांश शृंगारी कविता ही लिखी है। उनके जीवन-व्यापी शृंगार में छिपी हुई दुख की छाया ही मानो "उद्धवशतक" का केंद्र पाकर साकार हो गई है। सच ही है—"हमारी श्रेष्ठतम कविता वही है जो करुणतम कथा कहे।")

"उद्धवशतक" की श्रेष्ठता

प्रकृति-वर्णन के कुछ अच्छे स्थल "हिंडोला", "हरिश्चंद्र काव्य" और "गंगावतरण" में आए हैं। जिनमें स्वर्ग से उतरकर गंगा का पृथ्वी पर आना सबसे अधिक प्रभावपूर्ण और चमत्कारी है। तो भी वह वास्तविक नहीं। यथार्थ और शुद्ध प्राकृतिक वर्णन का संपूर्ण व्रजभाषा काव्य में प्रायः अभाव ही है। उसकी तो वहाँ परिपाटी ही नहीं चल पाई। तथापि गंगावतरण में गंगा के हिमालय से निकलकर समतल की ओर बढ़ने के ये दृश्य—

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माहिँ घहरति घुसि घूमति।
प्रबल वेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति॥
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि-सृंगनि चूरति॥

हरिन चौकड़ी भूलि दरिनि दौरत कदराए।
तरफरात बहुस्रृंग स्रृंग झाडिनि अरुझाए॥
गहत प्लवंग उतंग स्रृंग कूदंत किलकारत।
उड़ि बिहंग बहु रंग भयाकुल गगन गुहारत॥

... ...

गुफा फारि फहराइ चलत फैलत बर बारी।
मानहु दुख-द्रुम-दलन-काज बिधि रचत कुठारी॥
गंगोत्तरि तैं उतरि तरल घाटी मैं आई।
गिरि-सिर तैं चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई॥)

(चाहे कुछ लोगों को भाषा की अतिरंजना के कारण यथार्थ न जान पड़ें, किंतु फिर भी बहुत कुछ स्वाभाविक हैं और उत्प्रेक्षाएँ भी प्रायः सर्वत्र चित्रोपम हैं। ब्रजभाषा की उसी प्रसिद्ध—"कहूं......कहूं", "कोउ...कोउ" द्वारा गिनती गिनानेवाली प्रथा के अनुरूप भी कुछ पंक्तियाँ हैं। यथा—)

(कोउ दूरहिं तैं दबकि भूरि जल पूर निहारत।
कोउ गहि बाँहि उमाहि बढ़त बालक कौं बारत॥)

(हमने गणना करके देखा तो पृष्ठ २८७ में ७, २८८ में १० और २८९ में ६ 'कोउ' आए हैं। इसे ब्रजभाषा का जन्मसिद्ध अधिकार समझना चाहिए। "हिंडोला" में साज-सज्जा और झूले का वर्णन और "हरिश्चंद्र काव्य" में मरघट-वर्णन भी अच्छे हैं, परंतु परंपरा उनमें भी टूट नहीं सकी है।

चहुँ दिसि तै घन घेरि घेरि नभ मंडल छाए।
घूमत झूमत झुकत औनि अतिसय नियराए॥
दामिनि दमकि दिखाति, दुरति पुनि दौरति लहरैं।
छूटि छबीली छटा छोर छिन छिन छिति छहरैं॥
मानहुँ संचि सिँगार हास के तार सुहाए।
धूप छाँह के बीनि बितान अतन तनवाए॥
कहुँ तिनकैं बिच लसति सुभग बगपाँति सुहाई।
मुकता सर की मनौ सेत झालर लटकाई॥
(हिंडोला)

अलंकार की छटा यहाँ भी छहर रही है। केवल मरघट में वह नहीं है।

हरहरात इक दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घंट घने माटी के बासन॥
बरषा रितु के काज औरहू लगत भयानक।
सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक॥

... ...

भई आनि जब साँझ घटा आई घिरि कारी।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी॥
भए एकठा तहाँ आनि डाकिनि पिसाच गन।
कूदत करत किलोल किलकि दौरत तोरत तन॥)
(हरिश्चंद्र काव्य)

(सच्चे प्रकृति-वर्णन की यह विरलता ब्रजभाषा के काव्य मात्र में है। इसके कारण का अनुसंधान करते हुए पंडित रामचंद्र शुक्ल ने लिखा है कि ब्रजभाषा का विकास उस काल में हुआ था, जब संस्कृत का अलंकृत रूप अच्छी तरह प्रतिष्ठित हो गया था। काव्य की स्वाभाविक गति के लिए स्थान ही नहीं रह गया था। परंतु स्वाभाविक अस्वाभाविक की बात उतनी नहीं है। हमारे विचार से सबसे प्रमुख कारण भक्ति और दर्शन की वे भावनाएँ थीं जो ब्रजभाषा-साहित्य पर ही नहीं, देश की अपार जनता पर भी अधिकार जमा चुकी थीं और उसकी मनोवृत्ति ही बदल चुकी थी। अनंत और असीम की आकांक्षा में सारा देश एक प्रकार से निमग्न सा हो गया था और जब कभी सीमा के सौंदर्य का—राम, कृष्ण अथवा उनसे संबद्ध परिस्थितियों के सौंदर्य का—वर्णन किया जाता, तब भी उसमें अपार निस्सीम शोभा की ही ध्वनि भरी होती थी। जीवन की साधारण घटना और लौकिक जगत की घरेलू सुषमा पर दृष्टि पड़ने का अवसर कम ही रहा। सामाजिक अत्याचार और राजनीतिक बंधन से ऊबकर मानों हमारी दृष्टि पृथ्वी पर पड़ती ही न थी, आँखें आकाश की ओर ही ताकती रहती थीं। जिन लोगों ने प्रकृति पर कुछ ध्यान दिया, वे "घाघ-भड्डरी" कहलाए। उनकी अशिष्ट परंपरा मानी गई।)

(घटना और पात्रों का निर्वाह करने की चिंता में ब्रजभाषा के कवियों को प्रबंध क्षेत्र के भीतर तो प्रकृति-वर्णन की सुविधा मिली ही नहीं; मुक्तकों में भी ऋतु-वर्णन अधिकतर नायक-नायिका के ही प्रसंग से किया गया। अतः वर्णन की दृष्टि से ऋतुएँ अयथार्थ और नीरस ही रहीं।

मुक्तक

सेनापति आदि कुछ कवियों ने अवश्य वास्तविकता से काम लिया, परंतु वह भी बहुत दूर तक नहीं जाती। प्रत्येक ऋतु की एक सुखद या दुःखद भावना ही प्रस्फुटित होकर रह जाती है, प्रकृति के अन्य प्रभावशाली रहस्य प्रकट ही नहीं होते। अँगरेज कवि वर्ड्सवर्थ की-सी प्रकृति की सजीव सत्ता की आध्यात्मिक अनुभूति पुरानी हिंदी के किसी कवि को प्राप्त नहीं हुई। रत्नाकर जी के मान्य और आदरणीय पद्माकर की "गुलगुली गिलमें" और उनके साथ के सरंजाम देखे ही जा चुके हैं और "मंद मंद मारुत महीम मनसा" की महिमा भी मालूम ही है। विश्व के ओर-छोर तक फैली हुई प्रकृति की प्रसन्न विभूति और कवित्तों की कवायद में बहुत बड़ा अंतर है। रत्नाकर जी ने भी फुटकर पदों में ऋतु संबंधी अष्टक लिखे हैं जो ब्रजभाषा के प्रकृति-वर्णन की तुलना में बहुत कुछ और आगे बढ़े हुए हैं। यथा—

फूली अवली हैं लोध लवली लवंगनि की,
धवली भई है स्वच्छ सोभा गिरि सानु की।
कहै रतनाकर त्यौं मरुवक फूलनि पै,
झूलनि सुहाई लगै हिम परमानु की॥
साँझ तरनी औ भोर तारा सी दिखाई देति,
सिसिर कुही मैं दबी दीपति कृसानु की।
सीत भीत हिय मैं न भेद यह भान होत,
भानु की प्रभा है कै प्रभा है सीतभानु की॥

(शिशिर)

छाई छवि स्यामल सुहाई रजनी-मुख की,
रंच पियराई रही ऊपर मुरेरे के।
कहै रतनाकर उमगि तरु छाया चली,
बढ़ि अगवानी हेत आवत अँधेरे के॥
घर घर साजैं सेज अंगना सिँगारि अंग,
लौटत उमंग भरे बिछुरे सबेरे के।
जोगी जती जंगम जहाँ हो तहाँ डेरे देत,
फेरे देत फुदकि बिहंगम बसेरे के॥

(संध्या)

इन अष्टकों में तथा सैकड़ों फुटकर कवित्तों में रत्नाकर जी का कलाविद् रूप अधिक स्पष्ट है। ये वे कवित्त हैं जो उनके जीवन काल में सैकड़ों बार कवि-सम्मेलनों में श्रोताओं की वाहवाही प्राप्त कर चुके हैं। क्यों न हो। इनकी कारीगरी ऐसी ही है। रत्नाकर जी को छोटे छोटे कवि-सम्मेलन अधिक प्रिय थे। कवि-सम्मेलन नहीं, उन्हें कवि-मंडली कहना अधिक उपयुक्त होगा। इन्हीं में वे अपनी मँजी कलम के निखरे कवित्त सुनाया करते थे। इन कवित्तों का संगीत "उद्धवशतक" की कोटि का नहीं है, उससे अधिक हलका और उत्तेजक है और उतना मनोरम तथा वेदनामय भी नहीं। इन्हीं में उनके वीराष्टक के कवित्त भी हैं जिन्हें पढ़कर एक पत्र-संपादक ने लिखा था कि—"रत्नाकर जी भूषण के युग में रहते हैं।" परंतु यह रत्नाकर जी की प्रकृति का विपर्यय है। उनके वीररस के छंदों में अधिकांश अनुभूतिहीन हैं। यह युग "भूषण का युग" कहा जा सकता है। पर वीरता के उत्थान के अर्थ में; हिंदू-मुस्लिम-वैमनस्य के अर्थ में नहीं, जैसा कि उक्त पत्रिका-संपादक का संकेत जान पड़ता है। तथापि रत्नाकर जी को भूषण-युग का कवि कहना केवल हँसी की बात है। किसी कवि के दो चार पदों को लेकर एक सिद्धांत की स्थापना कर चलना ठीक नहीं।

नए नए सिद्धांतों का निरूपण और आविष्कार करनेवालों में से चाहे कोई उन्हें भूषणकाल का और चाहे कोई उमर खैयाम का प्रतिस्पर्द्धी बतलाये, परंतु साहित्यिक और सामाजिक इतिहास के जानकार और रत्नाकर जी के परिचित उन्हें इस रूप में नहीं देखते। रत्नाकर जी के उद्धवशतक में उद्धव के जोगतंत्र को गोपियों की भक्ति-भावना से पराजित करने की योजना नवीन नहीं है। उनकी उक्तियाँ भी अनेक अंशों में सूरदास, नंददास आदि की उक्तियों से मिलती-जुलती हैं, यद्यपि उनमें रत्नाकर जी की एक निजता अवश्य है। सगुण और निर्गुण भक्ति की यह रसमयी रागिनी वैष्णव साहित्य की एक सार्वजनिक विशेषता है। कृष्णायन संप्रदाय के प्रायः सभी कवियों ने इस रागिनी में अपना स्वर मिलाया है। ऐसी अवस्था में यदि कोई कहे कि रत्नाकर जी की गोपियों की उक्तियाँ नवीन युग के व्यक्तिवाद का संदेश सुनाती हैं अथवा भावी अनीश्वरवाद का संकेत करती हैं, तो यह प्रसंग के साथ अन्याय और रत्नाकर जी की प्रकृति से अपरिचय प्रकट करना ही होगा। इससे चमत्कार की सृष्टि भले ही हो, सत्य की स्थापना नहीं होगी।

(रत्नाकर जी तो मध्ययुग की मनोवृत्ति लेकर मध्ययुग के ही वातावरण में निवास करते थे। आधुनिकता के प्रति उनकी कोई विशेष रुचि न थी। मध्ययुग हिंदी का सुवर्णयुग था और रत्नाकर जी उसी में रमे हुए थे। उनकी भाषा और उनके वर्ण्य विषय सब तत्कालीन ही हुए। उनके आचार-व्यवहार तक में उसी समय की मुद्रा थी। उस युग की कल्पना को वास्तविक बनाकर रत्नाकर जी उसमें पूरे प्रसन्नभाव से रहते थे। अँगरेजी में ऐसे लेखकों और कवियों को 'क्लैसिक' कहने की चाल है जो स्वभावतः अपने भावों, पात्रों और भाषा आदि को प्राचीन यूनान तथा रोम की साहित्य-शैली में ढालते हैं और वहीं से अपनी साहित्यिक स्फूर्ति प्राप्त करते हैं। धीरे धीरे ऐसे क्लैसिक कवियों की वहाँ एक परंपरा बन गई है जिसकी विशेषताओं को श्रेणीबद्ध करते हुए समीक्षकों ने लिखा है कि वे कवि प्राचीन वातावरण को पसंद करते, पुरानी ग्रीक लैटिन अथवा अँगरेजी के काव्य-ग्रंथों का अध्ययन करते और उन्हीं की शैली को अपनाते हैं। पौराणिक और धार्मिक ग्रंथों के पात्रों का ही चित्रण करने की इनकी प्रवृत्ति होती है और ये भाषा को ही नहीं, उपमा, रूपक आदि साहित्यालंकारों को भी प्राचीन परिपाटी के अनुसार ही रखने की चेष्टा करते हैं। मिल्टन से लेकर अब तक अँगरेजी में इस प्रकार के अनेक 'क्लैसिक' रचनाकार हो गए हैं, जिनमें मेथ्यू आर्नल्ड अंतिम प्रसिद्ध क्लैसिक समझा जाता है और जिसके होमर-शैली के रूपकों की अच्छी ख्याति है। यह साहित्यिक वर्ग भाषा में प्रौढ़ता और अलंकरण तथा भावों में संयम और गंभीरता का आग्रह करता है। इस विचार से रत्नाकर जी सच्चे अर्थ में हिंदी की 'क्लैसिक' कविता के अनुयायी और स्वयं अंतिम 'क्लैसिक' हो गए हैं तथा उनके अवसान से यह क्षेत्र सूना हो गया है।)

परंपरा के रूप में प्रचलित हो जाने पर इस क्लैसिक वर्ग के लेखकों के विरुद्ध नवीन साहित्यिक उन्मेष की आवश्यकता समझी जाती है और नवीनतावादी लेखक क्रांति करते हैं। भावों में अस्वाभाविकता और अनुभूति का अभाव भाषा में व्यर्थ का भार और रूढ़िगत चरित्र-चित्रण आदि का दोष लगाकर ये नवीन क्रांतिकारी पुराना तख्त उलट देने का आंदोलन करते हैं। परंतु इससे उस शैली का अंत नहीं होता; उलटे वह अपनी सीमा के अंदर नवीन आकर्षण उत्पन्न करने में समर्थ होती है और बहुत से नए समालोचक प्राचीनों के पक्ष में जोरदार प्रचार करने को तैयार हो जाते हैं। यूरोपीय साहित्य में इन दिनों नए सिरे से प्राचीन पक्ष के अनुकूल हवा बहती हुई देखी जाती है। हमारी हिंदी में अभी व्रजभाषा की विरोधी शक्ति उत्थान पर है। परंतु आशा है, कुछ समय में हिंदी साहित्य-सागर का भी यह उद्वेलन स्थिरता प्राप्त करेगा और व्रजभाषा-नौका के यात्री सकुशल पार लग सकेंगे।

(ऊपर के विवेचन से स्पष्ट होता है कि एक विशेष पथ पर परिश्रम पूर्वक चलते चलते रत्नाकर जी साहित्य में अपनी एक अलग लीक बना गए हैं। इस विचार से वे हिंदी के एक ऐतिहासिक पुरुष ठहरते हैं। यह सम्मान युग के बहुत थोड़े व्यक्तियों को प्राप्त हो सकता है। हमें ऐसे ऐतिहासिक कवि के पुराने, अंतरंग तथा अभिन्न-हृदय मित्र होने का सौभाग्य प्राप्त है। अपनी गुप्त से

गुप्त बातें तथा विचार भी वे हमसे स्वच्छ हृदय से कह देते थे और साहित्यिक विषयों में तो हमें सदा अपने साथ रखने का संकल्प रखते थे। ऐसे एक मित्र की प्रथम वार्षिक जयंती पर उनके काव्यों का संग्रह प्रस्तुत करने में जो कुछ हमसे बन पड़ा है, उसके द्वारा हम अपना मित्र-ऋण अंशतः चुकाना चाहते हैं और यह श्रद्धांजलि उनकी स्वर्गीय आत्मा को अर्पित करते हैं।

श्यामसुंदरदास

जीवनी

बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर का जन्म संवत् १९२३ भाद्रपद शुक्ला पंचमी को काशी में हुआ था। ये दिल्लीवाल अग्रवाल वैश्य थे और इनके पूर्वज पानीपत पंजाब के मूल-निवासी थे। वहाँ इनके पूर्वज मुगल-दरबार में प्रतिष्ठित पदों पर काम करते थे। पानीपत छोड़कर इनके पूर्वपुरुष लखनऊ पहुँचे थे। जहाँ इनके परदादा सेठ तुलाराम अतुल संपत्तिशाली और राजमान्य हुए। लाला तुलाराम जहाँदारशाह के दरबार में रहते थे और लखनऊ के बहुत बड़े रईस समझे जाते थे। एक बार लखनऊ के एक नवाब साहब ने तुलाराम जी से तीन करोड़ रुपया उधार माँगा था। इस आज्ञा का पालन करने और रुपए जुटाने में इनकी संपत्ति का बड़ा अंश चला गया। फिर भी अमीर-स्वभाव न गया और उनके वंशजों तक बना चला आया। बाबू जगन्नाथदास में भी इसकी मात्रा कम न थी। सेठ तुलाराम जहाँदारशाह के साथ एक बार काशी आए थे और आकर रहने लगे थे।

बाबू जगन्नाथदास के पिता पुरुषोत्तमदास फारसी भाषा के अच्छे विद्वान् थे और हिंदी काव्य से भी पूरा अनुराग रखते थे। भारतेंदु हरिश्चंद्र के ये समकालीन थे और उनसे इनकी घनिष्ठ मित्रता थी। अपने विनोदप्रिय स्वभाव के कारण हरिश्चंद्र इनके यहाँ भिन्न भिन्न वेश बनाकर आते थे। एक बार वे भिक्षुक का छद्मवेश बनाकर सबेरे ही बाबू पुरुषोत्तमदास के घर पहुँचे और बाहर से एक पैसे का सवाल किया। पहले तो उन्हें पैसा मिल रहा था। पर जब पहचान लिए गए तब बड़ी हँसी हुई। जगन्नाथदास जी ने भी कुछ दिन भारतेंदु का सत्संग किया था और वे इन्हें स्नेह की दृष्टि से देखते और प्रोत्साहन देते थे। कविता की ओर इनकी रुचि देखकर उन्होंने कहा था कि आगे चलकर यह बालक हिंदी की शोभा बढ़ावेगा। उनकी यह भविष्यवाणी सत्य हुई। हिंदी कविता में जगन्नाथदास ने अपना नाम "रत्नाकर" रखा। जो अनेक छंद-रत्नों की रचना के कारण सार्थक हो गया।

रत्नाकर जी के पिता के घर में फारसी और हिंदी के कवियों की भीड़ लगी रहती थी जिसका शुभ प्रभाव इन पर पड़ना स्वाभाविक ही था। इन्होंने भी फारसी और हिंदी काव्य का अभ्यास आरंभ किया। अँगरेजी में बी० ए० पास करने के समय तक इन्होंने फारसी में अच्छी योग्यता प्राप्त कर ली थी और फारसी में ही एम० ए० की परीक्षा देना चाहते थे। परंतु कतिपय कारणों से इन्हें परीक्षा देने का अवसर न मिल सका। इस समय तक ये अपना तखल्लुस "जकी" रखकर फारसी की थोड़ी बहुत शायरी करने लगे थे। इस विषय के इनके उस्ताद मिरजा मुहम्मद हसन फायज थे जिनके प्रति इनकी अगाध श्रद्धा थी जो फारसी कविता लिखाना छोड़ देने के बाद भी वैसी ही बनी रही। इस युग में वैसी श्रद्धा कम दिखाई पड़ती है।

हिंदी की कविता इन्होंने कुछ काल बाद आरंभ की, परंतु उसका तार बीच बीच में टूट जाता था। इन्होंने रियासत आवागढ़ में नौकरी कर ली थी जहाँ ये खजाने के निरीक्षक के पद पर काम करते थे। पर जलवायु अनुकूल न होने के कारण दो ही वर्ष बाद नौकरी छोड़ दी और काशी चले आए। इन दिनों वर्षों तक कविता का सिलसिला चला। इनके रसिक स्वभाव ने कविता के लिए ब्रजभाषा को ही अपनाया था। उस समय खड़ी बोली का आंदोलन इतना प्रबल नहीं था। ब्रजभाषा का ही बोलबाला था। ब्रजभाषा के कई अच्छे कवि काशी में रहते थे जिनसे रत्नाकर जी ने शिक्षाप्राप्ति का लाभ उठाया। भारतेंदु के कविसम्मेलनों में ये बाल्यकाल से ही जाने लगे थे। जिसके कारण यह संस्कार दृढ़ हो गया और वे कविसम्मेलनों का आयोजन करने और उनमें सम्मिलित होने में बड़ा उत्साह दिखाते थे। परंतु वे चुने हुए कवितारसिकों के छोटे छोटे सम्मेलनों के पक्षपाती थे। भीड़भड़क्के से बहुत घबराते थे।

सन् १९०२ में ये स्वर्गीय अयोध्यानरेश के प्राइवेट सेक्रेटरी नियुक्त हुए। तब से ये स्वर्गीय महाराज के जीवनपर्यंत उसी पद पर रहे। चार पाँच वर्ष इस प्रकार बीते। सन् १९०६ में जब महाराज का देहांत हो गया तब इनकी कार्य-कुशलता और योग्यता से संतुष्ट होकर अयोध्या की महारानी साहिबा ने इन्हें अपना प्राइवेट सेक्रेटरी बना लिया। अब उन्हें साहित्यसेवा करने का वह अवसर ही न मिलने लगा जो उन्हें अब तक मिलता आया था। राज्य के कार्य का भार सँभालने में ही इनका सब समय बीतने लगा। फलतः कवि-दरबार करने के बदले अब ये कचहरियों का दरबार देखने लगे। सन् १९०६ से १९२१ तक इनकी कविता परिस्थितिवश छूटी रही। इससे अवश्य हिंदी संसार की हानि हुई।

सन् १९२१-२२ में जब रत्नाकर जी को साहित्य को फिर से एक नजर देखने और उस ओर आकर्षित होने का अवसर मिला तब खड़ी बोली की पर्याप्त उन्नति हो चुकी थी। परंतु रत्नाकर जी को उसमें वह मिठास, वह रचना-चातुरी और वह कला न मिलती थी जो ब्रजभाषा में पाई जाती थी। उनकी दृष्टि में कविता, तालतुकहीन, अंगभंग और क्षीणछवि हो गई थी। अतः उन्होंने उसी पुरानी श्रुतिमधुर ध्वनि का ध्यान करके दुबारा कलम उठाई। इनके हाथ से मँज कर ब्रजभाषा निखरने लगी। उसके ऊपर की अशुद्ध काई छूट चली। कवित्तों और अन्य छंदों के संघटन-क्रम पर विशेष ध्यान देकर रत्नाकर जी ने अपनी कविता-कारीगरी को पहले से द्विगुणित शक्ति से बढ़ाया। ये ब्रजभाषा की नैसर्गिक माधुरी का आस्वाद लेकर उसी की मनोरम परिस्थितियों में निवास करने लगे। इन्होंने अपना जीवनक्रम भी उसी के अनुकूल रखा। मध्यकालीन ठाटबाट, वेशभूषा और रुचि बना ली। दिखावट-बनावट और प्रसिद्धि की इन्हें कुछ भी चाह नहीं थी। इस युग की गति उन्हें नहीं व्यापी थी। उन्हें देखकर शायद ही कोई कह सकता कि उन्होंने बी० ए० तक अँगरेजी पढ़ी है।

इनका स्वभाव विनोदप्रिय सरल, उदार और सज्जनोचित था। मित्र-मंडली में ये अपने इस स्वभाव के कारण बहुत प्रिय थे। काशी में तो ये रहते ही थे। प्रयाग, लखनऊ आदि में भी इनके दौरे अक्सर हुआ करते थे। ऐसे अवसरों पर दल के दल साहित्य-सेवी, जिनमें अँगरेजी पढ़े-लिखे नवयुवकों से

लेकर पुरानी चाल के कविगण और शायर भी होते थे, इन्हें घेरे रहते थे। प्रयाग में रसिक-मंडल नामक ब्रजभाषा-कवि-समाज की स्थापना में इनकी ही विशेष प्रेरणा रही। वहाँ ये बहुधा जाया आया करते थे और ब्रजभाषा-कवियों को प्रोत्साहित किया करते थे। काशी-नागरी-प्रचारिणी सभा के भी ये मान्य सदस्य थे और इनकी दी हुई निधि से रत्नाकर-पुरस्कार की भी व्यवस्था सभा-द्वारा की गई। सभा के आर्थिक सहायता देने के अतिरिक्त उन्होंने अपना पुस्तक-संग्रहालय भी सभा को प्रदान किया है। अपनी नौकरी से छुट्टी लेकर वे अंतिम दिनों में सूरसागर के शुद्ध संस्करण के प्रकाशनार्थ अथक परिश्रम और धन-व्यय कर रहे थे। दुःख है कि वह कार्य उनके जीवनकाल में पूरा न हो सका, केवल तीन चौथाई होकर रह गया। उनके आदेशानुसार नागरी-प्रचारिणी सभा उस अधूरे कार्य की पूर्ति की व्यवस्था कर रही है। "बिहारी-रत्नाकर" नामक रत्नाकर जी द्वारा की गई बिहारी की प्रामाणिक टीका इस विषय की श्रेष्ठ और सुसंपादित पुस्तक मानी जाती है। (यद्यपि रत्नाकर जी ब्रजभाषा के ही अनन्य भक्त थे किंतु खड़ी बोली में भी इन्होंने दो कवित्त लिखे हैं। ये कवित्त अब तक प्रकाशित नहीं हुए। जन्म भर ब्रज की माधुरी में निमग्न रहनेवाले इस कवि ने खड़ी बोली की कविता में जो कुछ लिखा वह अपने अनोखे आकर्षण के कारण उद्धृत करने योग्य है।)

(१)

आशा व्योममंडल अखंड तम-मंडित में
उषा के शुभागम का आगम जनाता है।
उच्च अभिलाषा कंजकलिका अधोमुख को
प्रान फूँक फूँक मुकलित दरसाता है॥
भारत-प्रताप-भानु उच्च-उदयाचल से
कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।
भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का
गंधी गंधवाहक सुगंध लिए आता है॥

(२)

नीरव दिगंगना उमंग रंग प्रांगण में
जिसके प्रसंग का अभंग गीत गाती हैं।
अतुल अपार अंधकार विश्व व्यापक में
जिसकी सुज्योति की छटाएँ छहराती हैं॥
जिसके अमंद मुखचंद के विलोके बिना
पारावार तरल तरंगें उफनाती हैं।
पाने को उसी की बाँकी झाँकी मन मंदिर में
मंद मुसकाती गिरा गुप्त चली आती हैं॥

शब्द-योजना के इस अद्भुत आचार्य और करामाती कारीगर, को ता० २१ जून १९३२ को हरिद्वार में गंगालाभ हुआ था।

विषय-सूची

रत्नाकर



स्वर्गवासी बाबू जगन्नाथदास रत्नाकर

मंगलाचरण

जाकी एक बूँद कौं बिरंचि बिबुधेस, सेस, सारद, महेस है पपीहा तरसत हैं ।
कहै रतनाकर रुचिर रुचि ही मैं जाकी मुनि-मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं ।।
लहलही होति उर आनँद-लवंगलता जासौं दुख-दुसह-जवासे झरसत हैं ।
कामिनि-सुदामिनी-समेत घनस्याम सोई सुरस-समूह ब्रज-बीच बरसत हैं ।।

चित-चातक जाकौं लहत, होत सपूरन-काम ।
कृपा-बारि बरसत बिमल, जै जै श्रीघनस्याम ।।

परम रम्य आराम सुखद बृंदाबन नितहीँ,
पर पावस-सुषमा असीम जानत कछु चितहीँ।
जा पर ललकि लुभाइ भाइ भरि आनँदकारी,
बिहरत स्यामा-संग स्याम गोलोक-बिहारी ॥ १ ॥

हरित भूमि चहुँ कोद मोद-मंडित अति सोहै,
नर की कहा चलाइ देखि सुर-मुनि-मन मोहै।
मानहु पन्ननि सिला संचि बिरची बिरंचि बर,
जेहिँ प्रभाव नहिँ करत नैंकु बाधा भव-विषधर ॥ २ ॥

इत-उत ललित लखातिँ चटक-रँग बीरबधूटी,
मनहु अमल अनुराग-राग की उपजीँ बूटी।
दूबनि पै झलमलत बिमल जलबिंदु सुहाए,
मनु बन पै घन वारि मंजु मुकुता बगराए ॥ ३ ॥

तरुवर तहाँ अनेक एक सौं एक सुहाए,
नाना-बिधि फल फूल फलित प्रफुलित मन-भाए।
कहूँ पाँति बहु भाँति अमित आकृति करि ठाढ़े,
कहूँ झुंड के झुंड झुकैँ झूमैँ गथि गाढ़े ॥ ४ ॥

चंपा - गुंज-लवंग - मालती - लता सुहाईं,
कुसुम-कलित अति ललित तमालनि सौं लपटाईं।
साजे हरित दुकूल फूल छाजे बनिता बहु,
निज-निज नाहैं अंक निसंक रहीँ भरि मानहु ॥ ५ ॥



मंजुल सघन निकुंज कहूँ सोभा सरसानी,
गुंजत मत्त मलिंद-पुंज जिनपै सुखदानी।
चढ़यौ अटा छबि-छटा हेरि हिय हरष बढ़ावत,
मनु रस-राज समाज साजि कै गुन-गन गावत ॥ ६ ॥

जहँ तहँ सरवर, झील, ताल, सोहत जल-पूरित,
सलिल सिमिटि कहुँ लघु सरिता धावतिँ धरधूरित।
अति मलीन दुति-हीन बिरह-आधीन छीन-तन,
मानहु खोजत फिरत जीवनाधार तिया-गन ॥ ७ ॥

एक ओर गिरिराज लसत गिरि-गौरव-कारी,
परम गूढ़ सुबिलास रास-रस कौ अधिकारी।
लहलहात ह्वै हरित-गौर-स्यामल-रंग-राँचौ,
पुलकित-तन रस-सराबोर अबिचल-ब्रत साँचौ ॥ ८ ॥

भंजन भव-भ्रम-काच कुलिस-आगार मनोहर,
गंजन हिय-तम-तोम तरनि-उदयाचल सुंदर।
प्रेम-पयोधि-रतन-दायक मंदर कन जाके,
कंचन-करन, हरन-कलमस पारस मनसा के ॥ ९ ॥

जित तित नाचत मोर पपीहा कल धुनि गावत,
सजत सरंगी भृंग मेघ मिरदंग बजावत।
कूदत करत कलोल दरत दादुर करतारैं,
तेहिँ सुभ सुखद समाज झाँझ झिल्ली झनकारैं ॥ १० ॥

पवन-प्रसंग उमंगि देत तरु-पल्लव ताली,
चटकावति चहुँ ओर चपल चुटकी चटकाली।
मनहुँ तिहूँ पुर की सुषमा बृंदाबन आई,
बनदेवी सुख-साज साजि बरतति पहुनाई॥ ११॥

पाइ प्रसून-प्रसंग पौन परिमल बगरावत,
दाता-ढिग सौं आइ गुनी ज्यौं जस फैलावत।
कबहुँ मंद जल-बिंदु परत कहुँ सुख-सरसाए,
आनँद-अस्रु सहस्र-नैन मनु स्रवत सुहाए॥ १२॥

चहुँ दिसि तैं घन घोरि घेरि नभ-मंडल छाए,
घूमत, झूमत, झुकत औनि अतिसय नियराए।
दामिनि दमकि दिखाति, दुरति पुनि दौरति लहरैं,
छूटि छबीली छटा-छोर छिन छिन छिति छहरैं॥ १३॥

मानहु संचि सिँगार हास के तार सुहाए,
धूपछाँह के बीनि बितान अतन तनवाए।
पाइ प्रसंग प्रमोद-पौन कौ सो हलि हलकैं,
पल पल औरै प्रभा-पुंज अद्भुत-गति झलकैं॥ १४॥

कहुँ तिनकैं बिच लसति सुभग बग-पाँति सुहाई,
मुकता-लर की मनौ सेत झालर लटकाई।
कहूँ साँझ की किरनि करति कछु कछु अरुनाई,
मनु सिँगार की रासि राग-रुचि की रुचिराई॥ १५॥

ठाम एक अभिराम मंडलाकृति तहँ भ्राजै,
जाकौ बानक बिसद बिसेस बिचित्र बिराजै।
मेदिनि-मंडल-मंजु-मुद्रिका-मनि मन मानौ,
जिहिँ अंकित चित होत प्रेम-पथ कौ परवानौ ॥ १६ ॥

सम उँचान के बिटप बलित-बल्ली चहुँ ओरनि,
हरित-बनात-कनात कलित मानहुँ कल कोरनि।
तिनपै रंग-बिरंग सुमन, पल्लव, पंछी-गन,
सो मानौ बहु चित्र बिचित्र रचे मन-भावन ॥ १७ ॥

पत्र-बीच है झलकति कहूँ कलिंद-नंदिनी,
कोटि-कोटि-कलि-कलुष-करार-निगर-निकंदिनी।
रस सिँगार की सरस सरित त्रय-ताप-नसावनि,
कूर-कुपथ-गामिनि की पातक-पंक-बहावनि ॥ १८ ॥

असित-ओप असि दुख-दरिद्र-दल-गंजन-हारी,
हरि-जन-पांडव-काज लाज-द्रौपदि की सारी।
स्याम रंग सौँ लिखी प्रेम-पद्धति की पंगति,
जाकी टीका सब पुरान-इतिहासनि रंगति ॥ १९ ॥

अखिल-लोक-नायक-प्रमोद-दायक-पटरानी,
प्रिय प्रीतम कैँ रुचिर रंग राँची सुख-सानी।
ब्रज-रहस्य के परम तत्त्व की जो कछु पूँजी,
इक याही की कृपा-कोर ताकी कल कूँजी ॥ २० ॥

सुमन हिँडोरा लसत एक तेहिँ मंडल माहीँ,
जाकौँ बानक बिसद बिलोकि सुमन सकुचाहीँ ।
सुख-सागर-तरंग-दीच्छा-गुरु राजत मानौ,
तरुनि तियनि की चल चितौनि कौ सार बखानौ ॥ २१ ॥

कैधौँ लाज मदन कैँ मध्य परयौ मध्या-जिय,
कै अभिसार-समै कलकामिनि कौ धरकत हिय ।
किधौँ राग कुल कानि बीच अनुरागिनि कौ चित,
सकै न ठिकु ठहराइ जात आवत नित उत इत ॥ २२ ॥

चुनि चुनि बेला कलिनि अलिनि लर गूँथि बनाईँ,
रचि रचि रेखैँ रुचिर दुहूँ खंभनि लपटाईँ ।
कहूँ फूल, कहुँ बेल, कहूँ बूटे, कहुँ तरवर,
बिच बिच तिनकैँ कीर, मोर, मृग औ सुरभी बर ॥ २३ ॥

बाँधि सुमन बहुरंग उमंग-समेत बनाए,
जहँ जहँ जो जो उचित रंग सोई सो लाए ।
मनहुँ बिबिध बपु धरि निरखत छबि-छकित सुमन-गन,
सत-गुन-सहित लसत चहुँ दिसि अति मुदित मुनिनि मन ॥२४॥

तिनपै तैसिहि सुमन सजित इक धरी मयारी,
गुच्छनि के करि कलस दुहूँ दिसि सुघर-सँवारी ।
रूप-गर्ब, गुन-गर्ब दर्पि जनु सीस उठायौ,
पुनि सुभाव-गौरव सौं दबि अति आदर पायौ ॥ २५ ॥

कंज-कली-आकृति, समान सब, पँच-रँग-पूरे,
लाइ सुमन बहु भाँति पाँति करि रचे कँगूरे।
लखि तीछन सोभा तिनकी यह परत जनाई,
मानहु कुसुमायुध बाननि की बाढ़ जमाई ॥ २६ ॥

लसत बीच इक मत्त मोर सिर पुच्छ पसारे,
परत पिछान न बन्यौ सुमन चुनि बहु-रँग-वारे।
कदम-कुसुम की बंदनवार बनाइ लगाई,
झूमत जाकैं बीच एक झूमर सुख-दाई ॥ २७ ॥

चारु चारि डोरी रेसम की लै लटकाईं,
जिनमैं फूलनि की बहु ललित लरैं लपटाईं।
परयो पाट सुख-कंद बिमल चंदन कौ तिनमैं,
पसरति मंद सुगंध दंदहर बिपिन बिपिन मैं ॥ २८ ॥

ताकैं चारौं ओर बने जँगला बेला के,
बने हंस तिन माहिँ प्रसंसनीय सुषमा के ।
स्वच्छ सुघर भव-पंक-रहित मानौ संतनि मन,
बिहरत पूरि प्रमोद सतोगुन कैं नंदनबन ॥ २९ ॥

कल-कोमल-धुनि-धाम घंटिकावलि सुर-साधीँ,
बढ़-घट मेल मिलाइ लसतिँ छोरनि मैँ नाधीँ ।
गादी ललित लाल मखमल की नरम बिछाई,
हरित दौर चहुँ ओर कोर पीरी छबि छाई ॥ ३० ॥

मनहु अमल अनुराग-भूमि सोहति सुखदाई,
हरित आस की दूब चारु चहुँ पास लगाई ।
रचि पचि माली-काम परम अभिराम बनाई,
अटल प्रीति-पुखराजि-मेड़ि मंजुल मन-भाई ॥ ३१ ॥

मिलि सब साज समाज बँध्यौ इमि समौ सुहायौ,
चतुरानन जिहिँ चाहि चातुरी-गर्व गँवायौ ।
हेरि हिंडोरे की सुषमा सुंदर सुघराई,
अति अद्भुत अनूप उपमा आवति अधिकाई ॥ ३२ ॥

अटल बिबेक ज्ञान पर दृढ़ बिस्वास धर्‌यो मनु,
अर्थ, धर्म अरु काम, मोच्छ ताकैं अधीन जनु ।
ब्रह्मानंद अमंद परम दुर्लभ सुभकारी,
राजत तिनकैं मध्य मंजु छाजत छबि भारी ॥ ३३ ॥

झूलत स्यामा स्याम कोटि-रति-काम-प्रभाधर,
थाई रति अरु रस सिँगार जनु धारि अंग बर।
कै सुखमा सौंदर्य्य अनूप रूप रचि राजत,
मृदुल माधुरी औ लावन्य ललित कै भ्राजत ॥ ३४ ॥

सुकृति-बिभूति भाग-वैभव कीरति जसुमति के,
पुन्य-प्रभा-प्रभाव वृषभानु नंद गोपति के।
सुख-संपति औ परम प्रान-धन ब्रजबासिनि के,
सिद्धि-रासि तप-तेज-तरनि जावत जोगिनि के ॥ ३५ ॥

सुभ सोभा सौभाग्य सुभग संकर-उर-पुर के,
सकल सुमृति अरु बेद-सार सरनालय सुर के।
कलपलता चिंतामनि चारु सुकबि रसिकनि के,
जिय जानत न कहात कहा अनन्य भक्तनि के ॥ ३६ ॥

पीत-नील-पाथोज-बरन मनहरन सुहाए,
कोमल अमल अमोल गोल गातनि छबि छाए ।
तरुन-अरुन-बारिज-बिसाल लोचन अनियारे,
रंग रूप जोबन अनूप कैं मद-मतवारे ॥ ३७ ॥

भाय-भेद-भरपूर चारु चितवनि अति चंचल,
बरुनी सघन कोर-कज्जल-जुत लसत दृगंचल ।
भृकुटी कुटिल कमान सान सौं परसतिं काननि,
नैकुं मटकि मुरि मूकभाव के बरसतिं बाननि ॥ ३८ ॥

जदपि दुहुनि के नैन मैन-अभिलाष-सील-मय,
तदपि सुनहु कछु भेद गुनहु मन सूच्छम अतिसय ।
उनके सफरी स्वच्छ, अच्छ पाठीन सु इनके,
उनके संध्या-कुमुद, कंज इनके पुनि दिन के ॥ ३९ ॥

उनकैं लाज सकोच लोच की कछु अधिकाई,
इनकैं हौस-हुलास-रासि की आतुरताई ।
दोउनि की छबि पै दोऊ ललकत ललचौहैं,
पै इक सौंहैं लखत एक करि नैन निचौंहैं ॥ ४० ॥

हरित घाँघरौ घेरदार उत दरियाई कौ,
सकल सुनहरौ साज सज्यौ सुठि सुघराई कौ ।
हरी पामरी जरी-कोर-बारी कौ आछौ,
चुनि चिकनाइ चमेटि फेटि काछ्यौ इत काछौ ॥ ४१ ॥

कसी कुसुंभी कठिन कंचुकी उत मलमल की,
कलित कोर चहुँ ओर प्रभा-पूरत झलमल की।
लसत लाल बागौ बनाव-जुत इत अति नीकौ,
बन्यौ काम जामैं दुति-दाम कामदानी कौ ॥ ४२ ॥

सारी जरतारी भारी उत चटापटी की,
लागी जामैं गोट तमामी पटापटी की।
आँचल पल्लव, औ तुरंज सब जगमग-कारी,
पीत सेत कल किरन तरनि-मद-मर्दनहारी ॥ ४३ ॥

पंचरंग-उपब्यौ दुपटौ करेब कौ त्यौं इत,
बेल कारचोबी जामैं सोहति मोहति चित।
झलमलाति छोरनि झीनी झालर मुकेस की,
फबति फूँदननि मैं मुकतावलि मोल बेस की ॥ ४४ ॥

चारु चंद्रिका फूलनि की सोहति उत भाई,
लालन की मति जाहि निरखि बिन मोल बिकाई।
सिर चढ़ि इत इतरात मुकुट त्यौं फूलनि ही कौ,
बरबस बस करि लेनहार चित चतुर लली कौ ॥ ४५ ॥

महमहाति उत फूलनि सौं गूथित बर बेनी,
रूप-कल्पलतिका-कुसुमावलि सी सुख-देनी।
लोल सुडौल सुमन-सिरजित झूमक इत झूमत,
हुलसत बिलसत गोल अमोल कपोलनि चूमत ॥ ४६ ॥

दोउनि कैँ अँग फूलनि ही के लसत बिभूषन,
जिनहिँ बिलोकि हेम-मनिमय लागत जिमि दूषन।
दोउनि की बढ़ि रही ओप इमि साहचर्ज सौँ,
सदा-समीपिनि सखिहुँ लखतिँ अति आहचर्ज सौँ॥ ४७॥

चहुँ दिसि करतिँ कलोल लोल-लोचनि आलीगन,
नाचतिँ गावतिँ बिबिध बजावतिँ बाद मुदित-मन।
सकल रूप-जोबन-अनूप-गुन-गर्ब-गसीली,
जुगल-रसासव-मत्त राग-रँग-रत्त रसीली॥ ४८॥

करतिँ चंद-दुति मंद अमल मुखचंद-उजारी,
मुनि-मन-माहिँ मनोज-मौज उपजावनहारी।
चंचल चपल चलाँक चुलबुली चेटकहाईँ
चुहुल चोचले चोज चाव कैँ चाक चढ़ाईँ॥ ४९॥

नख-सिख नव-सत सजे बैस नव-सत सुखदाई,
निधि नव, सत अपसरनि सुमति लखि जिनहिँ लजाई।
आपुस मैँ करि छेड़छाड़ ऐँड़तिँ इतरातीँ,
पिय प्यारी की ओर हेरि हिय हुलसि सिरातीं॥ ५०॥

कोउ पद के बहु भेदनि सौँ रौँदति हठि हिय कौँ,
करि हस्तक बहु भाँति करति कर मैँ कोउ जिय कौँ,
नैन-सैन सौँ लेति कोऊ हरि सैन नैन कौ,
सीस फिराइ फिराइ देति कोउ सीस मैन कौ॥ ५१॥

लंक लचाइ अप्सरनि की लंकहिँ कोउ तोरति,
मुख मरोरि कोउ गंधर्बनि के मुखहिँ मरोरति।
उच्च कुचहिँ उचकाय कोऊ संकर-उर सालति,
ग्रीव हलाइ संकोच-भार कोउ सुर-गर घालति॥ ५२॥

जानु-भेद-जाह्नवी जानु सौँ कोउ प्रगटावति,
ऊरु-भेद-रंभा कोउ ऊरुनि सौँ उपजावति।
किंकिनि, कंकन, नूपुर की धुनि धूम मचावति,
अतन पंचसायकहिँ घेरि बहु नाच नचावति॥ ५३॥

गाइ मलहार छाइ आनँद कोउ सारँग-नैनी,
कल कल्यान-मेघ-झर लावति कोकिल-बैनी।
लेति देस की ललित तान कोउ ऐरावत-गति,
दमकावति गूजरि मुद मंगल सौदामिनि-तति॥ ५४॥

सुभ सुघरइ-दीपक-लौ सी कोउ गोप-कुमारी,
भूपाली सौँ देति कान्हरायहिँ सुख भारी।
ध्रुवपद सौँ इक ध्रुव-पद करति राग रागिनि कौँ,
सरिगम सौँ इक निधिप करति स्तुति बड़-भागिनि कौँ॥ ५५॥

अलबेली इक तान-जोड़ के परी ख्याल मैँ,
आरोही अवरोही करति अलाप-चाल मैँ।
कोउ गमकावति गमक ठमकि कोउ तमकि तराना,
कोउताननि के तनति तरल बहु ताना-बाना॥ ५६॥

सुभ अवसर जिय जानि मानि मन मोद महाई,
केती मिलि स्रुति-धारिनि की ज्यौनार जमाई।
कोऊ पखावज-कलस लिये सनमान-जतावति,
परन-नीर लै जगत-पीर सौं हाथ धुवावति ॥ ५७ ॥

कोऊ तानपूरा की लै कर माहिँ सुराही,
मधुर सुखद सुर-सरबत मंजुल देति उमाही।
कोउ काँधे पर लिए बीन-बहँगी बर नारी,
षट-रस ब्यंजन रागनि के परसति रुचिकारी ॥ ५८ ॥

लिए सरंगी की किसती कोऊ सुकुमारी,
मृदु मोदक, कतरी काटति ताननि की ढारी।
देति ताल-चटनी कोउ लै मंजीर-कटोरी,
सकल सवाद सवाँरन के हित आनँद-बोरी ॥ ५९ ॥

लै मुहचंग उमंग भरी कोउ बिनय सुनावति,
जेवँहु जेवँहु जेवँहु जेवँहु की धुनि लावति।
कोऊ पाकसासन-समाज पर ताल वजावति,
कोउ सुर-बनितनि कौं चट चुटकिनि माँझ उड़ावति॥ ६० ॥

दोउ दिसि द्वै द्वै धन्य जन्म जिनके सुर मानत,
सेवतिँ रुचि अनुसार भाव भृकुटी सौं जानत।
लखतिँ गूढ़ अति भाव सुनतिँ आपुस की बातैँ,
लहतिँ स्रौन-दृग-लाहु लाड़िली-लाल-कृपा तैँ ॥ ६१ ॥

एक ओर ललिता औ दूजी ओर बिसाखा,
प्रेम-पदारथ-देनहारि सुर-तरु की साखा।
दंपति-सुख-संपति-अनूप-निधि की रखवारिनि,
कृपा-कलित मुसक्यानि मंद की नित अधिकारिनि॥ ६२॥

जिनकौ कछु न कहाइ जदपि स्रुति सेस बखानैं,
चहन लहन अरु कहन आपुनी आपुहिँ जानैं।
काछि कछौटा बाँधि फेँट पटुली पर ठाढ़ी,
लंक लचाइ देतिँ मचकी दुहरी अति गाढ़ी॥ ६३॥

बढ़ि झोँटा अति तरल भए लाग्यौ पट फहरन,
लग्यौ पाट द्रुम-बेलिनि के झुंडनि मैँ झहरन।
पल्लव पुहुप प्रतेक पैँ मैँ कछु लगि आवत,
परि परि भूमि पाँवड़े लौँ परमादर पावत॥ ६४॥

कबहुँ लतनि मैँ लगि कोउ अंग उघारति सारी,
चौँकि चकाइ तुरत तिहिँ सकुचि सम्हारति प्यारी।
लखति लाल की ओर लाज-स्नेसित नैननि सौँ,
कछु जाननि की चाह जाति जानी सैननि सौँ॥ ६५॥

पै उनकौँ लखि लखत ताहि दिसि मृदु मुसुकौँहैँ,
कहि कछु बात बनाइ लेति करि नैन निचौँहैँ।
तब कछु बोलि ठठोलि लाल यह ख्याल बनावत,
हँसि निज ओर लखाइ लाड़िलिहुँ हरखि हँसावत॥ ६६॥

एक बेर निज ओर पँग की होत उँचाई,
सम्हरि न सकी सयानि सरकि प्रीतम-उर आई ।
लियौ लाल भरि अंक रंक संपति जनु पाई,
भौचक सी ह्वै रही कही मुख बात न आई ॥ ६७ ॥

सावधान ह्वै छूटि भुजनि सौं पुनि बिलगाई,
भ्रकुटी-कुटिल-कमान ढिठाई जानि चढ़ाई ।
करि गँभीर रचना चतुराई सौं बैननि मैं,
छमा कराई छैल छबीली सौं सैननि मैं ॥ ६८ ॥

पुनि मन मैं कछु गुनि गोपाल मंद मुसुकाने,
निरखि नबेली-ओर कटाच्छनि सौं ललचाने ।
अति अद्भुत उत्तर ताकौ तब दियौ रसीली,
ओठ हलाइ ग्रीव मटकाइ रही गरबीली ॥ ६९ ॥

अधर दबाइ हलाइ ग्रीव मुसक्याइ मंद अति,
भलौ भलौ कहि कान्ह ठानि मन अचगरि की मति ।
मिस करि जानि बूझि बरबसहिं सरकि इत आए,
चकपकाइ चट प्यारी सौं गाढ़ैं लपटाए ॥ ७० ॥

औचक अमल कपोल चूमि चट पुनि बिलगाने,
ललितादिक-दिसि देखि दबाइ दृगनि इठलाने ।
लाड़नि लोचन किये लाड़िली कछु अनखौंहैं,
पै लखि लाल अधीर धीर धरि किये हँसौंहैं ॥ ७१ ॥

उठी उमंग तरंग बैठि नहिँ सके कन्हाई,
अति निहोरि कर जोरि किसोरिहुँ नीठि उठाई।
बहु बिधि बिनय सुनाइ खाइ हाहा बरियाईँ,
ललिता और बिसाखा इक इक ओर बिठाईँ॥ ७२॥

लियौ लपेटि फेट मैँ कसि समेटि दुपटा कौँ,
दियौ अनंगहिँ इंद्र-धनुष जनु जगत कटा कौँ।
अखिल तान-बाननि की बिसद निषंग बाँसुरी,
दई बाँधि तिहिँ संग भंग जो करति पाँसुरी॥ ७३॥

उनहुँ लियौ उत कटि तट उरसि छोर निज पट कौँ,
मृदु मुसकाइ उचाइ निचाय नैकु घूँघट कौँ।
मनहुँ मानि मन माष संभु नहिँ धर्यौ अंग पर,
पूर्न रूप सौँ सुधा स्रवत बिधुबर अनंग पर॥ ७४॥

पुनि घूमनि चुनि चारु घाँघरे की उमंग सौँ,
नासा अधर मरोरि हँसी रँगि अनख-रंग सौँ।
मनु सुकुमारि उठाइ सकति नहिँ निज उछाह कौँ,
देति भार ताकौ अति सुखद सयानि नाह कौँ॥ ७५॥

लियौ कछौटौ काछि चढ़ाइ कछुक इत औ उत,
मुरवनि सौँ रंचक उचाइ सकुचाइ सान-जुत।
मनहुँ हरित घन सघन सहित-दामिनि-जुरि आए,
पन्ननि के द्वै धराधरनि की संधि समाए॥ ७६॥

दुहुँ दिसि तैँ दोउ दमकि दूमि लागे झुकि रेलन,
लखि सुषमा सखिजन लागीँ सुखसार सकेलन।
इक छबि-छकि चकि रही एक कौँ एक लखावति,
"बलिहारी" कहि एक जनम-जीवन-फल पावति ॥ ७७ ॥

परम समीपिनि दोऊ साधि सुर मधुर रसीले,
कल कोकिलनि गुमान-गहक निजताननि कीले।
अति हुलास सौँ ललकि लगीँ सावन सुभ गावन,
अपर रागिनिनि सोइ पद पावन कौँ तरसावन ॥ ७८ ॥

बढ़ी पैँग पुनि बहुरि पाट द्रुम-डारनि परसत,
इत उत के पल्लव उत झुकि परसन कौँ तरसत।
एक ओर सौँ झमकि झूमि आवति उमंग सौँ,
एक ओर सौँ कछु सिथिलित सी सरल ढंग सौँ ॥ ७९ ॥

बैठत उठत लाड़िली के लालन कछु मन कहि,
ग्रीव हलाइ नचाइ भौँहँ बिहँसे उत कौँ चहि।
चित-चोरनि चितवनि सौँ चपल चितै सकुचानी,
मुसक्यानी मुख मोरि मंद मन की मन जानी ॥ ८० ॥

अद्भुत अकह अनूप अनंत हाय-भायनि की,
लुरतिँ लरी की लरी भरी अति चित-चायनि की।
इहिँ बिधि बिबिध बिनोद-मोद-मंडित दोउ झूलत,
बनि बिहंग बहुरंग लखत सुर सुरपुर भूलत ॥ ८१ ॥

स्रम-जल-कन अति-अमल आनि अलकनि अधिकाने,
मनु सिँगार कैँ तार हास-मुकता मन-माने।
सोऊ पिय-प्यारी-अनूप-पानिप सौँ लाजैँ,
ह्वै पानी च्वै परैँ पाय परसन के काजैँ ॥ ८२ ॥

आनन हूँ मैँ कछु औरै सुषमा सरसाई,
गैार-स्याम दुति माहिँ अधिक आई अरुनाई।
अंग अंग के सहित उमंग मनहुँ हलकन सौँ,
दोउ-घट के अनुराग प्रगट दीसत छलकन सौं ॥ ८३ ॥

जानि थकित हित मानि ठानि बहु नेह-निहोरे,
आपुस मैँ करि सैन बैन रचि अति रस-बोरे।
मृदु मुसक्याति निहारि नैन संजुत-सुघराई,
बिनय बिसाखा औ ललिता पग परसि सुनाई ॥ ८४ ॥

मनमानी ह्वै चुकी मानि मन-बात हमारी,
स्रम मेटहु अब नैँकु पौँढ़ि दोऊ पिय-प्यारी।
मंद मंद सानंद पाट हम पकरि झुलावैँ,
दोउनि सुख सरसात निरखि नैननि सियरावैँ ॥ ८५ ॥

सुनि हितूनि के मृदुल बैन बोरित हित रस मैँ,
नीठि नीठि रोकी मचकी जनु परि परबस मैँ।
परसि परसि पग पुहुमि पैँग ललिता ठहराई,
दूरि करति ज्यौँ भक्ति चारु चित-चंचलताई ॥ ८६ ॥

सुमुखि सुलोचनि भरीँ-भाय चहुँ दिसि तैँ धाईँ,
मानहुँ मन-थिर होत सकल सिधि निधि जुरि आईँ।
सादर पुलकि पसीजि रीझि सो सुमन उठाए,
उझकत झूलत मदन-बान लौँ जो महि आए ॥ ८७ ॥

नैननि लाइ चढ़ाइ सीस कोउ अति सुख पावति,
चूमि कोऊ रस घूमि झूमि सुधि बुधि बिसरावति।
रही सूँघि औ ऊँघि एक द्वै सुमन मिलाए,
तीन लोक फल चारि वर्ग सौँ मनहिँ हटाए ॥ ८८ ॥

राई लोन उतारि कोऊ कछु अधर हलावति,
कोउ कनपटियनि चाँपि चारु अँगुरिनि चटकावति।
लालन-कर निज करनि बीच करि कोउ सहरावति,
कोउ प्यारी के पकरि पानि निज अंगनि लावति ॥ ८९ ॥

उतरि परीँ दोऊ तुरंत अंतर-हित भीनीं।
सिमिटनि सूँति सँवारि सेज सज्जित पुनि कीनी।
अति उमाह सौँ पकरि बाँह दोउनि बैठारयौ,
लै कोमल पट परसि बदन स्रम-सलिल निवारयौ ॥ ९० ॥

सुधा-स्वाद-सुख बाद-करन-हारे रस-भीने,
सुचिता सहित सवाँरि धारि दौननि फल दीने।
चुनि चुनि रुचि अनुसार दुहूँ दोऊनि खवाए,
महा मोद मन मानि पानि-आनन-फल पाए ॥ ९१ ॥

सीतल स्वच्छ सुगंध सलिल लै कंचन झारी,
दोउनि कौं अँचवाइ चाइ भरि चहत मुखारी।
बिसद बिलहरी खोलि उसीर-रचित पनसीरी,
हरनि-हरास बरास-बसित दीनी मुख बीरी ॥ ९२ ॥

सजि सनेह सौं थार आरती उमँगि उतारी,
मनु पतंग बनि दीप देह-दुति पै बलिहारी।
चहुँ दिसि तैँ उमगाइ धाइ आरति सब लीनी,
पाइ प्रसाद प्रसन्न नाद सौं जै-धुनि कीनी ॥ ९३ ॥

मृदु उसीस दै सीस ढुरे सुख सौं दोउ दंपति,
मृदुता-सीस-उसीस सुखद सुख के सुख-संपति।
इक लजात सकुचात गात पट-ओट दुराए,
इक ललचत मुसक्यात ओठ औ अधर दबाए ॥ ९४ ॥

सहज सहज लागीँ दोऊ गहि पाट झुलावन,
ब्रह्मादिक के भूरि भाग कौ मान मिटावन।
परम प्रवीन प्रभाव प्रकृति पहिचाननहारी,
झोँका लगन न देतिँ देतिँ गति अति रुचि-कारी॥ ९५॥

आगहिँ तैँ गहि पाट उमहि अपनी दिसि ल्यावतिँ,
पुनि कछु बढ़ि अति सरल भाव सौँ झुकि लौटावतिँ।
ज्यौँ अतिथिहिँ सादर उदार आगैँ ह्वै ल्यावत,
बिदा करन की बेर फेर मग लौँ पहुँचावत ॥ ९६ ॥

लागैँ सुखद समीर अंग आरस-रस भोए,
पलकैँ लईँ लगाइ दोऊ आनंद समोए।
सोवत जानि सुजान सखी गहि मौन थिरानीँ,
इक इक करि टरि सकल जाइ कुंजनि बिरमानीँ ॥९७॥

आहट बिगत बिचारि चारि दिसि प्रीतम प्यारे,
हाँस भरे दृग सहज सहज सहुलास उघारे।
मानहुँ साँचहिँ लगी नीँद कहि हँसि सुखदाई,
गुदगुदाइ गोरिहुँ दृग की अलसानि छुड़ाई ॥ ९८ ॥

आपुहुँ उतरि निकुंज चले दुहुँ दुहुँ सुखकारी,
जय जय जुगल किसोर जयति ब्रज-बिपिन-बिहारी।
जय दोउ इक-मन एक-प्रान एकहि-रस-मय जय,
आकारहिँ करि पृथक स्याम स्यामा जय जय जय ॥ ९९ ॥

सावन सुकल पुनीत परम तिथि पूरनमासी,
रतनाकर-उर मैँ तरंग उमड़ी सुखरासी।
*मन[१] इंद्रिय[५] अरु भक्ति[९] सहित गोपालहिँ[१] लायौ,
तिहिँ तरंग मैँ रचि झूलन अति रुचिर झुलायौ ॥१००॥

संवत १९५१।

असद काव्य औ सम्मति मैं, यह कठिन न्याव अति,
बुद्धि-रंकता अधिक प्रकासत कौन, धीरमति;
पै दोउ दोषनि मैं, बरबस अकुतैबो चित कौं
न्यून हानिकारक सुबिबेकहिं बहकावन सौं ॥
चूकत वामैं कछू एक यामैं अनेक हैं;
दूषित दूषन देत दौगि दस लिखत एक हैं ॥
क्रूर कोऊ इक बेर जगत मैं निजहिं हँसावैं,
पै कुपद्य कौं एक गद्य मैं किते बनावैं ॥

नर बिबेचना, घड़िनि समान, मिलतिँ द्वै नाहीँ,
पै अपनी अपनी कौँ सब पतियात सदाहीँ ॥
कबिनि माहिँ सद्काव्य-सक्ति बिरलय ज्यौँ आई,
त्यौँ बिबेचकनि-भाग रसास्वादन-लघुताई;
दैव दियैँ बिनु सुभग सक्ति दोऊ नहिँ पावत,
लिखन-हेत कै तर्क-हेत जे इहिँ जग आवत ॥
ते सिखवन के जोग्य आप जे होहिँ कुसलतर,
ते दूषहिँ तौ फबै आप जिनि कियौ काव्य बर ॥
निज रचना कौ पच्छ साँच यह कर्तन माहीँ,
पै निज मत कौ कहा बिबेचक कौँ हठ नाहीँ ?
पै करि गूढ़ बिचार चारु मति मत यह भाषत,
बहुधा मनुष बिबेक-बीज निज हिय मैँ राखत ॥
कम सौँ कम इक अल्प प्रकास प्रकृति दिखरावति,
रेखा, जदपि अपष्ट तदपि, सुध खंचित भावति ।
पै उद्धस ढाँचौ उत्तम औ सुभग चित्र कौ,
जदपि यथारथ बिरचित लसत, ललित चरित्र कौ,
भरैँ रंग बेढंग भदेस तदपि ज्यौँ भासै,
त्यौँ निकाम बिद्या सुबुद्धि कौँ बिसिष बिनासै ।
बिद्यालय-जालनि मैँ केतिक हैँ बौराने,
बने भँडेहर किते, प्रकृतिकृत कूर अयाने ॥

चमत्कार की खोज माहिँ निज बुद्धि नसावैं,
तब अपने बचाव कौं बनन बिबेचक धावैं।
दह्यौ जात प्रत्येक, सकै कछु लिखि कै नाहीँ,
प्रतिद्वंदिनि क्लीबनि के से द्वेषानल माहीँ॥
रहत सदा बुधिबिगत बिरावन कौं अकुलाने,
हँसनहार दल माहिँ मिलत अति आनँद-साने॥
होत कुकबि कोउ कछु खचाइ जो सारद-द्वेसी,
ता काव्यहु तैं तौ केतिनि की जाँच भदेसी॥
केते कोबिद बने प्रथम, पुनि कबि मनमाने,
बहुरि बिबेचक भए, अंत घोंघा ठहराने॥
किते न कोबिद न बिबेचक पद के अधिकारी,
जैसैं खर न तुरंग होहिँ कहुँ खच्चर भारी॥
ये अधपढ़े बुधंगड़ जग मैं भरे घनेरे,
अर्द्ध बने ज्यौं कीट नील सरिता के नेरे,
ये अनबने पदार्थ कौन संज्ञा-अधिकारी
परत न जानि पौध इनकी ऐसी भ्रमकारी;
बदन होहिँ सत तौ इनकी गनना करि आवै,
कै इक मिथ्या बुध को, जो सौ सहज थकावै॥
पै तुम जो सद्-सुयस-देन-पावन-अधिकारी,
सुबिबेचक पद परम पुनीत जथारथधारी,

होहु आप दृढ़, पहुँच आपनी कौँ परमानौ,
कहँ लगि निज बुधि, रस-अनुभव, बिद्यागम जानौ;
अपनी थाह बिहाइ बढ़ौ मत, गुनि पग धारौ,
अर्थ-सिथिलता मिलन-ठाम धरि धीर बिचारौ ॥

सकल बस्तु कौँ प्रकृति जथारथ सीमा दीन्ही,
अभिमानिनि की मति बिदलित, बिबेक करि, कीन्ही।
ज्यौँ जब एक ओर महि कौँ बढ़ि बारिधि बोरत,
आन दिसानि महान थान बलुवे बहु छोरत;
त्यौँ जब हिय मैँ रहति धारना की अधिकाई,
प्रौढ़ समुझ की सक्ति रहति बलहीन लजाई;
जहाँ कल्पना-ज्योति जगति अति जगमगकारी,
बहति धारना की कोमल आकृति बनि बारी ॥
एक बुद्धि के जोग सास्त्र एकहि सुखदाई;
बिद्या इती अपार, इती नरमति-लघुताई।
बहुधा एकहु सास्त्र सम्हारति इक मति नाहीँ,
ताहू मैँ अरुझाति एकही साखा माहीँ।
पूर्ब-प्राप्त हम बिजय नृपति-गन सरिस गँवावैँ,
ज्यौँ ज्यौँ तृष्ना बिबस अधिक लहिबे कौँ धावैँ,
जामैँ जाकौ गम्य ध्यान राखै ताही कौ,
तौ करि निज अधिकार-प्रबंध सकै सब नीकौ ॥

प्रकृति-प्रभाव निहारि प्रथम निज सुमति सुधारै,
ताके जाँच-जंत्र सौं, जो नित इक-रस-वारै।
प्रकृति अचूक, सदा सुंदर दैवी द्युतिवारी,
बिमल, बिगत-परिवर्त्तन, औ सब जग-उजियारी,
सब कछु कौं दाइनि जीवन बल औ सोभा की,
कारन औ उद्देस्य, कसौटी सकल कला की।

तिहि भँडार सौं कला, कुसलता उचित प्राप्त करि,
बिन दिखाव निज काज करति, प्रभुता •अतंक दरि;
त्यौं सुज्ञानप्रद आत्मा कोउ सुंदर तन माहीँ,
जीवन दै पोषति, सु ओज सौं भरति सदाहीँ;
प्रतिगति सोधति, अपर सकल स्नायुहिँ पोषति नित,
आप अदिष्ट सदा, पै कारज माहिँ रहति थित ॥
किते चातुरी जिन्हैँ दैव दीन्हीँ बिसेस चित,
चहति तेतियै और, सुभग ताके प्रयोग हित;
बहुधा तर्कऽरु वाक्यचातुरी प्रतिअपकारी,
जदपि बने हित-हेत परस्पर ज्यौं नर नारी ॥
काव्य-तुरंग सुढंग चलावन मैँ चतुराई,
ताके तातैँ करन माहिँ कछु नाहिँ बड़ाई;
काज कठिन अति ताकी बल्गदता कौ सासन,
दैबौ द्रुत दौराइ न कछु गौरव परकासन।

यह बाजी परदार, सुसील असील तुरी लौं,
प्रगटत पूरन गुन प्रभाव रोकौ तुम जौं जौं ॥

नियम पुरातन आविष्कृत, जो कृत्रिम नाहीं,
आहिँ प्रकृति, पर प्रकृति घिरी परिमित पथ माहीं;
प्रकृति होति केवल, स्वतंत्रता लौं प्रतिबंधित,
तिनहिँ नियम सौं पहिले जो ताही के निर्मित ॥

गुनहु भारती निरमति कहा नियम उपकारी,
कहाँ सिथिलता उचित, गाढ़िता कहँ रसवारी।
निज संतानहिँ उच्च मेरु-गिरि पै दिखराए,
अति दुर्गम ते पंथ चले तिन पै जे भाए;
पुरस्कार थाई, ऊँचौ करि, दूरि दिखायौ,
सोई पथ सौं चलन काज औरनि उकसायौ ॥

उचित उदाहरननि मैं सद सीक्षा जो थाई,
इन संची उन सौं उन दैव कृपा सौं पाई।
सहृदय, सुधर बिबेचक कबि उत्साह बढ़ायौ,
पूरितश्रमा प्रसंसा करिबौ जगहिँ सिखायौ;
समालोचना तब कविता की सखी सुहाई,
मंडनि सोभा, तथा बिसेष करनि मन-भाई।
पै पछिले लेखक सो सुभ उद्देस भुलाने,
सके नायिकहिँ मोहि नाहिँ दासिहिँ अरुझाने;

कबिनि बिरुद्ध प्रयोग किये तिन निज बल तीखे,
निस्चय निंदन हेत तिन्हैं जिनसौं सब सीखे ॥
त्यौं सीखे कछु आजकाल के औषधिवाले,
बैद-व्यवस्थनि पढ़ि बनि बैठन बैद निराले,
निडर प्रयोग करनि मैं नियम निपट मनमाने,
करत चिकित्सा औषधि, कहि निज गुरुहिं अयाने ॥
किते पुरातन-कबिनि-लेख पर दाँत लगावैं,
इनके सदस न काल न कीट कबहुँ बिनसावैं ॥
केते सूखं स्पष्ट, रहित नव उक्ति सुहाई,
सिथिल नियम निरमत कैसैं करिबौ कबिताई ॥
ये, बिद्या-प्रकास-हित अर्थानंद नसावैं,
बै अनर्थ करि अर्थ-तातपर्यहिं बहकावैं ॥

तातैं तुम जिनकी बिबेचना रखति सुपथ रति,
चाल चलन प्राचीननि की जानौ आछी गति;
तिन गाथा अरु बर्न्य प्रयोजन प्रति पंक्तिनि के,
धर्म, देस, प्रतिभा, जो सुखद समय मैं तिनके।
आछी भाँति ध्यान राखैं बिन इन सबही के।
जदपि सकौ करि तुम कुतर्क, पर न्याय न नीके।

बालमीक मुनि रचित सदा अध्यवहु सुरुचि करि,
पढ़ौ ताहि भरि द्यौस, रैन भरि गुनौ ध्यान धरि;

तासौं बिसद बिबेक लहहु, निज नियम ताहि सौं,
कबिता बिमल बारि संचौ सरिता आदहिँ सौं ॥
आपुसही मैं करि मिलान तिहि काव्य बिचारौ,
आदि सुकबि की बानी निज चरचा निरधारौ ॥
कालिदास जब प्रथम उदार हियैं निरधारी
अमर भारतहुँ सौं रचना चिर जीवनिहारी,
समालोचकनि नियम गम्य सौं उच्च लखान्यौ,
सीख लेन औरनि सौं घृणित प्रकृति छुट मान्यौ ॥
पै जब प्रति खंडहिँ करि सूच्छम दृष्टि बिचार्यौ,
बालमीक अरु प्रकृति माँहि नहिँ भेद निहार्यौ,
यह निस्चय उर माहिँ आनि अति बिस्मय पायौ,
निज रचना उदंड गति के बेगहिँ ठहरायौ;
औ कविता स्रमसाध्य अटल नियमनि यौं नाधी,
मनहु आप मुनि भरत सुद्ध प्रति पंक्ती साधी ॥
यासौं सीखौ नियम पुरातन के गुन गावन,
प्रकृति-पंथ कौ है चलिबौ तिन-पथ कौ धावन ॥

कितो रम्यता अजौं न कोउ बचननि कहि आवैं,
तिनमैं आनँद औ बिषाद दोउ मिस्रित भावैं ।
काव्य-कला संगीत सरिस जानौ मन माहीँ,
दोऊ मैं सौंदर्य किते जे उचरत नाहीँ;

तिन्हैं सिखावनजोग सूत्र कोऊ कहुँ नाहीं,
केवल परम प्रबीननि के आवत कर माहीं ॥
जहँ कहुँ कोऊ नियम होहिं न समर्थ यथारथ,
(काहे सौं कै नियम-काज साधन उदेस पथ,)

तहँ अभीष्ट जो कोउ स्वतंत्रता सुभगति साजै,
तौ स्वतंत्रता ही ता थल कौ नियम बिराजै ॥
जो प्रतिभा कबहूँ लाघव सौं करि अति प्रीती,
छोड़ि नियत पथ चलै भलैं तौ नाहिं अनीती;
करि उदंड क्रमच्युति समान मर्यादहिं त्यागै,
लहै कोऊ लावन्य जो न नियमनि कर लागै,
बिना जाँच ही जो हिय मैं अधिकार जमावै,
सकल इष्टफल एक बारही सहज लहावै'॥
तैंसहिं बन इत्यादिक सुभग दृस्य मैं भारी,
होत पदारथ ऐसे किते नैन-रुचिकारी,
जो सुप्रकृति-सामान्य-सीम सौं निकरत न्यारे,
आकृतिहीन पहार तथा अति बढ़े' करारे ॥
सुकबि, प्रसंसनीय बिधि, भलहिं नियम कहुँ तोरहिं,
करहिं दोष जिहिं सोधन सद जाँचक* साहस नहिं ॥
पै जद्यपि प्राचीन कबहुँ निज नियमहिं तोरैं,
(ज्यौं बहुधा राजा निज-कृत-बिधि सौं मुख मोरैं,)।

* इस लेख में 'जाँचक' शब्द जाँच करनेवाले विवेचक के अर्थ में युक्त किया गया है।

सावधान पै, अहो आधुनिक! तुम नित रहियौ,
दिखरायौ जो सुखद पंथ तिन सोई गहियौ;
तोरन ही जौ परै नियम कोउ इष्ट-लाभ-हित,
तौ ताकी उद्देस्यसीम नाँघौ न कदाचित;
सो, पुनि कबहुँहि, करौ, तथा अति आवस्यक गुनि;
औ उनकौ प्रमान, ता तोरन मैं, राखौ चुनि ॥
नातरु खंडक दयाहीन निज कलम चलैहै,
ख्याति तिहारी लै प्रचार निज नियमनि दैहैं ॥

या जग मैं केते घमंड करि इमि मतिमूसित,
सुभ आर्षहु स्वतंत्र सोभा जिन लेखैं दूषित ॥
रूपक कोऊ भयंकर औ प्रदेस अति भासै,
लखैं पृथक करि, कै ह्वै अति नेरैं, अन्यासै,
जो, केवल निज प्रभा, ठाम सुंदर अनुहारी,
लहत उचित अंतर सौं आकृति, सोभा प्यारी ॥
चतुर सेनपहिं नित न अवस्यक बल दिखरावन,
बाँधि बराबर दलनि, जुद्ध करि सुद्ध सुभावन;
देस काल अनुसार उचित ताकौं आचरिबौ,
गोपन सेना कबहुँ भासि भाजत कहुँ परिबौ।
बहुधा छल भूषन ते जे दूषन दरसाने,
बालमीक ऊँघ्यौ न स्वप्न मैं हमहिं भुलाने ॥

अजौं लतनिकृत हरित पुरातन देवल राजैं,
उच्च धर्म-द्रोही-कर-पहुँचन सौं छबि छाजैं।
बचे दाह सौं, तथा द्वेष के भीष्म रोष सौं,
सत्यानासी जुद्ध, कालहू सर्बसोष सौं ॥
लखहु! प्रदेसनि सौं बुध धूप दीप लै धावत!
सुनहु! सकल भाषा मैं सब इकमत गुन गावत!
ऐसी उचित स्तुति मैं सब निज बानि मिलावौ,
सब जग मिलि जो गाइ रह्यो तामैं सुर लावौ ॥
धन्य छत्रधर सुकबि! समय सुभ जीवनधारी,
सकल जगत अस्तुति के उचित अमर अधिकारी,
बढ़त मान जिनकौ ज्यौं ज्यौं जुग अंतर पावैं,
जैसैं नद चौड़ात चले आगैं नित आवैं;
भू-भविष्य-नर-जाति रावरौ सुयस सरैहैं,
अबहिं गुप्त जे भूमि सोऊ सब गुन गन गैहैं!
अहो स्वय परकास! करै कोउ किरन तिहारी,
तुम संतान अधम, अंतिम के उर उजियारी।
(निबल पच्छ जो दूरिहिं सौं तुव उड़नि पछावै,
उत्तेजित पढ़ि होत कँपत कर कलम उठावै)।
मृषा बुधनि दिखरावन-हित यह गुप्त ज्ञान बर,
सुमति सराहन स्रेष्ठ रखन संसय अपनी पर ॥

सकल कारननि मैं जे अंध करन जुरि आवैं,
चूकभरी नर-मतिहिँ तथा चित कौं बहकावैं,
सो जो निर्बल हियें प्रबलतम जोर जमावैं,
है घमंड जो दोष निरंतर कुबुधिहिँ भावै ॥
सद्गुन की जो करत न्यूनता दैव-भँडारी,
ताकी पूरति करत घमंड थोक दै भारी;
ज्यौं तन मैं त्यौं आत्मा हूँ मैं परत लखाई,
जो बल-रक्त-बिहीन भरित सो वात सदाई;
बुधि जहँ थकित घमंड तहाँ बनि त्रान पधारै,
सुमति-हीनता-कृत खालहिँ पूरित करि डारै ॥
साधु बिबेक एक बारहु जौ सो घन टारै,
सत्य सूर्य को प्रबल प्रकास हियहिँ उँजियारै ॥
अपनी मति पर अँड़हु न बरु निज त्रुटि जानन हित,
लेहु काज प्रति मित्रनि औ प्रति सत्रुनि सौं नित ॥
अनरथमूल महान छुद्र विद्या छिति माहीं;
पीवहु सुरसति-रस अघाय, कै, चीखहु नाहीं ।
छुद्र घूँट याकी चित्तहिँ अतिसय बौरावै,
पै पीबौ आतृप्त ठिकाने पुनि तेहिँ ल्यावै ॥
बानि-दान सौं उत्तेजित है आदि माहिँ नर,
निडर जवानी मैं ललचात कला-सृंगनि पर,

औ अपने परिमित चित की पुहुमी सौं देखै,
निकट दृस्य ही पीछे को प्रस्ताव न पेखै;
पै बिचित्र बिस्मयजुत अवलोकत आगैं बढ़ि,
अमित सास्त्र के दूर दृस्य नूतन आवत कढ़ि।
प्रथम रीझि त्यौं हम हिमगिरि चढ़िबौ अभिलाषैं,
खाड़िनि पै चढ़ि जानि लेत नभ पै पग राखैं।
ज्ञात होत हिमदल सदैव थाई पछियाने,
प्रथम स्रृंग औ मेघ परत अंतिम से जाने;
पाइ उन्हैं पै हम इत उत कातर ह्वै देखैं,
बर्द्धमान स्रम परिवर्द्धित मग कौं जब पेखैं;
अति अधिकौहैं दृस्य चपल चख परवहिँ थकावैं,
स्रृंगनि ऊपर स्रृंग गिरिनि पै गिरि चलि आवैं॥

पूरन जाँचक पहिले पढ़हि ग्रंथ कबिता कौ,
सोइ दृष्टि सौं जासौं रच्यौ रचयिता ताकौ।
जाँचहि सोधि समस्त न लघु छिद्रनि मन लावै,
जहाँ प्रकृति आचरहि चोप चित चाक चढ़ावै;
तिहि मात्सरिक मंद सुख हित खोवै नहिँ मन कौं,
अति उदार आनंद कबित-गुन पै रीझनि कौं॥
पै ऐसी गीतनि पै जिनमैं ज्वार न भाटी,
सुद्ध सिथिल औ नीच धरैं एकै परिपाटी,

दोषनि सौँ बचि, एक मंद गति जो नित राखत,
निंदा उचित न, बरन सुचित निद्रा बुध भाषत।
कबिता मैँ ज्यौँ प्रकृति-दृस्य मैँ जो मन मोहै,
प्रति अंगनि कौ पृथक सुडौलपनौ नहिँ सोहै॥
जिहिँ सुंदरता कहत अधर दृग सो जनि जानौ,
पै मिस्रित प्रभाव सब कौ परिनाम बखानौ,
जैसैँ जब कोउ सुघर-रचित मंदिर अवलोकौ,
बिस्मयकारक सब जग कौ औ भारतहू कौ॥
भिन्न भाग नहिँ पृथक पृथक अजगुत उपजावैँ,
सब मिलि एकहि बार लुभौहैँ दृगनि रिझावैँ,
कोउ उचान लंबान न तौ चौड़ान भयंकर,
सब मिलि अति उत्कृष्ट लसत अरु अति सुडौल बर॥
जो चाहत देखन सब बिधि अदोष कबिताई,
सो चाहत जो भई, न है, न होहिगी भाई॥
प्रति रचना मैँ करता कौ उद्देस्य बिचारौ,
(उन अभीष्ट सौँ अधिक कोऊ नहिँ बूझनिहारौ),
औ जो साधक जोग्य तथा ब्यवहार उचित बर,
तौ जस-भाजन, छुद्र छिद्र कहुँ रहिबेहू पर॥
अभ्यस्तनि, औ कबहुँ सुमतिनि परत यह करिबौ,
गुरु-दूषन-परिहार-हेतु लघु दूषन धरिबौ।

सब्दायुध साहित्यकार-कृत-नियम भुलैबौ,
[पै प्रसंस्य कहुँ किती तुच्छ बस्तुहिँ बिसरैबौ ॥]
बहुत बिबेचक, अनुरागी कोउ गौन कला के,
अंगिहि चाहत रखन अधीन अंग के ताके;
झाड़ैँ नित सिद्धांत, गुनैँ पै उपजहिँ प्यारी,
रुची मूढ़ता इक पै करहिँ सबहि बलिहारी ॥
कोऊ भडंगी सूर कथा यह प्रचलित जग मैँ,
भेँट भए इक बेर कहूँ कोउ कबि सौँ मग मैँ,
सुभ साहित्य कठिन चरचा मैँ अति अनुराग्यौ,
दूषन भूषन के बिचार करिबे मैँ लाग्यौ,
बचन-चातुरी औ गंभीर भाव ऐसैँ करि,
करत बिदूषक रंगभूमि पै जैसैँ पग धरि;
अंत कियौ निरधार सकल ते अति मति-हीने,
भरत-नियत नियमनि बाहर जिन हठि पग दीने।
ह्वै प्रसन्न कबि लहि जाँचक ऐसौ बुधिबाही,
दिखरायौ निज कृत नाटक औ सम्मति चाही;
बिषय लखायौ औ रचना प्रबंध तिहिँ माहीँ,
रीति, भाव, समता, क्रम, अपर कहा कछु नाहीँ ?
सो सब सुद्ध-नियम सौँ निज प्रकास तहँ पायौ,
पै केवल इक जुद्ध कर्म नाहिँन दरसायौ।'

हैं ! यह कहा जुद्ध त्यागन कैसो ? बोल्यौ सो,
हाँ, नातरु चलिबौ ह्वैहै मत त्यागि भरत को ॥
सो पुनि कह्यौ रिसाइ "दैव सौं ! सो कछु नाहीं,
हय गज रथ पायक ल्यावहु सब रँग थल माहीं" ॥
रंगभूमि मैं आइ सकत एतौ न झमेलौ,
"तो नूतन निरमौ कै कढ़ि कछार मैं खेलौ" ।
या बिधि जाँचक लघु बिबेक औ बहु सिड़वारे,
अद्भुत पै नहिं सुझ, सुद्ध नहिं, खुचुर पियारे,
लघु भावनि सौं भरैं तथा इक अँग रुचि घेरे,
दूषित करहिं कलहिं, ज्यौं ब्यवहारहिं बहुतेरे ॥
केते केवल उत्प्रेक्षहि मैं निज मति नाधैं,
चमचमात कोउ जुक्ति खोजि प्रति पँक्तिनि साधैं;
कोउ रचना पर रीझि न जहँ कछु जोग्य, जथारथ,
एक बुद्धि कौ घाल-मेल औ अस्तब्यस्त जथ ॥
कबि या भाँति, चितेरनि लौं लिखिबै मैं अकुसल,
प्रकृति बनावट रहित सहित, जीवन सोभा कल,
हेम, रतन के पोटनि सौ प्रति अंग दुरावैं,
निज छमता कौ छिद्र अलंकारनि सौं छावैं ॥
साँची कला-कुसलता, अति मनरंजनिहारी,
है, सजिबौ सब साज प्रकृति सोभा उपकारी,

भयौ पूर्बहू जो चिंतित बहुधा मन माहीँ,
या सुघराई सौँ पायौ प्रकास पर नाहीँ;
सो कछु जाकौ साँच प्रमानित सब कोउ पावै,
चित्र हमारे हिय कौ जो हमकौँ दरसावै ॥
ज्यौँ छाया प्रकास कौ आनँद अधिक बढ़ावै,
सहज सरलता उक्ति-चमत्कृति त्यौँ चमकावै ॥
कोउ रचना मैँ उक्ति-अधिकताही अपकारी,
ज्यौँ स्रोनित बिसेषता सौँ बिनसैँ तनधारी ॥

अन्य किते निज सकल ध्यान भाषहिँ पर राँचैँ,
नर नारिनि लौँ ग्रंथनि कौँ बसननि सौँ जाँचैँ;
'लसति रीति उत्कृष्ट' सदा यौँ भाषि सराहैँ,
दरि अभिमान, अर्थ पर करि संतोष, निबाहैँ ॥
सब्द लसैँ पातनि लौँ, जहँ तिनकी अधिकाई,
तहाँ अर्थ-फल-लाभ बिसेष न देत दिखाई ॥
काँच पहलवारे लौँ देति मृषा बाचाली,
प्रति ठामनि कौँ निज भँड़ेहरी रंग प्रभाली;
परत पेखि नहिँ प्रकृति जथारथ रूप रसीलौ,
सब इक रँग झलमलत भेद बिन अति भड़कीलौ;
पै सद-सब्द-प्रयोग, रहित परिवर्तन रबि लौँ।
करत प्रकासित जाहि बढ़ावत तिहि सुखमा कौँ;

करत परिष्कृत प्रभापुंज पूरत तिहि माहीँ,
हेम कलित सब करत कछुक पै बदलत नाहीँ ।
सब्द हृदयगत भावनि के पौसाक बिराजैँ,
जेते ठीकमठोक सुघर तेते नित भ्राजैँ,
उत्प्रेच्छा कोउ तुच्छ, उक्त कार सब्दाडंबर,
यौँ छबि देति गँवारि सजैँ ज्यौँ राज-साज-वर ।
पृथक रीति अनुकूल प्रथम बिषयनि सुखमा मैँ,
भिन्न बसन ज्यौँ ग्राम, नगर औ राजसभा मैँ ॥
किते पुरातन सब्द जोरि भए कीरति-कामी,
पदनि माहिँ प्राचीन, अर्थ मैँ नव-पथ-गामी;
ऐसी ये स्रमसाध्य अकारथ बस्तु नकारी,
ऐसी रीति बिचित्र माहिँ बिरचित बरियारी,
मूरख के उर माहिँ मृषा अजगुत उपजावैँ,
पै पंडित परबीननि कौँ केवल बिहँसावैँ ॥
दरसावत भाँड़नि लौँ ये दुर्भाग भड़ंगी,
सुघर सुजन कल कौन बसन कीन्यौ हो अंगी;
औ बस यौँ प्राचीननि कौँ अनुहरहिँ भगल भरि,
ज्यौँ सतपुरुषनि कौँ बानर, तिनके बागे धरि ॥
सब्दऽरु बसन रीति दोउनि कौ इक गुरु मानौ,
अति नव, कै प्राचीन, एक सौ बेढब जानौ;

बनहु प्रथम जनि नव टकसाल चलावनहारे,
तथा न अंतिम तजन माहिँ प्राचीन किनारे ॥
पै बहुतेरे काव्य-जाँच मैं छंदहि देखैं,
सुढर, कुढर पै, सुद्ध असुद्ध ताहि नित लेखैं;
दिव्य सरस्वति माहिँ सहस लावन्य जदपि हैं,
ये कन-रसिये मूढ़ सराहत स्वरहिँ तदपि हैं;
जो सुर-गिरि पर चढ़त नाहिँ निज चित्त सुधारन,
बरन परम सामान्य स्रवन-सुखही के कारन;
ज्यौं केते हरि-कथा-मंडली मैं आवैं नित,
संचन सुभ उपदेस नाहिँ, बरु गान सुनन हित ॥
ये केवल चाहत मात्रा एकहि सी आवैं,
जदपि खुले स्वर बहुधा स्रवनहिँ अति उकतावैं;
त्यौं अपनी बलहीन सहाय अधिक पद ल्यावैं,
औ इक सिथिल चरन मैं छुद्र सब्द दस पावैं ।
औ उत वे जब एकहि लय कौ चक्कर साधैं,
औ नित बँधे अनुप्रासनि कौं निस्चय नाधैं;
जहँ जहँ सीतल मंद पौन पच्छिम सौं आवत,
तहँ तहँ पूरि परागपुंज परिमल बगरावत;
जौ कहुँ सरिता बिमल बहति, गति मंद, सुहाई,
तौ तहँ कंज, सिवार, मीन सोहत सुखदाई,

अंत माहिँ, दल जुगल मात्र पूरित करि, राखत
कछुक अनर्थ बस्तु सौँ, जाहि उक्ति ये भाषत,
सोई दोहा वृथा पूर्न आहुति करि डारैं,
डेढ़-टाँगवारनि लौँ भचकि भचकि पग धारैं ॥
देहु तिन्हैँ अपने अनवीकृत लय, तुक जोरन,
औ सामान्य सुढर मढ़ियल कौ ज्ञान बटोरन;
तथा सराहौ ता तुक की सु सहज प्रौढ़ाई,
जामैँ ओज पजन कौ, ठाकुर की मधुराई ॥
साँची सुभग सरलता जौ कबिता मैँ भावै,
अभ्यासहि सौँ होहि न, ऐसहि औचक आवै;
जैसे वे, जिन सीख नृत्य बिद्या की पाई,
चल फिर करत सहजतम भाँति, सहित सुघराई ॥
एतौ ही नहिँ इष्ट सदा कबिता मैँ, भाई,
कै कर्कसता सहृदय कौँ न होहि सुखदाई,
परमावस्यक धर्म, बरन, यह सुमति प्रकासैँ,
कै रचना के सब्द अर्थ-प्रतिध्वनि से भासैँ ।
चहियत कोमल बरन पवन जहँ मंद बहत वर,
सरिता सरल चाल बरनन हित छंद सरलतर;
पै भैरव तरंग जहँ रोरित तट टकरावैँ,
उत्कट, उद्धत बरन, प्रबल प्रवाह लौँ आवैँ;

जहँ रावन लै जान चहत हठि हर-गिरि भारी,
होहि छंद-गति क्लिष्ट सब्दहू सिथिलित चारी;
पै ऐसो नहिँ जहँ हनुमत धावन बनि धावत,
नाँघत सिंधु निसंक, लंक गढ़ कूदि जरावत ॥
देखौ किमि भवभूति-काव्य-बैचित्र लुभावै,
सब प्रकार के भावनि की तरंग उपजावै।
जब प्रति पलट माहिँ दसरथसुत नई रीति सौँ,
कबहुँ तेज सौँ तपत, कबहुँ पुनि द्रवत प्रीति सौँ;
कबहुँ नैन बिकराल क्रोध की ज्वालनि जागैँ,
कबहुँ उसास उठैँ औ बहन आँसु दृग लागैँ ॥
सब देसनि मैँ निज प्रभाव नित प्रकृति बगारति,
विस्व विजयतनि कौँ सब्दहिँ सौँ जय करि डारति;
सब्द-माधुरी-सक्ति प्रबल मन मानत सब नर,
जैसौ हो भवभूति भयौ तैसौ पदमाकर ॥
अति सौँ बचौ, तथा त्यागौ उनकी दूषित गति,
जो रीझैँ अत्यंत न्यून, कै सदा अधिक अति ॥
छुद्र छिद्र खोजन सौँ वृत्तिहिँ रखहु घिनाई,
प्रगटत यह गुमान गुरुता, कै मति-लघुताई;
वे मस्तिष्क, उदर ज्यौँ, निस्चय उत्तम नाहीँ,
सबहि अरोचक, पै कछु पचि न सकत, जिन माहीँ ॥

पै प्रति अर्पित उक्तिहुँ दहु न मोह-उमाहन;
बिस्मित मूरख होत, बिबुध कौ काज सराहन।
ज्यौं कुहरे मैं लखैं बस्तु गुरु देति दिखाई,
त्यौं गौरवाभासप्रद सील सदा सिथिलाई॥
किते बिदेसि, देस कबि सौं केते घिन मानैं;
केवल प्राचीननि, कै आधुनिकनि भल जानैं॥
या बिध सौं प्रति ब्यक्ति, धर्म लौं, कबि-निपुनाई,
इक समाज मैं गुनैं, अपर सब नष्ट सदाई॥
चहत नीच इहिं संपति मूँदि एक ठाँ ठासन,
बरबस एक देस पैं रबि की प्रभा-प्रकासन,
जो न बुधनि कौं दक्खिन ही मैं महत बनावै,
पै सीतल उत्तर देसहुँ मैं बुद्धि पकावै;
जो गत जुगनि माहिँ आदिहि सौं भयौ उदै है,
करत प्रकासित बर्तमान, भाविहुँ गरमैहै;
जद्यपि प्रति जुग उन्नति औ अवनति अवरेखैं,
कबहुँ दिब्य दिन लखैं, कबहुँ अति धूमिल देखैं॥
तातैं कबिता नव प्राचीन बिचार न कीजै,
पै असदहिँ निंदा, औ सदहिँ सदा जस दीजै॥
किते न अपनी निज बिबेचना कबहुँ उमाहैं,
पै केवल निज नगर माहिँ प्रचलित मत ग्राहैं;

ये तर्कहिँ लहि लीक, तथा सिद्धांत सुधारैँ,
भुसे निरर्थहिँ गहैँ, न सोऊ आप निकारैँ ॥
किते न रचना, पै रचिता के नामहिँ जाँचैँ,
औ लेखहिँ नहिँ भलौ बुरौ, बरु मनुषहिँ खाँचैँ,
यह सब नीच झुंड मैँ सो अति अधम अभागौ,
जो सघमंड मंदता सौँ धनिकनि पछलागौ;
बड़नि सभा कौ नियत बिबेचक नितप्रति-वारौ,
प्रभु-हित-लागि व्यर्थ बकवादहिँ ढोवनहारौ;
महा दरिद्र बतावहि सो सृंगार-सवैया,
जाकौ कोऊ भुक्खड़ कबि कै हम तुम रचवैया,
देहु, बेर इक, कोऊ धनिकहिँ, पै तिहिँ अपनावन,
झलकन प्रतिभा लगति, कांतिमय रीति सुभावन,
ताके नाम पुनीत सामुहैँ दोष उड़त सब,
डहडहात प्रति खंड पूरि बासना-बसित फब ॥
यौँ बहकत गँवार अनुसरन कियैँ, बिन जोखे;
त्यौँ पंडित बहुधा सब जग सौँ होइ अनोखे ॥
रखत सर्व साधारण सौँ भिन यौँ, जो कहुँ वह,
चलैँ सुपथ, तौ जानि बूझि कै चलैँ कुपथ यह;
सूधे बिस्वासिनि त्यौँ तजहिँ धर्म नवग्राही,
नष्ट होहिँ, बरु बुद्धि अधिक अति के ह्वै वाही ॥

कित प्रसंसत प्रात जाहि, निसि ताहि बिनिंदत,
पै निरधारत सदा यथारथ निज अंतिम मत ॥
उपबनिता लौं ये सदैव कबिता सौं बिहरत,
छन सब बिधि सनमानत, पुनि दूजे छन निदरत;
जब इनके निर्बल मस्तिष्क, कोट बिन पुर लौं,
प्रति दिन बूझ अबूझ बीच बदलत स्वपच्छ कौं ॥
औ कारन बूझौ तौ कहैं बुद्धि-अधिकाई,
तौ अधिकैहै आजहु तैं कल बुद्धि सवाई ॥
पुरुषनि मूरख गनैं, बनैं हम इमि बुधिधारी,
निस्चय त्यौं गनिहैं हमकौं संतान हमारी ।
गए हुते भरि, या उत्साही देस अनादी,
एक बेर बहु धर्माचार्य बितंडाबादी;
उनमैं सबसौं अधिक वाक्य जाके मुख मंडित,
सोई मान्यौ गयौ सबनि तैं गुरुतर पंडित,
धर्म, बेद, सबही बिबाद के जोग थिराए,
काहू मैं नहिँ मति एतौ कै जाहिँ डराए ॥
पै अब बसे सांत ह्वै संखादिक-मतवारे,
निज अनुहारी घोंघनि माहिँ समुंदर खारे ॥
जब धर्महि धार्‌यौ बसननि बहु रंग बिरंगी,
कहा अचंभौ तौ जौ होहि बुद्धि बहु ढंगी ?

बहुधा तजि तेहि जो स्वाभाविक औ सुजोग्य अति,
प्रचलित मूरखताहीं जानि परति तत्पर-मति;
औ लेखक निर्बिघ्न लाभ जस कौ अनुमानैं,
जियत तबहि लौं जो जब लौं मूरख मन मानैं ॥
केते निज दल, औ मतिवारनि कौं सनमानैं,
निजहिं सदा परिमान मनुष्य-जाति कौ जानैं ॥
औ लुभाय कै गुनैं करत गुन कौ आदर तब,
औरनि के मिस आत्मस्लाघा ही उचरत जब ॥
कबिताई-तड़ होति राजनैतिक अनुगामिनि,
औ सामाजिक पच्छ बढ़ावत घिन निज धामिनि ॥
गर्ब, द्वेष, मूरखता, तुलसी पैं चढ़ि धाए,
धर्मध्वज, रसलंपट, जाँचक भेस बनाए।
भई सुमति थिर पै हाँसी औ खेल थिरायें;
उन्नतिसील जोग्यता उभरति अंत दबायें ॥
पै जो वह पुनि आइ हमैं दृग-लाहु लहावै,
तौ नव खल औ सठ-समूह उठि खंडन धावै।
बरु बर बालमीकिहू जो अब सीस उठावै,
तौ कोउ दोष-दृष्टि निस्चय निज जीभ चलावै ॥
गुनहिं द्वेष नित ताकी छाँह सरिस पछियावै,
पै छाया लौं सार बस्तु कौं सत्य थिरावै।

जब परिपक्व रंग कोमल ह्वै मेल मिलावैं,
उचित मंदता, चटक, माधुरीजुत घुलि, पावैं,
जब मृदुता-मद काल परम पूरनता पागै,
औ प्रति उग्राकृति मैं जीव परन जब लागै,
रंग बिसासी होत कला कौ तब अपकारी,
सनै सनै मिटि जाति सृष्टि सब जगमगवारी ॥

हतभागिनी कबिता प्रमदा बस्तुनि लौं भावै,
प्रतिकारै नहिं ताहि द्वेष जो सो उपजावै ॥
तरुनाइहि मैं नर असार कीरति-मद धारै,
सो छनभंगुर मृषा दंभ पै बेगि सिधारै;
ज्यौं कोउ सुंदर सुमन बसंतागम उपजावै,
जो प्रमुदित ह्वै खिलै, खिलत पै मुरझनि पावै ॥
कहा बस्तु कबिता जापैं दीजै एतौ चित?
निज पति की पत्नी, पै जिहिं उप्पति भोगत नित;
जब अति अधिक प्रसंसित तब अति श्रम-अधिकाई,
जेतौ अधिक प्रदान होहि तेतियै खुजाई;
जाकी कीरति कष्ट-रक्ष्य अरु सहज नसौनी,
अवसि खिजौनी किते, पै न सब कबहुँ रिझौनी;
यह वह जासौं आछे बचैं बुरे भय धारैं,
मूरख जाहि घिनाहिं, धूर्त नष्टहि करि डारैं!

जब चातुरिहिँ अविद्यहि सौँ एतौ दुख पावन,
देहु न विद्याहूँ कौँ तासौँ बैर जगावन ॥
होत पुरस्कृत हुते श्रेष्ठ प्राचीन काल मैँ,
तथा प्रसंसित सो, जो सुभ उद्योग चाल मैँ ।
जदपि होत है सेनापतिहि छत्र-अधिकारी,
तदपि मिलत हो मुकुट, सैनिकहुँ, सोभाकारी ॥
अब जे उच्च हिमाचल-तुंग-शृंग पर आवैँ,
निज श्रम कोऊ और के पात करन मैँ लावैँ;
करत आत्महित इत प्रति आतुर कबिहिँ स्वचारी,
उन मूढ़नि कौँ खेल होति बुधि झगड़नवारी ।
पै नित अधम प्रसंसा करिबै मैँ दुख मानैँ,
जेतहि लेखक तुच्छ नितोही अनहित आनैँ ॥
केहि कुत्सित फल ओर, तथा किहि नीच रीति सौँ,
नस्वर उद्यत होत कीर्ति की अतज प्रीति सौँ !
अहह कबहुँ इमि असुभ प्रतिष्ठा तृषा न धारौ,
तथा बिबेचक बनि मनुष्यता नाहिँ बिसारौ ॥
सुभ स्वभाव औ सुमति मिलाप निरंतर ठानौ,
चूकभरी नर प्रकृति, क्षमा दैवी गुन जानौ ॥
पै जौँ उर उदार मैँ गाद रहै कछु छाई,
जासौँ द्वेष तथा आमर्ष-मैल न थिराई;

तौ ता छोभहिँ कोउ अति असह दोष पैँ डारौ,
या कुकाल मैँ ताको नाहिँ अकाल बिचारौ ॥
अधमास्लील कैसहूँ नाहिँ छमा अधिकारी,
उक्ति, जुक्ति, जद्यपि चितवृत्ति-लुभावनहारी;
सिथिलपनैा अस्लीलताहिँ मिलि यौँ घिनसान्यौ,
मानैा क्लीब कोऊ कुलटा के प्रेम समान्यौ।
सुख संपति औ चैन कलित मुटवास काल मैँ,
उपजी यह दुख घास, तथा बाढ़ी उताल मैँ।
हुती चोप प्रेमहि की जब चैनी नृप माहीँ;
जात हुते बिरलै ही सभा, कबहुँ रन नाहीँ।
पुंसचलनि-करि हुते राजसासन के ताने,
प्रहसन लिखिबै माहिँ राजकाजी अरुझनो;
एतीये नहिँ, जब सुकबिनि बरु पिनसिन पाई,
और नव राजकुमार करन लागे कबिताई।
दरबारिनि-कृत नाटक पर सुंदरि हँसि लोटति,
कोऊ नकल बिन अभिनय भयेँ रही नहिँ खोटति।
घूँघट-ओट सुशील नाहिँ अपनी छबि छाजति,
लगीँ हँसन कन्या तापैँ जासौँ ही लाजति ॥

बहुरि बिदेसी नृप राज्याधिकार अमनेकी।
दीन्ही पूरि पंक उद्दंड बिधर्मपने की;

नैष्ठारहित पुरोहित लगे समाज सुधारन,
मुक्ति-प्राप्ति-सुख-साध्य रीति की सीख प्रचारन;
दैव स्वतंत्र प्रजा जिहिँ होहिँ सत्व निरधारी,
होहि कदाचित जौ जगदीसहु अत्याचारी।
उपदेसकहुँ उठाय रखन निंदा सुभ सीखे,
दुष्ट सराहे, करन हेत निज स्लाघी तीखे!
कबित-सृष्टि संपाति भाँति या चोप चढ़ाए,
सहित घमंड भानु मंडल चढ़िबे कौं धाए;
औ मुद्रालय कठिन लोह की छातिनवारे,
असद अरोक भँड़ोवन के भारन सौं हारे॥
इन राकसनि, कुतर्किनि लै निज अस्त्र प्रचारौ,
उत साधौ निज बज्र, तथा निज छोभ निकारौ!
तिनि कुबानि पै त्यागहु जो खुचुरी निंदारत,
जो बरबस कबि कौ भ्रम सौं दोषी निरधारत;
दूषनमय दिखराय सबै दोषी जो देखै।
जैसैं पाँडु रोगवारो सब पीरेहिँ पेखै॥
लखौ जाँचकनि उचित कहा आचार सिखैबौ,
न्यायक कौ आधौ करतब बस ज्ञान कमैबौ।
रस-अनुभव, बिद्या, बिबेक ही सब कछु नाहीँ,
जौ भाषौ हिय स्वच्छ, सत्य दमकै तिहिँ माहीँ।

एतोहि नहिँ, कै, जग मानै जौ तुम्हैँ सुहानौ,
पै तुमहूँ औरनि सौँ मेल मिलावन जानौ ॥
मौन रहौ नित जब तुमकौँ निज मति पै संसय,
औ संसय लै बात कहौ जद्यपि दृढ़ निस्चय।
केते ढीठ हठी अडंबरी देखि परत हैँ,
जे जदि कहुँ भूलैँ तौ सोई टेक धरत हैँ;
पै तुम अपनी भूल चूक सानंद सकारौ।
औ प्रति द्यौसहिँ गत दिन कौ सोधक निरधारौ ॥
एतोही नहिँ इष्ट, होहि सम्मति सदचारी,
सुघर झूठ सौँ भोँड़ो सत्य अधिक अपकारी:
ऐसैँ सिखवहु नरनि मनौ तुम नाहिँ सिखायौ,
यौँ अज्ञात पदार्थ लखावहु मनहु भुलायौ ॥
बिना सुसीख सत्य नाहिँन उचितादर पावै;
केवल सोई श्रेष्ठ बुद्धि पर प्रेम जगावै ॥
सम्मति-दान माहिँ कैसहुँ न सूमपन ठानौ;
कृपिनाइनि मैँ बुद्धि-कृपिनता अधम प्रमानौ ॥
छुद्र-तोष-हित निज कर्तव्य कदापि न छोरौ,
होहु न इमि सुसील कै मुख न्यायहि सौँ मोरौ ।
करहु नैँकुँ भय नाहिँ बुधनि के क्रुद्ध करन कौँ,
होत सहिष्णु स्वभाव प्रसंसापात्र नरनि कौ ॥

या अधिकार बिबेचक धारि सकै जौ नित प्रति,
तौ यामैं संसय नहिं होइ जगत को हित अति;
लाल होत पै, लखहु, आत्मश्लाघी अति क्रोधी,
जब काहू सौं सुनत कहूँ कोउ सब्द बिरोधी,
घूरत अति बिकराल किये नैननि भयकारी,
ज्यौं प्राचीन चित्र मैं कोउ नृप अत्याचारी ॥
मूढ़ प्रतिष्ठित के छेड़न सौं अति भय धारौ,
जाकौ सत्व अटोक करन नित काव्य न कारौ ॥
ऐसे हैं प्रतिभा-बिहीन कबि, जो मन-भावत,
ज्यौं वे जे बिन पढ़े परीक्षा सौं तरि आवत ॥
बादि भँड़ौवन पैं छोड़ौ सदबाद भयंकर,
औ सुश्रूषा मृषा समर्पक बाचाली पर,
करत नाहिं बिस्वास जगत जिनकी स्लाघा पर,
जिनके कबिताई-त्यागन-प्रण पर सौं गुरुतर ॥
कबहुँ इष्ट अति रखन रोकि निज ताड़नि बानी,
औ भद्दनि कौं होन देन मिथ्या अभिमानी ।
गहिबौ मौन भलौ बरु तिन पैं सतरैबे सौं,
तब लौं निंदि सकै को सकहिं खँचै यह जब लौं,
भनभनात ये सदा ऊँघदाई गति साजैं,
लतियावहु जेतौ लट्टून लौं तेतहि गाजैं ॥

चूक उन्हैं फिर सौं दौड़न के हेतु उभारै,
ज्यौं अड़ियल टट्टू गिरि कै पुनि चाल सँवारै ॥
कैसे इनके झुंड सकुच बिन-साहस-साने,
सब्द तथा मात्रा खटपट मैं अरुझि बुढ़ाने,
धावा करैं कबिनि पैं भरैं छोभ नस नस लौं,
तरछट लौं औ दाबि कढ़े मस्तिष्क कुरस लौं,
अपनी बुधि की सिथिलित अंतिम बूँद निचोरत,
औ क्लीवनि कौ सौं करि क्रोध क्रूर तुक जोरत ॥
ऐसे निपट निलज्ज कुकबि जग माहिँ घनेरे,
पै तैसे ही मत्त, पतित जाँचक बहुतेरे ॥
ग्रंथ-ग्रथित गुद्दलमति, मूरखताजुत पंडित,
विद्यापोट अपार भार सिर धरैं अखंडित,
निज मुख ही सौं निज श्रवनहिँ नित विरद सुनावैं,
औ अपनी ही सुनत सदा लखिबै मैं आवैं ।
सब ग्रंथनि वे पढ़ैं, पढ़ैं जो सो सब लूसैं,
तुलसीकृत सौं सुवा-बहत्तरि लौं सब दूसैं ।
इन लेखैं चोरैं, मोलैं, बहु ग्रंथ-रचैया,
लिखी बिहारीलाल नाहिँ दोहा सतसैया ॥
सनमुख उनके कोउ नव नाटक नाम उचारौ,
तो झट बोलैं, "कबि याको है मित्र हमारौ";

एतहि नहिँ बरु कहैँ, दोष यामैँ हम काढ़े,
कब काहू की सुनि सुधरत पै कबि मद-बाढ़े ?
कैसहु ठाम पवित्र रोक इनकौं कहुँ नाहीँ,
मरघट सौं रक्षा न अधिक कोउ तीरथ माहीँ।
देवलहूँ मैं गयेँ बादि बकि ये हति डारैँ,
मूरख धँसैँ निसंक सुमन जहँ डरि पग धारैँ॥
सुमति ससंक, सुसील, सावधानी सौं बोलै,
सदा सहज लखि परै, चढ़ाई लघु पर डोलै;
पै दुरमति घहराय बाद बकबक की छोरै,
औ कबहूँ ठठकै न औ न कबहूँ मुख मोरै,
थामैं थमति न नैंकुँ, भरी अतिसय उमाह सौं,
चलति छोड़ि मर्याद प्रबल रोरित प्रबाह सौं॥

कहाँ मिलत पै ऐसौ सज्जन सुमति-प्रदानी,
सीख देन मैं मुदित, ज्ञान कौ नहिँ अभिमानी ?
बिकृत न राग द्वेष सौं, अंधौ सुद्धहु नाहीँ;
पहिलहि सौं न सढील पच्छ धारैँ उर माहीँ;
पंडित तऊ सुसील, सुसील तऊ कपटारी,
निडर नम्रता सहित, दयाजुत दृढ़ब्रत-धारी,
सकै दिखाय मित्र कौं जो तेहि दोष असंसै,
औ सहर्ष सत्रुहुँ के गुन कौ भाषि प्रसंसै ?

धारैं रस अनुभव जथार्थ, पै नहिं इक-अंगी,
ग्रंथनि कौ औ मनुष-प्रकृति कौ ज्ञान, सुढंगी,
अति उदार आलाप; हृदय अभिमान बिहीनौ;
औ मन सहित प्रमान प्रसंसा रुचि सौं भीनौ ॥
पहिलैं ऐसे रहे बिबेचक, ऐसे सुचिमन,
आर्यवर्त मैं भए सुभग जुग मैं कतिपय जन ॥
भरत महामुनि अचल ध्यान-मंदिर धरि लीन्यौ,
पारावार अपार मनन कौ मंथन कीन्यौ;
काव्य-कला-साहित्य-नियम-बर-रतन निकारे,
देस प्रदेसनि माहिं, कृपा उर आनि, बगारे ॥
कबि जो चिरकालीन निरंकुश औ मनमाने,
नित स्वतंत्रता अनघड़ की रुचि औ मद-साने,
माने वे बर नियम, बात यह उर निरधारी,
बस कीन्ही निज प्रकृति सुमति सासन अधिकारी ॥
श्री जयदेव अजौं स्वाच्छंद ललित सौं भावैं।
औ क्रम बिनहूँ पाठक कौं मति-पाठ पढ़ावै,
उर उपजावै, मित्रनि लौं, सुभ सरल प्रीति सौं,
अति सुंदर, सद्भाव भव्य, अति सहज रीति सौं ॥
सो जो श्रेष्ठ काव्य मैं ज्यौं, बिबेक हू मैं त्यौं,
करि सकत्यौ खंडनहु उदंड, उदंड लिख्यौ ज्यौं,

जाँच्यौ तदपि ससाँति, जदपि गायौ उमाहरत,
सोइ सिखवत तेहि वाक्य, काव्य जो हिये जगावत ।
आज काल के जाँचक पै उलटी गति धारैँ,
जाँचैँ भरि औधत्य, लेख पै सिथिल सँवारैँ ॥

लखहु मुकुंददास सुकदेव सु-भनित परकासत,
प्रति पंक्तिनि सैाँ नए नए लावन्य निकासत ।
कालिदास मैँ सक्ति, चातुरी, दोउ छबि छावैँ,
विद्वज्जन पांडित्य, सुसभ्य सहजता भावैँ ॥

अति गँभीर श्रीहर्ष महान ग्रंथ मैँ सोभित,
परम युक्ततम नियमऽरु क्रम सपष्टतम मिश्रित ।
ज्यौँ उपकारी अस्त्र जात अस्त्रालय धारे,
सब क्रम सैाँ जतबद्ध, सुधरता सहित सम्हारे,
पै न दृगनि-सुख हेत, बरन कर के बाहन हित,
नित प्रयोग के योग, यथा-इच्छत्ति उपस्थित ॥
उद्धत पंडितराजहिँ कियौ कला सब मंडित,
निज बिबेचकहिँ दई दिब्य कबि-गिरा उमंडित ।
उत्तेजित जाँचक जो नित करतब मैँ उद्यत,
है तातौ सम्मति दै, पै नित रहत न्यायरत,
उदाहरन निज जाकौ जाके नियम दृढ़ावै,
औ आपुहि सो अति महान जिहिँ लिखि दरसावै ॥

जाँचक-परंपरा यों सुभ अधिकार जमायौ,
दलि स्वाच्छंदहिँ उपकारी नियमनि बगरायौ।
विद्या, तथा राज, उन्नति इक संगहिँ पाई,
औ फैली अधिकारहि संग कला-कुसलाई;
एकहि रिपु सौं अंत दुहुनि की अलहन आई,
भारत औ विद्या एकहि जुग अवनति पाई।
अत्याचार संग सिर दुरविस्वास उठायौ,
वह तन कौं ज्यौं, त्यौं यह मन कौं दास बनायौ;
बहुत जात मान्यौ हो, औ जान्यौ अति थोरौ,
औ ढिल्लड़पन गन्यौ जात उत्तमता बोरौ;
या बिधि दूजी प्रलय बहुरि विद्या पर आई,
तुर्कारंभित बिपति, समाप्ति द्विजनि सौं पाई॥

पै नागेस भट्ट अति माननीय बर पंडित,
विद्वज्जन-मंडलिहिँ करन गौरव सौं मंडित,
तेहि अवनति-रत-काल-प्रवाह प्रबल ठहरायौ,
रंगभूमि सौं मृषा विडंबिनि कौं बहरायौ॥

बिट्ठलेस गोस्वामी के सुभ समय, निबारति,
सारद निद्रा, त्यक्त बीन, पुस्तक पुनि धारति;
भारत की प्रतिभा प्राचीन बहुरि तहँ छाई,
झारी धूरि, तथा ताकी बर ग्रीव उठाई॥

गई सिल्प, औ तिहि अनुरूप कला उद्धारी;
पाहन आकृति लई भए गिरि जीवनधारी।
मृदुतर स्वर सौं उठ्यौ गूँजि प्रति मंदिर भायौ;
तानसेन गायौ औ प्रभु-जस सूर सुनायौ,
अमर सूर जाके सुंदर उदार उर माहीँ,
काव्य तथा साहित्य कला उपजी इक-ठाहीँ।
केवल ब्रजहिँ न श्रेष्ठ नाम तुव गौरव दैहै,
बरु भारत-संतान सबै नित तव गुन गैहै॥

प्राकृत भषन माहिँ चलन बानी पुनि पाई,
गई फैलि चहुँ ओर अथोर कला-कुसलाई;
ब्रजभाषा मैँ लागी होन सुखद कबिताई,
बहुत दिननि लौँ रही निरंकुसता, पर, छाई॥
बिना संसकृत जात हुत्यौ नाहिंन कछु जान्यौ,
औ यथेष्ट पढ़िबौ ताकौ हो अति श्रम सान्यौ;
भाषा सौँ घिन मानत हुते संसकृतवारे,
'भाषा जाहो साहो' गुनत न हे मतवारे;
औ उदंड भाषा कबि काव्य करत मनमाने,
सुनत गुनत नहिँ संसकृतिनि के नियम पुराने॥
पै ऐसे कछु भए मंडली बुधिवारी मैँ,
न्यून गर्ब मैँ जो औ बढ़े जानकारी मैँ,

जो साहस करि भे प्राचीन सत्व के बादी,
औ थिर थापे काव्य-कला-सिद्धांत अनादी ॥
जाकौ है यह बाक्य, महाकबि ऐसौ सो हो,
"उक्ति बिसेषो कब्बो, भाषा जाहो साहो ।"
ऐसौ केसव ज्यौं पंडित त्यौंही सुसीलवर,
जैसो श्रेष्ठ कुलीन उदार चरित तैसौ धर,
सुभग संसकृत बर साहित्य ज्ञान जेहि माहीं,
प्रति कवि कौं गुन मान, गर्व अपने कौं नाहीं ॥
ऐसौ अबहिं भयौ हरिचंद मित्र कबिता कौ,
जाननिहारौ उचित पंथ अस्तुति निंदा कौ ॥
छमासील चूकन पैं, औ तत्पर गुणग्राही,
अतिसय निर्मल बुद्धि तथा हिय सुद्ध सदाही ॥*
पै अब केते भए हाय इमि सत्यानासी,
कबि औ जाँचक रस-अनुभव सौं दोऊ उदासी,
सब्द अर्थ कौ ज्ञान न कछु राखत उर माहीं,
सक्ति, निपुनता औ अभ्यास लेसहू नाहीं ॥

बिन प्रतिभा के लिखत तथा जाँचत बिबेक बिन,
अहंकार सौं भरे फिरत फूले नित निसि दिन,
जोरि बटोरि कोऊ साहित्य-ग्रंथ निर्मानै,
अर्थसून्य कहुँ कहूँ बिरोधी लच्छन ठानै ॥
जानतहू नहिँ कहा अतिब्याप्ति, अब्याप्ति असंभव,
बनि बैठत साहित्यकार आचार्य स्वयंभव।
जात खड़ी बोली पैँ कोऊ भयो दिवानौ,
कोउ तुकांत बिन पद्य लिखन मैँ है अरुझानो ॥
अनुप्रास-प्रतिबंध कठिन जिनकै उर माहीँ,
त्यागि पद्य-प्रतिबंधहु लिखत गद्य क्यौं नाहीँ ?
अनुप्रास कबहूँ न सुकबि की सक्ति घटावैँ,
बरु सच पूछौ तौ नव सूझ हियैँ उपजावैँ ॥
ब्रजभाषा औ अनुप्रास जिन लेखैँ फीके,
माँगहिँ बिधना सौं ते श्रवन मानुषी नीके।
हम इन लोगनि हित सारद सौं चहत बिनय करि,
काहू बिधि इनके हिय की दुर्मति दीजै दरि ॥
जासौं ये साँचे आनँदमद सौं सुख पावैँ,
औ हठ करि नित औरनि हूँ कौं नहिँ बहकावैँ।
होहिँ बहुरि सद कबि औ काव्यकला सुखदाई,
रहै सदा भारत मैँ उन्नति की अधिकाई ॥

पहला सर्ग

सुभ सरजू-तट बसति अवधपुरि परम सुहावनि ।
बिदित बेद इतिहास माहिँ कलि-कलुष-नसावनि ॥
दिव्य-दिनेस-बंस-महिपालनि की रजधानी ।
सब-सोभा-संपन्न सकल-सुख-संपति-सानी ॥ १ ॥

तिहिँ पुरि औ तिहिँ बंस माहिँ अवतंस बीरबर।
अट्ठाइसवौँ भयौ भूप हरिचंद गुनाकर॥
रामचंद सौँ भयौ पूर्व सो पैँतिस पीढ़ी।
निज प्रन पालि सदेह चढ़्यौ जो सुरपुर-सीढ़ी॥ २॥

परम पुन्य कौ पुंज प्रौढ़-प्रन प्रखर-प्रतापी।
सत्यब्रती दृढ़ धर्म-धैर्य-मर्जादा-थापी॥
प्रजा-पाल खल-साल काल सम कुटिल कुजन कौँ।
गुन-ग्राहक असि-बाहक दाहक दुष्ट दुवन कौँ॥ ३॥

नृप-कुल-कल-किरीट-मनि-संज्ञा कौ अधिकारी।
नहिँ छत्रिहिँ बरु मनुष मात्र कौ गौरव-कारी॥
सकल सुखी तिहिँ राज माहिँ नित रहत धर्म-रत।
निज निज चारहु बरन चारु आचरन आचरत॥ ४॥

कहुँ कलेस कौ लेस देस मैँ रह्यौ न ताके।
घर घर नित नव मंजुल मंगल मोद प्रजा के॥
ताकौ कछु इतिहास इहाँ संछेप बखानौँ।
जौ सादर बुध सुनहिँ सफल तौ निज श्रम जानौँ॥ ५॥
एक दिवस नारद मुनि-वर सुर-सभा पधारे।
गावत हरि-गुन बिसद बीन काँधे पर धारे॥
पेखि पुरंदर मानि मोद पग-परसन कीन्ह्यौ।
सिष्टाचार यथाबिधि करि दिब्यासन दीन्ह्यौ॥ ६॥

पुनि पूछी कुसलात बात बहु भाँति चलाई।
निपट नम्रता सहित करी कल बिनय बड़ाई ॥
"अहो देव ऋषि-राज! आज आगमन तिहारे।
गृह पवित्र, मन मुदित, भये मम नैन सुखारे ॥ ७ ॥

जौ न अकारन करहिँ कृपा तुम से उपकारी।
तौ पावहिँ सतसंग कहाँ हम से गृह-धारी" ॥
सुनि सुरेस की सुघर बचन-रचना-चतुराई।
मुनिबर मृदु मुसुकात बात इमि कही सुहाई ॥ ८ ॥

"सब देवनि के राज अहो तुम इमि कत भाषत।
तुव संगति-सुख बरु सब सुर नर मुनि अभिलाषत ॥
औ हमकौं तौ रहत सदा इहिँ ढारिहिँ ढरिबौ।
करिबौ हरि-गुन-गान मोद मढ़ि बिस्व बिचरिबौ" ॥ ९ ॥

पुनि पूछ्यौ सुरराज "आज मुनि आवत कित तैँ।
लोकोत्तर आह्लाद परत छलक्यौ जो चित तैँ" ॥
सुनि मुनि सहित उछाह चाहि बोले मृदुबानी।
"अहो सहस-दृग साधु! बात साँची अनुमानी ॥ १० ॥

साँचहिँ अकथ-अनंद-मुदित मन आज हमारौ।
धन्य भूप हरिचंद धन्य जग जनम तिहारौ ॥
धन्य धन्य पितु मातु तुमहिँ जीवन जिन दीन्हौ।
जिहिँ बिरंचि रचि निज प्रपंच कौ प्राच्छित कीन्हौ" ॥ ११ ॥

सुनि सुरपति अति आतुरता-जुत कह्यौ जोरि कर।
"कौन भूप हरिचंद कहौ हमसहुँ कछु मुनिबर" ॥
"सुनहु सुनहु सुरराज", कह्यौ नारद उछाह सौं।
"ताकी चरचा करन माहिँ चित चलत चाह सौं ॥ १२ ॥

मृत्युलोक कौ मुकुट देस भारत जो सोहै।
ताके उत्तर पच्छिम भाग माहिँ मन मोहै ॥
अवधपुरी अति रम्य परम पावनि मंगलमय।
है तिहिँ कौ नरनाह भूप हरिचंद महासय ॥ १३ ॥

ताही के लखि चरित आज मन मुदित हमारौ।
अति अमोघ आनंद परम लघु हृदय बिचारौ ॥
अहह होत ऐसे नर-रत्न जगत मैँ थोरे।
सरल हृदय निष्कपट-भाव अबिचल-ब्रत भोरे" ॥ १४ ॥

सुनि मघवा अति ईर्षा सौं मनहीँ मन खीझ्यौ।
पै निज भाव दुराइ बचन ऐसैँ पुनि सीझ्यौ ॥
"साँचहिँ जान परत हरिचंद उदारचरित अति।
संप्रति ताहि प्रसंसत सुनियत सबहिँ धीरमति ॥ १५ ॥

पै कहियै कछु गृह-चरित्र ताके हैँ कैसे"।
बोले मुनि पुनि "होन उचित सज्जन के जैसे ॥
जिनके परम पवित्र चरित्र नाहिँ घर माहीँ।
कैसहु होहिँ कदापि प्रसंसा-जोग सु नाहीँ" ॥ १६ ॥

करि कछु कूत मनहिँ मन पुनि पुरहूत उचार्यौ।
"कहा भूप हरिचंद स्वर्ग-हित यह ब्रत धार्यौ" ॥
बोले मुनि "यह कहत कहा तुम बात अनैसी।
मद-उदार-चरितनि कौँ स्वर्ग-कामना कैसी ॥ १७ ॥

परम आत्म-संतोष-हेत निज चरित सुधारत।
कहुँ सज्जन स्वर्गासा करि निज जनम बिगारत ॥
करि कर्तब्य सुधार चरित संतुष्ट सुखी जो।
स्वर्ग-लोक-सुख बरु औरनि करि दान सकत सो ॥ १८ ॥

उदाहरन ताकौ देखौ हम प्रगट लखावैँ।
बैठे स्वर्गहु मैँ ताकौ गुन गुनि सुख पावैँ" ॥
सुरपति मन मैँ गुन्यौ "जदपि साँचहि मुनि भाखत।
जद्यपि नृप हरिचंद स्वर्ग-आसा नहिँ राखत ॥ १९ ॥

निज चरित्र सौँ ह्वैहै तदपि स्वर्ग-अधिकारी।
तातैँ करिबौ बिघन कछुक अतिसय उपकारी" ॥
कह्यौ "जदपि हरिचंद लखात अमंद चरित अति।
तदपि परिच्छा की इच्छा कछु होति धीरमति ॥ २० ॥

यातैँ कोउ मिस ठानि ब्यौँत ऐसौ कछु कीजै।
जासौँ ताके सत्यहिँ परखि सहज मैँ लीजै ॥
सानुकूल सुभ समय सबहि सोभा सँग राखत।
पै सुबरन सोइ साँच आँच सहि जो रँग राखत" ॥ २१ ॥

सुनि मुनि अति अनखाइ चढ़ाइ भौंह भरि भाख्यौ।
"सुमनराज यह कहा तुच्छ आसय उर राख्यौ॥
अहह जाति तव मत्सरता अजहूँ न भुलाई।
हेर फेर सौ बेर जदपि मुँह की तुम खाई॥ २२॥

तुमहिँ दीन्ह करतार बड़ोपन तौ इमि कीजै।
लघु गुरु सबके हित मैं चित सहर्ष निज दीजै॥
परहित लखि दहिबौ पर-अनहित हेरि जुड़ैबौ।
परम-छुद्र-मति-काज जिन्हैं नहिँ कबहुँ लजैबौ॥ २३॥

औ हरिचंद अमंदचरित कौ तौ गुन खाँचत।
हृदय भूलि सब भाव एक आनँद-रस राँचत॥
जदपि उपद्रव-प्रिय सहजहिँ नित प्रकृति हमारी।
तउ निस्छल-हिय हेरि चहति नहिँ ताहि दुखारी॥ २४॥

औ चाहैँ हूँ कहा सिद्धि कछु संभव है ना।
नारद कहा सारदहु तिहिँ मति पलटि सकै ना"॥
सुनि सुरेस खिसियाइ दियौ उत्तर कछु नाहीँ।
लाग्यौ करन बिचार हारि औरै मन माहीँ॥ २५॥

"करहिँ कृपा अब हरि सो हरहिँ सुभाव तिहारौ।
पर-उन्नति लखि बृथा तुम्हैँ जो दाहनहारौ" ॥
पूछ्यौ बिस्वामित्र "बिचित्र आज यह बानी।
कहा भयौ सुरराज कही कत मुनिबर ज्ञानी" ॥ २७ ॥

कह्यौ सुरेस बनाइ बचन तब स्वारथ-साधक।
"भयौ कछू ऋषिराज काज नहिँ रिस-अवराधक ॥
पै तिनकौ सुभाव तौ बिदित सकल जग माहीँ।
रुष्ट होन मैँ तिन्हैँ खोज मिस की कछु नाहीँ ॥ २८ ॥

कछु चरचा हरिचंद अवध-नरपति की आई।
ताके धर्म धैर्य की तिन अति कीन्हि बड़ाई ॥
टोँकि उठे हम रोकि न जब अति सौँ मन भाई।
होहि परिच्छा तौ कछु परहि जानि धरमाई ॥२९॥

ताही पर बस बिगरि उठे करि नैन करारे।
हरिहर-निंदा-बचन कछुक हम मनहुँ उचारे" ॥
सुनि मुनि कर भ्रूभंग कह्यौ "जो मुनि मन मोहै।
कहा भूप हरिचंद माहिँ ऐसे गुन सोहैँ" ॥३०॥

बोल्यौ बिहँसि बिड़ौजा "हमहूँ तौ इहि भाषत।
पै मिथ्या-स्लाघी औचित्य बिबेक न राखत ॥
तुमसे महानुभावनि हूँ के होते जग मैँ।
इक सामान्य गृहस्थ भूप को ब्रत किहिँ मग मैँ ॥३१॥

करि मन इहै बिचारि हारि सुनि अनुचित बानी ।
सिच्छा हेत परिच्छा को इच्छा उर आनी" ॥
यह सुनि बिस्वामित्र कह्यौ टेढ़ी करि भौंहैं ।
"यामैं अनुचित कहा जानि मुनि भये रिसौंहैं ॥३२॥

सब संसय परिहरहु परिच्छा हम अब लैहैं ।
निज तप-तेज तचाइ खोलि कलई सब दैहैं ॥
मो आगैं जाकैं तप तीन्यौ लोक तपै है ।
सो दानी ह्वै कहा कहौ निज सत्य निबैहै ॥३३॥

देखौं बेगिहि जौ ताकौ नहिँ तेज नसावौं ।
तौ पुनि पन करि कहौं न बिस्वामित्र कहावौं" ॥
यौं कहि आतुर दै असीस लै बिदा पधारे ।
चपल धरत पग धरनि किये लोचन रतनारे ॥३४॥

———

दूसरा सर्ग

चलि सुरपुर सौं बिस्वामित्र अवधपुरि आए।
देखे तहाँ समाज साज सब सुभग सुहाए।
बन उपबन आराम सुखद सब भाँति मनोहर।
लहलहात हैं हरित-भरित फल-फूलनि तरवर ॥१॥

बापी कूप तड़ाग झील सरवर सरिता सर।
जीवन-धर सँताप-हर नर-ही-तल-सीतल-कर ॥
कियौ नैकुं बिस्राम आनि सरजू-तट बैठे।
तहँ अन्हाइ करि नित्य-कृत्य पुर-अंतर पैठे ॥२॥

धवल-धाम-अभिराम-अवलि दोहूँ दिसि देखी।
रचना परम बिचित्र चित्र मैं जाति न लेखी।
मध्य भाग मैं सोहति हाट चारु चौपर की।
दुहुँ दिसि दिब्य दुकान-पाँति बहु भाँति सुघर की ॥३॥

अपने अपने काज करत बिन रोके टोके ।
सहित अमंद अनंद चारहूँ बरन बिलोके ।।
घर घर होत बेद-धुनि जिहिँ सुनि पातक भाजैँ ।
हरि-हर-चरचा-सुरस-रसिक सब लोग बिराजैँ ।।४।।

जाँच्यौ सोधि समस्त न कहुँ दुखिया कोउ दीस्यौ ।
जासौं चरचा चली नृपति-गुन गाइ असीस्यौ ।।
यह करतूति बिलोकि मनहिँ मन लगे सराहन ।
भये तुष्ट सोच्यौ बरबस पन पर्‍यौ निबाहन ।।५।।

बिबिध गुनावन करत राज-पौरी पर आए ।
लखि रचना निज सृष्टि-सक्ति कौ गर्ब भुलाए ।।
रजत-हेम-मुकता-मय मंजुल भवन बिराजत ।
बड़े बडे मनि-अच्छर खचित द्वार इम भ्राजत ।।६।।

"टरहिँ चंद सूरज औ टरहि मेरु गिरि सागर ।
टरहि न पै हरिचंद भूप कौ सत्य उजागर" ।।
पढ़त प्रतिज्ञा साभिमान ईर्षा पुनि आई ।
"भला देखि हैँ तौ" मन मैँ कहि भौंह चढ़ाई ।।७।।

तब लौँ दौरि पौरिया भूपहि यह सुधि दीन्ही ।
"महाराज इक ऋषिवर कृपा आज इत कीन्ही ।।"
सुनि नृप आपहिँ उमगि द्वार अति आतुर आए ।
करि प्रनाम पग परसि सभा मैँ सादर ल्याए ।।८।।

बैठारयौ सनमान सहित बहु बिनय उचारी।
आनँद सौं तन पुलकि उठ्यौ नैननि भरि बारी॥
सहज अकृत्रिम भाव भूप के मुनि मन भाए।
श्रद्धा सील सुभाव नम्रता हेरि हिराए॥९॥

पै बानी करि उदासीन निज परिचय दीन्ह्यौ।
"सुनहु भूप हम कौन जासु आदर तुम कीन्ह्यौ॥
जाकैं तप ब्रह्मांड तप्यौ हरि-आसन डोल्यौ।
जो तप-बल छत्री सौं है ब्रह्मर्षि कलोल्यौ॥१०॥

जिन बसिष्ठ-सौ-सुतनि क्रोध करि सहज नसायौ।
कठिन ब्रह्म-हत्यहुँ कौं निज तप-तेज जरायौ॥
निज तप-बल सदेह तव जनकहिँ स्वर्ग पठायौ।
नवल सृष्टि करि ब्रह्मादिक कौ गर्ब गिरायौ॥११॥

कौसिक बिस्वामित्र सोइ हम तव गृह आए।
सकल मही के दान लेन कौ चाव चढ़ाए॥
जान्यौ हमैं तथा आवन कौ कारन जान्यौ।
कहौ बेगि अब जो बिचार उर-अंतर आन्यौ"॥ १२।

कह्यौ भूप "कत जानि बूझ बूझत मुनि ज्ञानी।
या मैं सोच-बिचार कहा जौ तुम यह ठानी॥
तुम सौं पाइ सुपात्र दान दैबे मैं चूकै।
तौ यह चूक सदैव आनि उर-अंतर हूकै॥ १३॥

लीजै मानि प्रमोद सकल महि सादर दीन्ही"।
"स्वस्ति" भाषि मुनि मन मैं बिबिध प्रसंसा कीन्ही ॥
स्रवन सुन्यौ जैसौ तासौ बढ़ि आँखिनि देख्यौ।
साँचहिँ नृप हरिचंद अमंद-चरित मुनि लेख्यौ ॥ १४ ॥

सद्-गुन-गन-आगार धर्म-आधार लसत यह।
साँचहिँ परम उदार भूमि-भर्तार लसत यह ॥
जिहिँ महि के दस-हाथ-हेत नृप माथ कटावैं।
रुंडहु ह्वै उठि लरैं रुधिर सौं कुंड भरावैं ॥ १५ ॥

जिहिँ हित तप करि तचैं पचैं नर स्वारथ-घेरे।
सो सब तृन-इव तजी नैंकु तेवर नहिँ फेरे ॥
अब करि कौन कुढंग भंग या कौ ब्रत कीजै।
पुनि कछु गुनि बोले "अब दान-प्रतिष्ठा दीजै" ॥ १६ ॥

कह्यौ भूप कर जोरि "होहि इच्छा सो लीजै"।
बोले ऋषिवर "सहस-स्वर्ण-मुद्रा बस दीजै" ॥
"जो आज्ञा" कहि नृपति बेगि मंत्रिहिँ बुलवायौ।
सहस स्वर्ण-मुद्रा आनन-हित हरषि पठायौ ॥ १७ ॥

यह लखि ऋषि बिकराल लाल लोचन करि बोले।
भृकुटी जुगल मिलाइ किये नासा-पुट पोले ॥
"रे मिथ्या धर्मध्वज, मृषा सत्य-अभिमानी।
धर्म-धीरता प्रन-दृढ़ता तेरी सब जानी ॥ १८ ॥

ऐसहिँ तुच्छ कपट छल सौं महिमा बिस्तारी।
भयो सकल जग मैं बिख्यात सत्य-ब्रत-धारी॥
दई दान तैं अब समस्त महि भई हमारी।
राज-कोष कौ अब तैं मूढ़ कौन अधिकारी॥ १९॥

जो बुलाइ मंत्रिहिँ ऐसी यह कीन्हि ढिठाई।
मुद्रा आनन की आयसु सानंद सुनाई॥
रे मतिमंद! अमंद कुटिल! रे कपट-कलेवर!
कहा घटत कहु बिना बने ऐसौ दानी नर"॥ २०॥

सुनि मुनिवर के परुष बचन कछु भूप सकाए।
बोले बचन निहोरि जोरि कर बिनय-बसाए॥
"छमा-छमा ऋषिराज दया-सागर गुन-आगर।
छमा-छमा तप-तेज-तरनि तिहुँ-लोक-उजागर॥ २१॥

साँचहिँ अब समुझात बात हम अनुचित कीन्ही।
मंत्रिहिँ जो मुद्रा आनन की आयसु दीन्ही॥
हम अवगुन के कोस किये सब दोष तिहारे।
तुम गुन-सिंधु अगाध छमहु अपराध हमारे॥ २२॥

जिहिँ तिहिँ भाँति सहस्र स्वर्ण-मुद्रा सब दैहैं।
दारा सुअन समेत याहि ऋण-हेत बिकैहैं॥
पुनि मुनि करि भ्रू बंक सहित आतंक उचार्यौ।
"रे रबि-कुल-कलंक मति-रंक हमैं निरधार्यौ॥ २३॥

जा हित माँगत छमा न सो छल छाँड़त नैकँहु ।
निज मुख-पानिप संग बहावत बिसद बिबेकहु ॥
अरे मूढ़मति भई सकल बसुधा जब मेरी ।
काकैं धन तब अधम देह बिकिहै कहु तेरी" ॥ २४ ॥

यह सुनि नृपति सभीति सोचि करि नीति-गुनावन ।
बोले बचन बिनीत बिसद इहिँ रीति सुहावन ॥
"करि कुबेर सौं जुद्ध आनि धन सुद्ध चुकैहैं" ।
बोले मुनि "तब तौ जब अस्त्र तुम्हैं हम दैहैं" ॥ २५ ॥

यह सुनि पुनि नरनाह सोच के सिंधु समाने ।
बहु बिधि सोधि मुखाग्र बचन-मुकता ये आने ॥
"सब सास्त्रनि सौं सिद्ध लोक-बाहिर जो कासी ।
निज त्रिसूल पर धारत जाहि संभु अबिनासी ॥ २६ ॥

अघ-ओघनि करि दूर मोच्छ-पद बरबस दैनी ।
कहा कठिन जौ होहि हमारेहु ऋन की छैनी ॥
दारा सुअन समेत जाइ हम तहाँ बिकैहैं ।
एक मास की अवधि दयासागर जौ दैहैं" ॥ २७ ॥

सुनि भूपति के बचन भए मुनि प्रथम चकित अति ।
लगे प्रसंसा करन मनहिँ मन बहुरि जथामति ॥
"धन्य धर्म-दृढ़ता हरिचंद अमंद तिहारी ।
साँचहि तुम तिहुँ लोक माहिँ नर-गौरव-कारी" ॥ २८ ॥

पुनि बानी करि उदासीन यह आज्ञा कीन्हीँ ।
"एक मास की अवधि तुम्हैँ करुना करि दीन्हीँ ॥
पै जौ एक मास मैँ सब मुद्रा नहिँ पैहै ँ ।
तौ तोहिँ पुरुषनि संग साप दै नर्क पठैहैँ" ॥ २९ ॥

"जो आज्ञा" कहि नृपति हर्षजुत सीस नवायौ ।
मंत्रिहिँ अपर समस्त राजकाजिन्हिँ बुलवायौ ॥
सब सौँ सहित उछाह बिदित बेगिहि यह कीन्यौ ।
"हम सब राज समाज आज ऋषिराजहिँ दीन्यौ ॥ ३० ॥

अब तुम इनके होहु हृदय सौँ आज्ञाकारी ।
राज-काज इमि करहु रहै जिहिँ प्रजा सुखारी ॥
दारा सुअन समेत अबहिँ कासी हम जैहैँ ।
ऋषि-ऋण सौँ उद्धार-हेत बिन सोच बिकैहैँ ॥ ३१ ॥

भयौ होहि कोउ कबहुँ क्रूर बरताव जु हमसौँ ।
सो सब अब बिसराइ देहु निज हिय उत्तम सौँ" ॥
यह सुनि सब अकुलाइ लगे नृप-बदन निहारन ।
"कहत कहा यह आप" सहित स्वरभंग उचारन ॥ ३२ ॥

बेगिहिँ उठि सिंहासन कौँ प्रनाम नृप कीन्यौ ।
रोहितास्व बालकहिँ महिषि सैव्यहिँ सँग लीन्यौ ॥
चले राज तजि हरष बिषाद न कछु उर आन्यौ ।
भूति भाव सब ओर एक ऋण-भंजन ठान्यौ ॥ ३३ ॥

चले प्रजागन संग लागि दृग बारि बिमोचत।
मंत्रि आदि सब मौन मलीन-बदन-जुत सोचत॥
पुर बाहिर ह्वै भूप सबहिँ सब बिधि समुझायौ।
निज पन-पालन कौं आवस्यक धर्म जतायौ॥ ३४॥

जद्यपि समुझावन सौं लह्यौ तोष कछु नाहीँ।
पै लौटे लूटे से गुनि आज्ञा मन माहीँ॥
सहत बिबिध संताप दाप आतप कौ भारी।
सुत-पत्नी-जुत चले कासिका सत-ब्रत-धारी॥ ३५॥

तीसरा सर्ग

पहुँचि कासिका मैं बिश्राम नैकुँ नृप लीन्ह्यौ।
स्नानादिक करि चंदचूर कौ बंदन कीन्ह्यौ॥
पुनि बिकिबे के हेत हाट-दिसि चले बिचारत।
पुर-सोभा-धन-धाम बिबिध अभिराम निहारत॥ १॥

"अहो संभुपुर की सुखमा कैसी मन मोहै।
पै निज चित्त उदास भएँ सोऊ नहिँ सोहै॥
दै सब महि मुनिवरहिँ नाहिँ तेतौ सुख लीन्ह्यौ।
जेतौ दुख अब लहत जानि ऋन अजहुँ न दीन्ह्यौ"॥ २॥

तिहिँ अवसर पुनि गाधि-सुअन तहँ आनि प्रचारयौ।
किये दृगनि बिकराल ब्याल लौं बचन उचारयौ॥
"अरे भ्रष्ट-मन बोलि मास पूरयौ कै नाहीँ।
अब बिलंब किहिँ हेत दच्छिना दैबे माहीँ॥ ३॥

अब हम इक छन-मात्र तोहिँ अवसर नहिँ दैहैँ।
नेँकु न सुनिहैँ बात सकल मुद्रा चुकवैहै॥
बोलि देत कै नाहिँ नतरु अब बेगि नसैहै।
ब्रह्म-डंड अति कठिन साप-बस तव सिर ऐहै" ॥ ४ ॥

करि प्रनाम कर जोरि नृपति बोले मृदु बानी।
"ह्वैहै अवधि आज पूरी मुनिबर बिज्ञानी॥
बिकन हेत हम जात हाट मैँ धनिकनि हेरत।
पहुँचि तहाँ क्रयकर्तनि कौँ तुरतहिँ अब टेरत॥ ५ ॥

सुत-पत्नी-जुत दास होइ तिनसौँ धन लैहैँ।
ऋषिबर राखहु छमा नैकुँ ऋण सकल चुकैहैँ"॥
सुनि मुनि मन मैँ कह्यौ "अजहुँ मति नैकुँ न फेरी।
अरे भूप हरिचंद धन्य छमता यह तेरी" ॥ ६ ॥

बोले पुनि करि क्रोध "भला रे मृषाभिमानी।
साँझ होत ही तव दृढ़ता जैहै सब जानी॥
सूर्य-अस्त के पूर्व दच्छिना जौ नहिँ पैहैँ।
तोहिँ धृष्टता कौ तेरी तौ फल भल दैहैँ" ॥ ७ ॥

यौँ कहि, धिरइ, चढ़ाइ भौँह ऋषिराइ सिधाए।
हरि सुमिरत हरिचंद हाट अति आतुर आए॥
सिर धरि तृन लगे पुकारि यौँ सबहिँ सुनावन।
"सुनौ-सुनौ सब नगर धनीगन सेठ महाजन॥ ८ ॥

हम अपने कौं बेँचत सहस स्वर्न-मुद्रा पर।
लेन होहि जिहिँ लेहि बेगि सो आनि कृपा कर" ॥
तब महिषी सैब्या सभंग-स्वर कंपित-बानी।
बोली नृपहिँ निहारि जोरि कर सोच-सकानी ॥ ९ ॥

"महाराज! हम होत बिकन नहिँ उचित तिहारौ।
तातैँ प्रथम बेँचि हमकौँ ऋन-भार निबारौ ॥
जौ एतहु पर चुकै नाहिँ सब ऋन ऋषिबर कौ।
तौ चाहै सो करहु ध्यान धरि उर हरि-हर कौ" ॥ १० ॥

यौँ कहि लगी पुकारि कहन भरि बारि बिलोचन।
"कोउ लै मोल हमैँ करि कृपा करै दुख-मोचन" ॥
निज जननी दृग बारि हेरि बालक बिलखायौ।
ह्वै उदास अंचल गहि आनन लखि मुरझायौ ॥ ११ ॥
बहुरि तोतरे बचन बोलि आरत-उपजैया।
बूझ्यो "एँ ये कहा भयौ रोवति क्यौँ मैया" ॥
सुनि बालक की बात अधिक करुना अधिकाई।
दंपति सके न थाँभि आँसु-धारा बहि आई ॥१२॥

जदपि बिपति-दुख-अनुभव-रहित रुचिर लरिकाई।
मात पिता की गोद छाँड़ि नहिँ मोद-निकाई ॥
रोवत तऊ देखि तिनकौँ लाग्यौ सिसु रोवन।
इनके कबहुँ कबहुँ उनके आनन-रुख जोवन ॥१३॥

लखि दंपति कातर ह्वै लै लगाइ उर लीन्ह्यौ।
फेरि माथ पर हाथ चिबुक कौं चुंबन कीन्ह्यौ ॥
बहुरि बिकन के हेत लगे ग्राहक कौं टेरन।
आसाकृत चल चखनि चपल चारहुँ दिसि फेरन ॥१४॥

जित तित चरचा चली बिकत इक दासऽरु दासी।
लखन हेत सब ओरनि सौं उमड़े पुरबासी ॥
एकत्रित तहँ भए आनि बहु लोग लुगाई।
लागे पूछन मोल, कहन निज-निज मन-भाई ॥१५॥

उपाध्याय इक बृद्ध सिष्य-जुत सुनि यह धायौ।
करि श्रम भीड़ हटाइ आइ तिन सौं नियरायौ ॥
लखि तिनकौं ह्वै चकित हृदय-अंतर इमि भाष्यौ।
"छत्र, मुकुट के जोग सीस यह क्यौं तृन राख्यौ ॥१६॥

अति प्रलंब आजानु बाहु दृग कानन-चारी।
उन्नत ललित ललाट बिसद बच्छस्थल धारी ॥
को यह जामैं लखियत चिह्न चक्रवर्ती के।
औ तैसेही सुभ सोहत लच्छन इहिँ ती के ॥१७॥

रूप-सील-गुन-खानि सुघर सबही बिधि सोहति।
लाजनि बोलति मंद नैंकु सौंहैं नहिँ जोहति ॥
साँचहिँ यह कोउ अति पुनीत कुल की कुलनिधि है।
जानि परत नहिँ बाम भयौ ऐसौ क्यौं बिधि है" ॥१८॥

यौँ गुनि मन पसीजि नृप सौँ बोल्यौ मृदुबानी ।
"कहहु महासय कौन आप ऐसी कत ठानी ॥
सब संसय करि दूर हमैँ हित-चिंतक जानौ ।
होहि उचित तौ कछु अपनौ बृत्तांत बखानौ" ॥ १९ ॥

करि प्रनाम अवलोकि अवनि उत्तर नृप दीन्ह्यौ ।
"छत्री-कुल मैँ जन्म सुनहु द्विजबर हम लीन्ह्यौ ॥
इक ब्राह्मन-ऋन-काज आज बिकिबे की ठानी ।
इहै मुख्य सब कथा अपर अब बृथा कहानी" ॥ २० ॥

उपाध्याय बोल्यौ "हम सौँ धन लै ऋन दीजै ।"
कह्यौ भूप कर जोरि "छमा हम पर बस कीजै ॥
यह तौ द्विज की बृत्ति कबहुँ ऐसौ नहिँ ह्वैहै ।
जौ यह तन धन लै सेँतहिँ निज भार चुकैहै ॥ २१ ॥

पै अपने कौँ बेँचि आप सौँ जौ धन पावैँ ।
तौ ऋषिऋन हम तुरत सहित संतोष चुकावैँ" ॥
कह्यौ बिप्र "तौ पंच सत स्वर्नखंड यह लीजै ।
दोऊनि मैँ सौँ एक दासपन स्वीकृत कीजै" ॥ २२ ॥

यह सुन सैब्या कह्यौ जोरि कर दृग भरि बारी ।
"हमहिँ अछत तुम नाथ न होहु दास-ब्रत-धारी ॥
बिकन देहु हमहीँ पहिलैँ सुनि बिनय हमारी ।
जामैँ ये दृग लखैँ न ऐसी दसा तिहारी" ॥ २३ ॥

कह्यौ थाम्हि हिय भूप "कहा कछु हम अब कहिहैं ।
अच्छा प्रथम जाहु तुमहीं याहू दुख सहिहैं" ॥
उपाध्याय सौं कह्यौ बहुरि महिषी "हम चलिहैं" ।
पूछयौ द्विज तब "कौन काज तुम पाहिं निकलिहैं"॥ २४ ॥

"संभाषन पर-पुरष संग उच्छिष्ट असन तजि ।
करिहैं हम सब काज" कह्यौ रानी धर्महिं भजि ।
कियौ बिप्र स्वीकार कह्यौ "पुत्रीवत रहियौ ।
गृह के काम काज की सुधि छमता जुत लहियौ" ॥ २५ ॥

यह सुनि द्विज सौं तुरत स्वर्णमुद्रा लै आई ।
नृप के बसन माहिं बाँधत करुना अधिकाई ॥
कह्यौ बिप्र सौं "कीजै क्षमा नैकुं अब द्विजवर ।
लेहिं निरखि भरि नैन नाह कौ आनन सुंदर ॥ २६ ॥

फिर यह आनन कहाँ कहाँ यह नैन अभागी" ।
यौं कहि बिलखि निहारि नृपति-रुख रोवन लागी ॥
कह्यौ बिप्र "हम चलत सिष्य के सँग तुम आवौ ।
निजु पति सौं मिलि माँगि बिदा दुख नैकु न पावौ"॥ २७ ॥

यौं कहि द्विज कौडिन्यहिं छाँड़ि गए निज घर कौं ।
सैब्या लगी पाइँ परि बिनवन नाह सुघर कौं ॥
"दरसन हूँ दुर्लभ अब तौ लखि परत तिहारे ।
छमहु भए जो होहिं नाथ अपराध हमारे" ॥ २८ ॥

यह सुनि महा धीर भूपहु कौ साहस छूटयौ।
अश्रु-बाह कौ प्रबल पूर दोहूँ दिसि फूटयौ॥
पै पुनि करि हिय प्रौढ़ भूप रानिहिँ समुझायौ।
बहु बिधि करि उपदेस धर्म-पथ कठिन दिखायौ॥ २९॥

कह्यौ "बिप्र की आयसु पैँ नित प्रति मन दीज्यौ।
जासौँ रहै प्रसन्न सदा सोई कृत कीज्यौ॥
बिप्रानिहुँ कौँ तुष्ट सुखद सेवा सौ रखियौ।
औ सिष्यनि की ओर समुद मातावत लखियौ॥३०॥

जथासक्ति बालक हू को प्रतिपालन कीज्यौ।
रहै धर्म जासौँ करि कर्म सोई जस लीज्यौ"॥
लखि बिलंब अनखाइ "चलौ" कौडिन्य कह्यौ तब।
कह्यौ भूप दृग-बारि ढारि "हाँ देवि जाहु अब"॥३१॥

चलत देखि दुखकृत-बिकृत मुख बालक खोल्यो।
"कहाँ जाति, जनि जाइ माइ" अंचल गहि बोल्यौ॥
पुनि बिलंब जिय जानि क्रूर कौडिन्य रिसायौ।
कह्यो "बेगि चलि" झटकि बालकहिँ भूमि गिरायौ॥३२॥

रोवन लाग्यौ फूटि झपटि हरिचंद उठायौ।
धूरि पोँछि मुख चूमि लाइ हिय मौन गहायौ॥
कह्यौ बिप्र सौँ "सुनौ देवता यह अबोध है।
बालक पै न कबहुँ उचित कहुँ इतौ क्रोध है"॥३३॥

"रे छत्री - कुल - पच्छ सदा उर रच्छनहारे।
अंतरिच्छ सौं बेगिहिं गिरौ समच्छ हमारे॥
छत्रिहिं कुल मैं होहि जन्म पुनि जाइ तिहारे।
बालपनहिं मैं जाहु बहुरि दुज-हाथनि मारे" ॥३९॥

जल छोड़त इमि भाषि भयौ कोलाहल भारी।
लगे गगन सौं गिरन सकल ह्वै परम दुखारी॥
यह लखि भूप सराहि तपोबल मन मैं भाख्यौ।
"साँचहि मुनि अति दयाभाव हम पर यह राख्यौ॥४०॥

जो नहिं अब लौं दियौ साप करि दाप हृदय मैं"।
पुनि बोले कर जोरि बचन बर बोरि बिनय मैं॥
"दासी करि महिषीहिं दिरम आधे ही पाए।
यह लीजै तन बेचि देत अब सेस चुकाए" ॥४१॥

यौं कहि गाँठि निवारि डारि धन महि पर दीन्ह्यौ।
तिरस्कार ताकौ करि मुनि यह उत्तर दीन्ह्यौ॥
"हम आधौ नहिँ चहत एक बेरहिँ सब लैहैं।
राखहु दृढ़ यह जानि और अवसर नहिँ दैहैं" ॥४२॥

लागे भूप ससंक बहुत ग्राहक-गन टेरन।
लगी भीर पुनि आइ चारिहू दिसि तैं हेरन॥
डोम चौधरी मरघट कौ तिहिँ अवसर आयौ।
इक सेवक कैं संग सुरा कैं रंग रँगायौ ॥४३॥

कारौ तन बिकराल बदन लघु दृग मतवारे।
लाल भाल पै तिलक केस छोटे घुँघरारे॥
अकबक बोलत बैन कह्यौ "हम तुम्हैं बिकैहैं।
तुम जो माँगत मोल पाँच सौ मोहर दैहैं" ॥४४॥

यह सुनि नृप हरषाइ कह्यौ "आऔ इत आऔ"।
लखि सकाइ पूछ्यौ "पै को तुम प्रथम बताऔ" ॥
सो बोल्यौ "हम डोम चौधरी मरघटवारे।
अमल हमारौ रहत नदी के दुहूँ किनारे ॥४५॥

फूलमती कौ पूजन करत कलेस नसावन।
बिना लिएँ कर कफन देत नहिँ मृतक जरावन॥
धन-तेरस की साँझ और अधिरात दिवाली।
नाचि कूदि बलि दै पूजैं मसान औ काली ॥४६॥

सोई हम यह सुनौ मोल तुमकौं अब लैहैं।
तुरत गाँठि सौं खोलि पाँच सौं मोहर दैहैं" ॥
यह सुनि अति दुख पाइ नाइ सिर भूप बिचार्‍यौ।
"तब नहिँ तौ अब सबहिँ भाँति बिधि ब्यौंत बिगार्‍यौ ॥४७॥

बिकैं होत चंडाल बिकैं बिन ऋन न चुकत है।
कीजे कौन उपाय हाय नहिँ धीर रुकत है॥
औ अब साँजहु होन माहिँ कछु औसर नाहीं।
अरे कहूँ है जाइ न दिन इनि झगड़नि माहीं" ॥४८॥

पुनि ह्वै बिकल कह्यौं ऋषि सों "करुना अब कीजै।
इहि अवसर गहि बाँह उबारि हमैं जस लीजै॥
करि निज दास जन्म भर सब सेवा करवाऔ।
हा हा पै चंडाल होन सौं हमैं बचाऔ" ॥४९॥

"कौन काज करिहै" बोले मुनि "दास हमारो।
हम तपस्वि निज दास आपही तुमहिं बिचारौ" ॥
कह्यौं भूप पुनि "नैंकु दया उर अंतर आनौ।
करिहैं सो सब जो आज्ञा ह्वै है मुनि मानौ" ॥५०॥

"सुनो धर्म साखी सब" मुनि यह सुनत पुकार्‌यौ।
"मम आज्ञा पालन कौ पन देखौ यह धार्‌यौ" ॥
कह्यौ भूप "हाँ हाँ ह्वै है आज्ञा सो करिहैं।
सब संसय परिहरहु प्रतिज्ञा सौं नहिं टरिहैं" ॥५१॥

बोले मुनि "तौ होति इहै आज्ञा, न बकाऔ।
बिकि याही कैं हाथ दच्छिना अबहिं चुकाऔ" ॥
सुनि यह अधर दबाइ नाइ सिर मौन भए छन।
फिर बोले "अच्छा याही कैं कर बेचत तन" ॥५२॥

बहुरि डोम सौं कह्यौ "सुनहु पहिलहि हम भाषत।
बिकत रावरैं हाथ नियम पर ये करि राखत॥
रखिहैं भिच्छा असन बसन-हित कंबल लैहैं।
बसिहैं बिलग बेगि करिहैं आयसु जो पैहैं" ॥५३॥

सो सुनि नृप के बचन नियम सब स्वीकृत कीन्हे ।
पँच सत स्वर्न खंड सेवक सौँ लै गिनि दीन्हे ॥
भूपति अति सुख मानि धरे लै मुनिवर आगे ।
मुनि उठाइ कहि 'स्वस्ति' चहूँ दिसि बाँटन लागे ॥५४॥

कह्यौ भूप "ऋषिराज सकल अपराध छमौ अब ।
जो बिलंब सौँ भयो कष्ट बिसराइ देहु सब" ॥
"तजहु संक हम भए तुष्ट लखि चरित तिहारे" ।
यौँ कहि नैन नवाइ बेगि ऋषिराइ सिधारे ॥५५॥

बोले नृप भरि साँस आँसु बब पोंछि बसन सौँ ।
"आयसु होहि सो करहिँ, चैाधरी! अब तन मन सौँ" ।
कह्यौ चैाधरी "तुम दक्खिन मसान पर जाऔ ।
तहाँ कफन के दान लेन मैँ नित चित लाऔ ॥५६॥

बिना दिएँ कर मृतक फुकन कबहूँ नहिँ पावै ।
धनी रंक राजा परजा कैसहु कोउ आवै ॥
घाट निवास सचेत करौ है दास हमारे" ।
यह आयसु सुनि भूप तुरत तिहिँ दिसि पग धारे ॥५७॥

लगे कफन कर लेन जाइ तहँ इत महिदानी ।
उपाध्याय घर जाइ भई दासी उत रानी ॥
इहिँ बिधि दारा संग बेचि निज अंग दास है ।
राख्यौ नृप निज रंग इंद्र भौ दंग जाहि ज्वै ॥५८॥

चौथा सर्ग

कीन्हे कंबल बसन तथा लीन्हे लाठी कर।
सत्यब्रती हरिचंद हुते टहरत मरघट पर॥
कहत पुकारि पुकारि "बिना कर कफन चुकाए।
करहि क्रिया जनि कोइ देत हम सबहिँ जताए" ॥१॥

कहुँ सुलगति कोउ चिता कहूँ कोउ जाति बुझाई।
एक लगाई जाति एक की राख बहाई॥
बिबिध रंग की उठति ज्वाल दुर्गंधनि महकति।
कहुँ चरबी सौँ चटचटाति कहुँ दह दह दहकति ॥२॥

कहुँ सृगाल कोउ मृतक-अंग पर ताक लगावत।
कहुँ कोउ सव पर बैठि गिद्ध चट चोंच चलावत॥
जहँ तहँ मज्जा माँस रुधिर लखि परत बगारे।
जित तित छिटके हाड़ स्वेत कहुँ कहुँ रतनारे॥४॥

हरहरात इक दिसि पीपर कौ पेड़ पुरातन।
लटकत जामैं घंट घने माटी के बासन॥
बरषा ऋतु के काज औरहू लगत भयानक।
सरिता बहति सबेग करारे गिरत अचानक॥५॥
ररत कहूँ मंडूक कहूँ झिल्ली झनकारैं।
काक-मंडली कहूँ अमंगल मंत्र उचारैं॥
लखत भूप यह साज मनहिँ मन करत गुनावन।
"परयौ हाय! आजन्म कर्म यह करन अपावन॥६॥

भए डोम के दास बास ऐसे थल पायौ।
कफ़न-खसोटी काज माहिँ दिन जात बितायौ॥
कौन कौन सी बातनि पै दृग-बारि बिमोचैं।
अपनी दसा लखैं कै दुख रानी कौ सोचैं॥७॥

कै अजान बालक कौ अब संताप बिचारैं।
भयौ कहा यह हाय होत मन हृदय बिदारैं॥
पै याहू करि सकत नाहिँ अब हे त्रिपुरारी॥
भए और के दास कहाँ निज-तन-अधिकारी"॥८॥

इहि बिधि बिबिध बिचार करत चारिहुँ दिसि टहरत।
कबहुँ चलत कहुँ चपल कबहुँ काहू थल ठहरत॥
लखि मसान देवी कौ थल तहँ सीस नवायौ।
अति प्रसन्नता सहित सब्द यह तित तैं आयौ॥ ९॥

"महाराज हम पूज्य सदा चंडालनि ही की।
तव प्रनाम सौं होति सुनहु लज्जित परि फीकी॥
भईं तुष्ट अति पै बिलोकि सच्चरित तिहारे।
माँगहु जो बर देहिं तुरत यह हृदय हमारे"॥ १०॥

बोले नृप "साँचहिं प्रसन्न तौ यह बर दीजै।
सब बिधि सौं कल्यान हमारे प्रभु कौ कीजै"॥
बहुरि भई धुनि "धन्य धर्म यह को पहिचानै।
साधु साधु हरिचंद कौन तुम बिन इमि ठानै"॥ ११॥

भई आनि तब साँझ घटा आई घिरि कारी।
सनै सनै सब ओर लगी बाढ़न अँधियारी॥
भए एकठा आनि तहाँ डाकिनि-पिसाच-गन।
कूदत करत कलोल किलकि दौरत तोरत तन॥ १२॥

आकृति अति बिकराल धरे, क्वैला से कारे।
बक्र-बदन लघु-लाल-नयन-जुत, जीभ निकारे॥
कोउ कड़ाकड़ हाड़ चाबि नाचत दै ताली।
कोऊ पीवत रुधिर खोपरी की करि प्याली॥ १३॥

कोउ अँतड़िनि की पहिरि माल इतरात दिखावत।
कोउ चरबी लै चोप सहित निज अंगनि लावत॥
कोउ मुंडनि लै मानि मोद कंदुक लौं डारत।
कोउ रुंडनि पै बैठि करेजौ फारि निकारत॥ १४॥

ऐसे अवसर कठिन सबहिं बिधि धीर-नसावन।
नृप-दृढ़ता के कसन हेतु हरि कीन्ह गुनावन॥
करि कापालिक बेस धर्म तब तिहि ठाँ आयौ।
बसन गेरुआ अंग भंग कैं रंग समायौ॥ १५॥

छूटे लाँबे केस नैन राजत रतनारे।
सिर सेंदुर कौ तिलक भस्म सब तन मैं धारे॥
एक हाथ खप्पर चिमटा दूजैं कर भ्राजत।
गरैं हाड़ के हार सहित तरिवार बिराजत॥ १६॥

लखि नृप कियौ प्रनाम भए ठाढ़े सिर नाए।
कह्यौ कपालिक "हम तुम पैं अर्थी है आए"॥
यह सुनि नृप सकुचाइ नैन नीचैं करि भाष्यौ।
"जोगिराज हमकौं बिधि काहू जोग न राख्यौ"॥ १७॥

सो बोल्यौ "हम जोग दृष्टि सौं सब कछु जानत।
करहु न नृप संकोच सोचि कछु यह उर ठानत॥
जदपि भई यह दसा तदपि हम कहत पुकारे।
महाराज सब काज आज करि सकत हमारे"॥ १८॥

कह्यौ भूप "तौ नैंकुहु नहिँ संसय उर आनौ।
होहि हमारे जोग काज सो बेगि बखानौ"॥
कह्यौ जोगि "बैताल, जोगिनी, बज्र, रसायन।
बहुरि पादुका, धातु-भेद, गुटिका औ आँजन॥१९॥

सब के सिद्धि-बिधान भली भाँतिनि हम जानत।
बिघ्न उपस्थित होत आनि पै नैंकु न मानत॥
तिन्हैँ निवारौ तुम तौ सिद्धि बेगि हम पावैँ।
निकट सिद्धि-आकर ह्याँ सौं तहँ जाइ जगावैँ"॥२०॥

लहि उत्तर अनुकूल गयौ उत सुख सौं साधक।
इत नृप बिघननि रोकि होन दीन्ह्यौं नहिँ बाधक॥
पुनि कछु समय बिताइ तहाँ जोगी सो आयौ।
अति आनँद सौं उमगि भूप कौं टेरि सुनायौ॥२१॥

"महाराज तव कृपा आज हम सब कछु पायौ।
देखौ महानिधान सिद्ध यह भयौ सुहायौ॥
जोगी जन जाके प्रभाव ह्वै अमर अमर लौं।
बिहरहिँ निपट निसंक जाइ गिरि मेरु सिखर लौं॥२२॥

लीजे आपहु ह्वै प्रसन्न हम सादर लाए"।
कह्यौ भूप "बस क्षमा करहु हम दास पराए॥
बिन स्वामी के कहैँ कछू काहू सौं लैबौ।
जानि परत हमकौं जैसे करि कपट कमैबौ"॥२३॥

कह्यौ कपालिक "तौ न बृथा एतौ दुख पाओ।
यासौं स्वर्न बनाइ जाइ निज दास्य छुड़ाओ" ॥
सत्यब्रती हरिचंद बहुरि यह उत्तर दीन्ह्यौ।
"जोगिराज निज मत-प्रकास प्रथमहिँ हम कीन्ह्यौ ॥२४॥

होइ चुके जब दास गुनत तब यह मत नीकौ।
जो कछु हमकौँ मिलै सबहि धन है स्वामी कौ ॥
यातैँ करि अब कृपा मानि बिनती यह लीजै।
जो कछु दैबौ होइ जाइ स्वामिहिँ कौँ दीजै" ॥२५॥

यह सुनि अजगुत मानि मनहिँ मन धर्म सराह्यौ।
"अहो भूप हरिचंद इहाँ लौँ सत्य निबाह्यौ" ॥
बहुरि बिदा लै दै असीस यह भाषि सिधार्‌यौ।
"अच्छा सोई करत जाइ जो तुम उच्चार्‌यौ" ॥२६॥

पुनि आए तिहिँ ठाम अनेक देव देवी तब।
आठहु सिद्धि नवौ निधि द्वादसहू प्रयोग सब ॥
लगे कहन "जय होइ भूप हरिचंद तिहारी।
तुम करि कृपा समस्त बिघ्न-बाधा निरवारी ॥२७॥

अब जो आज्ञा होइ करहिँ हैँ सुबस तिहारे"।
यह सुनि गुनि मन माहिँ नृपति इमि बचन उचारे ॥
"कृपा भाव यह आहिँ सुनहु सब भाँति तिहारे।
पराधीन हम पै यातैँ यह कहत पुकारे ॥२८॥

जो प्रसन्न तौ महासिद्धि जोगिनि पहँ जाऔ ।
औ सज्जन के सदन सदा निधि बास बनाऔ ॥
औ प्रयोग साधकनि प्राप्त ह्वै मोद बढ़ाऔ ।
पै भाषत यह भेद ताहि गुनि हृदय बसाऔ ॥२९॥

जो षट भले प्रयोग सहज हीँ होहिँ सिद्ध सो ।
सधहिँ बिलँब सौँ पै प्रयोग षट आहिँ बुरे जो" ॥
यह सुनि भौचक ह्वै समस्त यह उत्तर दीन्ह्यौ ।
"धन्य भूप हरिचंद लोक-उत्तर कृत कीन्यौ ॥३०॥

तुम बिन को महि जो ऐसी संपति लहि त्यागै ।
आपुनपौ बिसराइ जगत के हित मैँ पागै" ॥
यौँ कहि दै असीस सब देवी देव सिधारे ।
पुनि नृप टहरन लगे लट्ठ काँधे पर धारे ॥३१॥

गई राति रहि सेस रँचक पौ फाटन लागी ।
नृप के अंतिम परखन की पारी तब जागी ॥
टहरत टहरत बाम अंग लागे कछु फरकन ।
औ ताही कैँ संग अनायासहिँ हिय धरकन ॥३२॥

लगे चित्त मैँ अनुभव होन असुभ संघाती ।
भई बृत्ति उच्चाट भभरि आई भरि छाती ॥
एकाएक अनेक कल्पना उठीँ भयानक ।
कियौ गुनावन भूप "भयौ यह कहा अचानक ॥३३॥

यह असगुन क्यौं होत कहा अब अनरथ ह्वैहै ।
गयौ कहा रहि सेस जाहि बिधना अब ख्वैहै ॥
छूट्यौ राज समाज भए पुनि दास पराए ।
ऐसी महिषीहूँ कौं उत दासी करि आए ॥३४॥

औ अबोध बालकहूँ कौं बिलखत सँग भेज्यौ ।
इक मरिबे कौं छाड़ि कहा जो नाहिँ अँगेज्यौ" ॥
फरकी बाईं आँख बहुरि सोचत बालक कौं ।
औ यह धुनि सुनि परी परम दृढ़-ब्रत-पालक कौं ॥३५॥

"सावधान अब बत्स परिच्छा अंतिम है यह ।
डगन न पावै सत्य हरिच्छा अंतिम है यह ॥
ऐसौ कठिन कलेस सह्यौ कोऊ नृप नाहीँ ।
अपनेहिँ कैसौ धैर्य धरौ याहू दुख माहीँ ॥३६॥

तव पुरुषा इछ्वाकु आदि सब नभ मैँ ठाढ़े ।
सजल नयन धरकत हिय जुत इहिँ अवसर गाढ़े ॥
संसय संका सोक सोच संकोच समाए ।
साँस रोकि तव मुख निरखत बिन पलक गिराए ॥३७॥

देखहु तिनके सीस होन अवनत नहिँ पावैँ ।
ऐसी बिधि आचरहु सकल-जग-जन जस गावैँ" ॥
यह सुनि नृप ह्वै चकित चपल चारिहु दिसि हेर्‌यौ ।
"ऐसे कुसमय माहिँ कौन हित सौँ इमि टेर्‌यौ" ॥३८॥

जब कोउ दीस्यो नाहिँ हृदय तब यह निरधार्यौ।
"ज्ञात होत कुलगुरु सूरज यह मंत्र उचार्यौ॥
ह्वै आतुर निज आवन मैँ करि बिलँब गुनावन।
उदयाचल की ओटहि सौँ यह दीन्ह सिखावन"॥ ३९॥

यह बिचारि पुनि धारि धीर दृढ़ उत्तर दीन्ह्यौ।
"महानुभाव महान अनुग्रह हम पर कीन्ह्यौ॥
तजहु संक सब अंक कलंक लगन नहिँ दैहैँ।
जब लौँ घट मैँ प्रान आन करि सत्य निबैहैँ"॥ ४०॥

एतेहि मैँ श्रुति माहिँ सब्द रोवन कौ आयौ।
भूलि भाव सब और स्वामि-हित पर चित लायौ॥
लट्ठ ठौँकि तिहिँ ओर चले आतुर आहट पर।
साँति मुनिनि की वारि गई तिहिँ घबराहट पर॥ ४१॥

पग उठावतहिँ भए असुभ सुभ सगुन एक सँग।
जंबुक काटी बाट लगे फरकन दहिने अँग॥
बिगत बिषाद हर्षहत हिय करि धैर्य भाव भरि।
होत हुतो जहँ रुदन तहाँ पहुँचे सुमिरत हरि॥ ४२॥

देखी सहित बिलाप बिकल रोवति इक नारी।
धरे सामुहैँ मृतक देह इक लघु आकारी॥
कहति पुकारि पुकारि "बत्स मैया मुख हेरौ।
बीरपुत्र ह्वै ऐसे कुसमय आँखि न फेरौ॥४३॥

हाय हमारौ लाल लियौ इमि लूटि बिधाता।
अब काकौ मुख जोहि मोहि जीवै यह माता॥
पति त्यागैं हूँ रहे प्रान तव छोह सहारे।
सो तुमहूँ अब हाय बिपति मैं छाँड़ि सिधारे॥४४॥

अबहिं साँझ लौं तौ तुम रहे भली बिधि खेलत।
औचकहीं मुरझाइ परे मम भुज मुख मेलत॥
हाय न बोले बहुरि इतोही उत्तर दीन्ह्यौ।
'फूल लेत गुरु हेत साँप हमकौं डसि लीन्ह्यौ'॥४५॥

गयौ कहाँ सो साँप आनि क्यौं मोहुँ डसत ना।
अरे प्रान किहिं आस रह्यौ अब बेगि नसत ना॥
कबहुँ भाग-बस प्राननाथ जौ दरसन दैहैं।
तौ तिनकौं हम बदन कहौ किहिं भाँति दिखैहैं॥ ४६ ॥

उन तौ सौंप्यौ हमैं दसा हम यह करि दीन्ही।
हाय हाय क्यौं सुमन चुनन की आयसु दीन्ही॥
अहो नाथ अब तौ आवौ इत नैंकु कृपा करि।
लेहु निरखि निज हृदय-खंड कौ बदन नैन भरि॥ ४७ ॥

प्रानदंड दै हमैं कष्ट सब बेगि निबारौ।
सुनत क्यौं न इहिं बेर फेर निज न्याव सम्हारौ॥
हाय बत्स किन सुनि पुकारि मैया की जागत।
अरे मरे हूँ पै तुम तौ अति सुंदर लागत"॥ ४८ ॥

करि बिलाप इहिँ भाँति उठाइ मृतक उर लायौ।
चूमि कपोल बिलोकि बदन निज गोद लिटायौ॥
हिय-बेधक यह दृश्य देखि नृप अति दुख पायौ।
सके न सहि बिलगाइ नैकुँ हटि सीस नवायौ॥ ४९॥

लगे कहन मन माहिँ "हाय याकौ दुख देखत।
हम अपनोहूँ दुसह दुःख न्यूनहिँ करि लेखत॥
ज्ञात होत काहू कारन याकौ पति छूट्यौ।
पुत्र-सोक कौ बज्र हृदय ताहू पर टूट्यौ॥५०॥

हाय हाय याकौ दुख देखत फाटति छाती।
दियौ कहा दुख अरे याहि बिधना दुरघाती॥
हाय हमैं अब याहू सौं माँगन कर परिहै।
पै याके सौंहैं कैसें यह बात निकरिहै" ॥५१॥

पुनि भूपति कौ ध्यान गयौ ताके रोवन पर।
बिलखि बिलखि इमि भाषि सीस धुनि मुख जोवन पर॥
"पुत्र! तोहि लखि भाषत हे सब गुनि औ पंडित।
ह्वैहै यह महराज भोगिहै आयु अखंडित॥५२॥

तिनके सो सब वाक्य हाय प्रतिकूल लखाए।
पूजा पाठ दान जप तप सब बृथा जनाए॥
तव पितु कौ दृढ़-सत्य-ब्रतहु कछु काम न आयौ।
बालपनेहिँ मैं मरे जथाबिधि कफन न पायौ" ॥५३॥

यह सुनि औरै भए भाव सब भूप हृदय के।
लगे दृगनि मैं फिरन रूप संसय अरु भय के॥
चढ़ी ध्यान पै आनि पूर्व घटना सम ह्वै ह्वै।
हिचकिचान से लगे कछुक सबकी दिसि ज्वैं ज्वैं ॥५४॥

एतहि मैं रोवत रोवत सो बिलखि पुकारी।
"हाय आज पूरी कौसिक सब आस तिहारी"॥
यह सुनि एकाएक भई धक सौं नृप छाती।
भरी भराई सुरँग माहिँ लागी जनु बाती ॥५५॥

धीरज उड़्यौ धधाइ धूम दुख कौ घन छायौ।
भयौ महा अँधेर न हित अनहित दरसायौ॥
बिबिध गुनावन महा मर्म-भेदी जिय जागे।
"हाय पुत्र! हा रोहितास्व!" कहि रोवन लागे ॥५६॥

"हाय भयौ हो कहा हमैं यह जात न जान्यौ।
जो पत्नी अरु पुत्रहिँ अब लौं नाहिँ पिछान्यौ॥
हाय पुत्र तुम कहा जनमि जग मैं सुख पायौ।
कीन्ह्यौ कहा बिलास कहा खेल्यौ अरु खायौ ॥५७॥

हाय, हमारे काज कष्ट भोग्यौ तुम भारी।
राजकुँवर ह्वै हाय भूख औ प्यास सहारी॥
पातक ही ह्वै गयौ आज लौं जो हम कीन्ह्यौ।
नतरु पुत्र कौ सोच दुसह अति क्यौं बिधि दीन्ह्यौ ॥५८॥

कहिहैं सब संसार हमैं अब हाय पातकी।
सहिहैं कैसैं हाय चोट पर चोट बात की!
हाय! पुत्र यह कहा गई है दसा तिहारी।
गए कहाँ तजि माता पितहिँ ससोक दुखारी॥५९॥

हम तौ साँचहिँ किये सबहि अपराध तिहारे।
पै दुखिनी मैया कौं क्यौं तजि बृथा सिधारे॥
हाय-हाय जग मैं कैसे अब बदन दिखैहैं।
कहा महारानी के सौंहैं बात बनैहैं॥ ६० ॥

जग कौं यह बृत्तांत जनावन के पहिलैं हीं।
महिषी कौं यह बदन दिखावन के पहिलैं हीं॥
जानि परत अति उचित प्रान तजि देन हमारौ।
जामैं सब संसार माहिँ मुख होहि न कारौ" ॥ ६१ ॥

यह बिचार दृढ़ करि पीपर के पास पधारे।
लीन्हीं डोरी खोलि द्वैक घंटनि करि न्यारे॥
मेलि तिन्हैं पुनि एक छोर पर फाँद बनायौ।
चढ़ि इक साखा बाँधि छोर दूजौ लटकायौ॥ ६२ ॥

पै ज्यौंहीं गर माँहिँ फाँद दै कूदन चाह्यौ।
त्यौंहीं सत्य-विचार बहुरि उर माहिँ उमाह्यौ।
"हरे-हरे यह कहा बात हम अनुचित ठानी।
कहा हमैं अधिकार भई जब देह बिगानी॥ ६३ ॥

जौ हम तजिबौ प्रान होइ मतिअंध विचारयौ।
हाय जाय कैसैं यह मनसा-पाप निवारयौ॥
दुख सौं गई हाय ऐसी ह्वै मति मतवारी।
अंतरजामी नाथ छमहु यह चूक हमारी॥ ६४॥

अब तौ हम हैं दास डोम के आज्ञाकारी।
रोहितास्व नहिं पुत्र न सैब्या नारि हमारी॥
चलैं स्वामि के काज माहिं दृढ़ ह्वै चित लावैं।
लेहिं कफन कौ दान बेगि नहिं बिलँब लगावैं॥ ६५॥

यह निरधारि निबारि फाँद हिय प्रौढ़ महा करि।
उतरि आइ रानी पाछैं ठमके उर कर धरि॥
सुन्यौ बहुरि ताकौ बिलाप अति बिकल करैया।
"हाय बत्स अब उठौ हमैं टेरौ कहि मैया॥ ६६॥

हाय-हाय काकैं हित अब हम असन बनैहैं।
काकौं मुख की धूरि पोंछि कै अंक लगैहैं॥
अब काकैं अभिमान विपति हूँ मैं सुख मानैं।
दासी हूँ ह्वै रानिनि सौं निज कौं बढ़ि जानैं॥ ६७॥

हाय बत्स तुम बिन अब जग जीवति नहिं रैहैं।
याही छन इहिं ठाम प्रान काहू बिधि दैहैं॥
याहि बिटप मैं लाइ गरैं फाँसी मरि जैहैं।
कै पाथर उर भारि धार मैं धाइ समैहैं"॥ ६८॥

यौँ कहि उठि अकुलाइ चह्यो धावन ज्यौँ रानी।
त्यौँ स्वर करि गंभीर धीर बोले नृप बानी॥
"बेचि देह दासी ह्वै तब तौ धर्म सम्हार्यौ।
अब अधरम क्यौँ करति कहा यह हृदय बिचार्यौ॥ ६९॥

या तन पै अधिकार कहा तुमकौँ सोचौ छिन।
जानि बूझि जो मरन चलौँ स्वामी-आयसु बिन"॥
यह सुनि ह्वै चैतन्य महारानी मन आन्यौं।
"ऐसे कुसमय माँहिँ कौन हित-मंत्र बखान्यौं॥ ७०॥

साँचहिँ अनरथ होन चहत हो यह अति भारी।
धन्य धर्मबक्ता सो जो गहि बाँह उबारी॥
हमैँ कौन अधिकार रह्यौ अब प्रान तजन कौ।
दीसत और उपाय न दुख सौँ दूर भजन कौ॥ ७१॥

तौ छाती धरि बज्र लोक-आचार सम्हारैँ।
जिन कर पाल्यौ तिन कर....! हाहा काहिँ पुकारैँ॥
इहिँ बिधि करत विलाप काठ चुनि चिता बनाई।
धाड़ मारि सो मृतक देह ताकैँ ढिग ल्याई॥ ७२॥

तब नृप बरबस रोकि आँसु, सौँहैँ बढ़ि आए।
थाम्हि करेजौ धारि धीर ये सब्द सुनाए॥
"है मसानपति की आज्ञा कोउ मृतक फुकै ना।
ज़ब लौँ फूकन-हार कफन आधौ कर दै ना॥ ७३॥

यातैं देवी देहु तुमहुँ कर, क्रिया करौ तव" ।
भर्‌यौ गगन यह सब्द भूप इमि टेरि कह्यौ जब ॥
"धन्य धैर्य बल सत्य दान सब लसत तिहारे ।
अहो भूप हरिचंद सकल लोकनि तैं न्यारे" ॥ ७४ ॥

यह सुनि सैब्या भई चकित बोली इत उत ज्वै ।
"आर्यपुत्र की करत प्रसंसा कौन हितू है ॥
पै इहि बृथा प्रसंसा हूँ सौं होत कहा फल ।
जानि परत सब सास्त्र आदि अब तौ मिथ्या छल ॥ ७५ ॥

निसंदेह सुर सकल महीसुर स्वारथरत अति ।
नातरु ऐसे धर्मी की कैसैं ऐसी गति" ॥
यह सुनि स्रवननि धारि हाथ भूपति तिहिँ टोक्यौ ।
"हरे-हरे यह कहत कहा तुम" यौं कहि रोक्यौ ॥ ७६ ॥

"सूर्य-बंस की बधू चंद्र-कुल की है कन्या ।
मुख सौं काढ़त हाय कहा यह बात अधन्या ॥
बेद ब्रह्म ब्राह्मन सुर सकल सत्य जिय जानौ ।
दोष आपने कर्महिँ कौ निहचय करि मानौ ॥ ७७ ॥

मुख सौं ऐसी बात भूलि फिरि नाहिँ निकारौ ।
होत बिलँब, दै हमैं कफन करि क्रिया पधारौ" ॥
सुनि यह अति दृढ़ बचन महिषि निज नाथहिँ जान्यौ ।
कछु सुभाव कछु स्वर कछु आकृति सौं पहिचान्यौं ॥७८॥

परी पायँ पर धाइ, फूटि पुनि रोवन लागी ।
औरहु भई अधीर अधिक आरति जिय जागी ॥
कह्यौ हुचकि "हा नाथ ! हमैं ऐसैा बिसरायौ ।
कहाँ हुते अब लौं कबहूँ नहिं बदन दिखायौ ॥ ७९ ॥

हाय आपने प्रिय सुत की यह दसा निहारौ ।
लूटि गईं हम हाय करहिं अब कहा उचारौ" ॥
सुनि भूपति गहि सीस उठाइ बिबिध समुझायौ ।
"प्रिये न छाँड़ौ धैर्य लखौ जो दैव लखायौ ॥ ८० ॥

अब बिलंब कौ समय नाहिं चेतौ मत रोवौ ।
भोर होनही चहत उठौ अवसर जनि खोवौ ॥
कोउ इत उत तैं आनि कहूँ पहिचानि जु लैहै ।
इक लज्जा बचि रही अहै सोऊ चलि जैहै ॥ ८१ ॥

चलौ हमैं दै कफन क्रिया करि भौन सिधारौ ।
सुनौ बीर-पत्नी ह्वै धीरज नाहिं बिसारौ" ॥
यह सुनि सैब्या कह्यौ बिलखि अतिसय मन माहीं ।
"नाथ हमारे पास हुतौ बस्तर कोउ नाहीं ॥ ८२ ॥

अंचल फारि लपेटि मृतक फूंकन ल्याई हैं ।
हा हा ! एती दूर बिना चादर आई हैं ॥
दीन्हैं कफनहिं फारि लखहु सब अंग खुलत हैं ।
हाय ! चक्रवर्ती कौ सुत बिन कफन फुकत है" ॥ ८३ ॥

कह्यौ भूप "हम करहिँ कहा हैँ दास पराए।
फुकन देन नहिँ सकत मृतक बिन कर चुकवाए॥
ऐसे ही अवसर मैँ पालन धर्म काम है।
महा बिपति मैँ रहै धैर्य सोई ललाम है॥ ८४॥

बेँचि देह हूँ जिहिँ सत्यहिँ राख्यौ, मन ल्याऔ।
इक टुक कपड़े पर, तेहिँ जनि आज छुड़ाऔ॥
फाड़ि कफन तैँ अर्ध बसन कर बेगि चुकाऔ।
देखौ चाहत भयौ भोर जनि देर लगाऔ"॥ ८५॥

सुनि महिषी बिलखाइ कफन फारन उर ठायौ।
पै ज्यौँहीँ उत "जो आज्ञा" कहि हाथ बढ़ायौ॥
त्यौँहीँ एकाएक लगी काँपन महि सारी।
भयौ महा इक घोर सब्द अति बिस्मयकारी॥ ८६॥

बाजे परे अनेक एकही बेर सुनाई।
बरसन लागे सुमन चहूँ दिसि जय-धुनि छाई॥
फैलि गई चहुँ ओर बिज्जु कैसी उँजियारी।
गहि लीन्ह्यौ कर आनि अचानक हरि असुरारी॥ ८७॥

लगे कहन दृग बारि ढारि "बस महाराज बस।
सत्य-धर्म की परमावधि ह्वै गई आज बस॥
पुनि-पुनि काँपति धरा पुन्य-भय लखहु तिहारे।
अब रच्छहु तिहुँ लोक मानि मन बचन हमारे"॥ ८८॥

करि दंडवत प्रनाम कह्यौ महिपाल जोरि कर।
"हाय! हमारे काज कियौ यह कष्ट कृपा कर" ॥
एतोही कहि सके बहुरि नृप-गर भरि आयौ।
तब सैब्या सौं नारायन यह टेरि सुनायौ ॥ ८९ ॥

"पुत्री अब मत करौ सोच सब कष्ट सिरायौ।
धन्य भाग्य हरिचंद भूप लौं पति जो पायौ" ॥
रोहितास्व की देह ओर पुनि देखि पुकार्यौ।
"उठौ भई बहु बेर! कहा सोवन यह धार्यौ?" ॥ ९० ॥

एतौ कहतहिँ भयौ तुरत उठि कै सो ठाढ़ौ।
जैसैं कोऊ उठत बेगि तजि सोवन गाढ़ौ ॥
लग्यौ चकित ह्वै चारहुँ ओर बिस्मय देखन।
कबहुँ मातु अरु कबहुँ पिता कौ बदन निरेखन ॥ ९१ ॥

नारायन कौं लखि प्रनाम पुनि सादर कीन्ह्यौ।
मात पिता के बहुरि धाइ चरननि सिर दीन्ह्यौ ॥
अजगुत आनँद औ करुना पुनि प्रेम समाए।
दंपति सके न भाषि कछू दृग आँसु बहाए ॥ ९२ ॥

सत्य, धर्म, भैरव, गौरी, सिव, कौसिक सुरपति।
सब आए तिहिँ ठाम प्रसंसा करत जथामति ॥
दंपति पुत्र समेत सबहिँ सादर सिर नायौ।
तब मुनि बिस्वामित्र दृगनि भरि बारि सुनायौ ॥ ९३ ॥

"धन्य भूप हरिचंद लोक-उत्तर जस लीन्ह्यौ।
कौन सकत करि महाराज जैसौ ब्रत कीन्ह्यौ॥
केवल चारहु जुग मैं तव जस अमर रहन हित।
हम यह सब छल कियौ छमहु सो अति उदार चित॥ ९४॥

लीजै संसय त्यागि राज सब आहि तिहारौ"।
कह्यौ धर्म तब "हाँ हमकौं साखी निरधारौ"॥
बोलि उठ्यौ पुनि सत्य "हमैं दृढ़ करि धार्‌यौ जो।
पृथ्वी कहा त्रिलोक राज सब है ताही कौ"॥ ९५॥

गद्गद स्वर सौं सम्हारि बहुरि बोले त्रिपुरारी।
"पुत्र! तोहिं दै कहा लहैं हमहूँ सुख भारी॥
निज करनी हरि कृपा आज तुम सब कछु पायौ।
ब्रह्मलोकहूँ पै अबिचल अधिकार जमायौ॥ ९६॥

तदपि देत हम यह असीस 'कुल-कीर्ति तिहारी।
जब लौं सूरज चंद रहैं तिहुँ पुर उँजियारी॥
तव सुत रोहितास्व हूँ होहि धर्म-थिर-थापी।
प्रबल चक्रवर्त्ती चिरजीवी महा प्रतापी'"॥ ९७॥

तब अति उमगि असीस दीन्हि गौरी सैब्या कौं।
"लक्ष्मी करहि निवास तिहारैं सदन सदा कौं॥
पुत्रबधू सौभाग्यवती सुभ होहि तिहारी।
तव कीरति अति बिमल सदा गावैं सुर-नारी॥ ९८॥

यह असीस सुनि दंपति कौँ दंपति सिर नायौ।
तैसहिँ भैरवनाथ बाक मैँ बाक मिलायौ॥
"औ गावहिँ कै सुनहिँ जु कीरति बिमल तिहारी।
सो भैरवी-जाचना सौँ नहिँ होहिँ दुखारी" ॥ ९९ ॥

देव-राज तब लाज सहित नीचे करि नैननि।
कह्यौ भूप सौँ हाथ जोरि अतिसय मृदु बैननि॥
"महाराज यह सकल दुष्टता हुती हमारी।
पै तुमकौँ तौ सोऊ भई महा उपकारी ॥ १०० ॥

स्वर्ग कहै को? तुम अति श्रेष्ठ ब्रह्म-पद पायौ।
अब सब छमहु दोष जो कछु हमसौँ बनि आयौ॥
लखहु तिहारे हेत स्वयं संकर बरदानी।
उपाध्यायहै बने बटुक नारद मुनि ज्ञानी ॥ १०१ ॥

बन्यौ धर्म आपहिँ तुम हित चंडाल अघोरी।
बन्यौ सत्य ताकौ अनुचर यह बात न थोरी॥
बिके न तुम नहिँ भए दास यह उर निरधारौ।
हरि-इच्छा सौँ इहिँ बिधि बाढ़्यौ सुजस तिहारौ" ॥ १०२ ॥

बहुरि कह्यौ बैकुंठ-नाथ नृप हाथ हाथ गहि।
"जो कछु इच्छा होहि और सो माँगहु बेगहि" ॥
कह्यौ जोरि कर भूप "आज प्रभु दरस तिहारे।
सकल मनोरथ भए सिद्ध इक संग हमारे ॥ १०३ ॥

तद्यपि माँगत यह बर आयसु पाइ तिहारी।
तव प्रसाद बैकुंठ लहै सब प्रजा हमारी" ॥
"एवमस्तु" कहि कह्यो बहुरि हरि बिपति-बिदारन।
"अवधपुरी के कीट पतंगहु लौं तुव कारन ॥ १०४ ॥

पाइ सकत हैं परम धाम कछु संसय नाहीं।
ऐसेहिं पुन्य-प्रताप-पुंज राजत तुम माहीं ॥
पै एतोही दिये तोष मन नाहिँ हमारे।
कहहु औरहू जो कछु मन मैं होहि तिहारे" ॥ १०५ ॥

यह सुनि गद्गद स्वरनि कह्यौ महिपाल जोरि कर।
"करुनासिंधु सुजान महा आनँद-रत्नाकर ॥
अब कोउ इच्छा रही होहि मन माहिँ कहैं तौं।
पै तौ हूँ यह होहि सुफल बर बाक्य भरत कौ ॥ १०६ ॥

सज्जन कौँ सुख होइ सदा हरिपद-रति भावै।
छूटैं सब उपधर्म सत्व निज भारत पावै ॥
मत्सरता अरु फूट रहन इहिँ ठाम न पावै।
कुकबिनि कौ बिसराइ सुकबि-बानी जग गावै" ॥ १०७ ॥

बोले हरि मुद मानि "अजहुँ स्वारथ नहिँ चीन्ह्यौ।
साधु साधु हरिचंद जगत हित मैं चित दीन्ह्यौ ॥
इहि जुग तव कुल राज्य माहिँ ह्वैहै ऐसो ही।
तुम्हैं देत सकुचाहिँ न बर माँगौ कैसो ही" ॥१०८॥

यौं कहि पत्नी संग नृपहिँ नर-अंगनि धारे।
रोहितास्व कौ सौंपि राज्य सब धर्म सहारे।।
निज बिमान बैठाइ बेगि बैकुंठ पधारे।
भई पुष्पवर्षा सब जय जय सब्द उचारे।।१०९।।

श्रीकैलास बिहाइ आइ जहँ बसत पुरारी।
गिरिजा हूँ सुख लहति चहत आनँद-बन भारी॥
हाट-बाट के ठाट लखि दोउ बालक जोहैं।
हरित भरित लहि भूमि झूमि नंदीगन मोहैं॥
तिहिं कासी की करि बंदना ताही कौ बरनन करौं।
रज ध्यान सिद्ध अंजन समुझि हरषि हृदय आँखिनि धरौं॥१॥

परम रम्य सुखरासि कासिका पुरी सुहावनि।
सुर - नर - मुनि - गंधर्व - यच्छ - किन्नर-मन-भावनि ॥
संभु सदासिव बिस्वनाथ की अति प्रिय नगरी।
बेद पुराननि माँहिँ गनित गुनगन मैँ अगरी ॥१॥

तीन लोक दस-चार भुवन तैँ निपट निराली।
निज त्रिसूल पर धारि संभु जो जुग-जुग पाली ॥
जाके कंकर मैँ प्रभाव संकर कौ राजै।
जम-किंकर जिहिँ जानि भयंकर दूरहि भाजै ॥२॥

जामैँ तजत सरीर पीर जग जनम-मरन की।
छूटति बिनहिँ प्रयास त्रास जम-पास परन की ॥
जामैँ धारत पाय हाय करि कूटत छाती।
पातक-पुंज परात गात के जनम सँघाती ॥३॥

जाके गुन गंभीर-नीर-निधि के तट ही थल।
लुठत पुंज के पुंज मंजु मुकती मुकताहल ॥
पै जाके बासी उदार चित सुकृति सभागे।
लघु बराटिका सम समझत निज आनँद आगे ॥४॥

सुचि सुरराज-समाज जाहि सेवन कौँ तरसत।
दरस परस लहि सरस आँस आनँद के बरसत ॥
ब्रह्मा बिष्नु महेस सेस निज वैभव भूले।
धरि धरि बेस असेस जहाँ बिचरत सुख फूले ॥५॥

सुठि सुढार त्रिपुरारि पिनाकाकार बसी है।
उत्तर बरुना औ दक्खिन कौ कोट असी है॥
उत्तर-बाहिनि गंग प्रतिंचा प्राची दिसि बर।
उन्नत मंदिर मंजु सिखर जुत लसत प्रखर सर॥ ६॥

बम-बम की हुंकार धनुष-टंकार पसारै।
जाकौ धमक-प्रहार पापगिरि-हार बिदारै॥
जिहि पिनाक की धाक धरामंडल मैं मंडित।
जासौं होत त्रिताप-दाप त्रिपुरा-सुर खंडित॥ ७॥

घेरी उपवन बाग बाटिकनि सौं सुठि सोहै।
ज्यौं नंदन-बन बीच बस्यौ सुरपुर मन मोहै॥
बापी कूप तड़ाग जहाँ तँह बिमल बिराजैं।
भरे सुधा सम सलिल रसिकजन हिय लौं भ्राजैं॥ ८॥

धवल धाम अभिराम अमित अति उन्नत सोहैं।
निज सोभा सौं बेगि बिस्वकर्मा मन मोहैं॥
ध्वजा पताका तोरन सौं बहु भाँति सजाए।
चित्रित चित्र बिचित्र द्वार पर कलस धराए॥ ९॥

हाट बाट घर घाट घने अति बिसद बिराजैं।
गुदड़ी गोला गंज चारु चौहट छबि छाजैं॥
नीकी निपट नखास सुघर सट्टी सब सोहैं।
कल कटरा बर बार मंजु मंडी मन मोहैं॥ १०॥

चारहु बरन पुनीत नीतजुत बसत सयाने।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सद्गुन सरसाने॥
जातिधर्म कुलधर्म मर्म के जाननिहारे।
मर्यादा-अनुसार सकल आचार सुधारे॥ ११॥

सब बिधि सबहिँ सुपास सुलभ कासी-बासिनि कौँ।
निज-निज रुचि अनुसार लहहिँ सब सुख-रासिनि कौँ॥
असन बसन बर बाम धाम अभिराम मनोहर।
ज्ञान गान गुन मान सकल सामग्री बर॥ १२॥

लहहिँ साधु सतसंग ज्ञानरत बिमल बिबेकहिँ।
विद्यावाही पढ़हिँ ग्रंथ गुनि गूढ़ अनेकहिँ॥
पावहिँ सद उपदेस धर्म-रत कर्म सुधारैँ।
जोगी जंगम साधि जोग जप तप मन मारैँ॥१३॥

धनरत करि ब्यापार बिबिध धन-भार भरावत।
सिल्पकार अति निपुन कला कौ सार सरावत॥
कामिनि हूँ कौँ कुपथ चलत नहिँ खलत अँधेरी।
दीपतिँ दामिनि सरिस बार-कामिनि बहुतेरी॥१४॥

कहुँ सज्जन द्वै चार चारु हरि-जस-रस राँचे।
पुलकित तन मन मुदित सील सद्गुन के साँचे॥
भक्तिभाव भरपूर धूर भव-बिभव बिचारे।
भगवत-लीला-ललित-मधुर-मदिरा मतवारे॥१५॥

हरि-हर-गुन-गन गूढ़ उमगि अति गुनत गुनावत।
पावन चरित अमंद दंदहर सुनत सुनावत॥
पाप-ताप के दाप रह्यौ जो तपि महि हीतल।
प्रेम-बारि दृग ढारि करत ताकौं सुचि सीतल॥१६॥

कहुँ परम्हंस प्रसंस बंस मन-मानसचारी।
जीवन मुक्ति महान मंजु मुकता अधिकारी॥
उज्ज्वल प्रकृति प्रवीन हीन-भव-पंक पच्छधर।
जगज्जाल-जंजाल-गहन-बन अगम पारकर॥१७॥

गौरव - गूढ़ाचल - उतंग - बर - शृंग - बिहारी।
सुभ गति बिमल बिबेक एकरस दृढ़-ब्रत-धारी॥
दलन मोह-तम-तोम भासकर भावत नीके।
बिसद बिशुद्धानंद रूप भूषन पुहुमी के॥१८॥

सिखा सूत्र औ दंड कमंडल सब करि न्यारे।
दिव्य सरीर सतोगुन जनु सोहत तन धारे॥
द्वैत तथा अद्वैत बिसिष्टाद्वैत प्रचारत।
ब्रह्म जीव बर छीर नीर कौ न्याव निवारत॥१९॥

कहुँ पंडित सु उदार बुद्धि-धर गुन-गन मंडित।
सास्त्र सस्त्र संग्राम करन सुरगुरु-मद खंडित॥
बिद्या-बारिधि मथन माहिँ मंदर अति नीके।
कठिन करारे बेद बिदित ब्यौहार नदी के॥२०॥

दलन बिपच्छिनि-पच्छ माहिँ अति दच्छ राम से।
नैयायिक अति निपुन बेद-बेदांत धाम से॥
षट सास्त्रनि कौ गूढ़ ज्ञानधर सिवकुमार से।
बैयाकरन बिदग्ध सुमति बारिधि अपार से॥२१॥

ज्योतिषसुधा मयूष-अगार सुधाकर बर से।
पानिनि ग्रंथित सूत्र बिभूषित दामोदर से॥
फलादेस मरजाद मृदुल अवधेस सरीखे।
गननागन मैं गुरु गनेस से अति मति तीखे॥२२॥

आयुर्वेद प्रभेद परम भेदी गनेस से।
रस-प्रयोग आचार्य चारुमति त्रिंबकेस से॥
सुरुचि सौम्य साहित्य सलिलधर गंगाधर से।
रोचक कवितारत्न रुचिर गृह रतनाकर से॥२३॥

गौर गात्त अति गोल उदर त्रिबली जुत भावै।
परम तेज कौ सदन बदन मन मोद बढ़ावै॥
गोखुर-परिमित सिखा ग्रंथिजुत सिर छबि छाजै।
सुंदर भाल बिसाल भव्य अति तिलक बिराजै॥२४॥

सुभ्र जज्ञउपवीत मँज्यौ मेले कल काँधे।
कोरदार दुपटा काँखा सोती करि बाँधे॥
नागपूर की नवल धवल धोती कटि धारे।
बैठे गादी पैँ उसीस के कछुक सहारे॥२५॥

सिष्य पाँति कौं गूढ़ग्रंथ बहु भाँति पढ़ावत।
अन्वयार्थ सब्दार्थ भरे भावार्थ बतावत॥
धर्म कर्म ब्यवहार बिषय जो पूछन आवैं।
तिनकौं करहिँ प्रबोध भली बिधि बोध बढ़ावैं॥२६॥

कहुँ पौरानिक सूत सरिस बक्ता ग्रंथनि के।
यथारीति मर्मज्ञ कथा पावन पंथनि के॥
भारत भाव अमोल महाधन रमानाथ से।
रामचरितमानस निबंध बंधन सुगाथ से॥२७॥

लटपट लपट्यौ सीस फबत फेटा जरतारी।
केसर रोचन तिलक भाव भावत रुचिकारी॥
गोरे गात सुहात चारु चौकस चौबंदी।
लोचन ललित लखाति ललक लीला आनंदी॥२८॥

सोहति बच्छस्थल बिसाल फूलनि की माला।
बाम कंध सों ढरि जानुन सों दब्यौ दुसाला॥
पोथी-बेठन खोलि चारु चौकी पर धारी।
धूप दीप फल फूल द्रव्य की सजी पँत्यारी॥२९॥

बालमीकि अरु ब्यास बदित बानी बर बाँचत।
भव्य भाव बहु श्रोतनि के उर अंतर खाँचत॥
इक-इक भावनि के बहु बिधि पुष्ट करन कौं।
कथा प्रसंग अनेक कहत भ्रमजाल दरन कौं॥३०॥

हरि-कीर्तन की कहूँ मंडली सुघर सुहाई।
हरि-हर-गुन-गन-गान बितान तनति सुखदाई॥
काम क्रोध मद मोह दनुजदल दलन सदाहीँ।
रामचंद्र से बचन-बान साधक जिहि माहीँ॥३१॥

चटकीली अति पाग कुसुम रँग सिर पर बाँधे।
साजे बागा अंग द्रवित दुपटा कल काँधे॥
दिब्य देह बर बदन ललित लोचन अरुनारे।
भाल बिसाल सुलाल तिलक कुंकुम कौ धारे॥३२॥

भगवत-लीला-गान तानपूरा कर लीन्हे।
करत बिबिध मंजीर मृदंगहु कौ संग दीन्हे॥
करि-करि बर ब्याख्यान बहुरि भावहिँ दरसावैँ।
उदाहरन दृष्टांत आनि बहु रस सरसावैँ॥३३॥

श्रोतनि की भरि भीर रही चारिहु दिसि भारी।
राव रंक युव बृद्ध मूर्ख पंडित नर-नारी॥
पै कोऊ कहत न बैन नैन बक्तादिसि कीन्हैँ।
तन्मय ह्वै सब सुनत मौन मुद्रा मुख दीन्हैँ॥३४॥

अग्निहोत्र की लपट झपटि पातक कहुँ जारै।
स्वाहा ध्वनि की दपट रपटि कुल-कुमति बिदारै॥
सब सुरराज-समाज सदा जासौँ सुख पावै।
प्रजा लहै कल्यान बारि बादर बरसावै॥३५॥

लसत धाम अभिराम दिव्य गोमय सौं लीपे।
कुंकुम चंदन चारु चून ऐपन सौं टीपे॥
तिल तंदुल यव पात्र घने घृत भांड भराए।
असन बसन साहित्य सकल जिन माहिँ धराए॥३६॥

गोमय औ पलास समिधा कहुँ सूखत सोहैँ।
कहूँ दर्भ के मूठ श्रुवा लटकत मन मोहैँ॥
बँधी बरोठे बीच बत्सजुत सुरभि सुहाई।
सुंदर सुघर सुसील स्वच्छ सुभ सुख सरसाई॥३७॥

जाके अंगनि बीच बसति देवनि की श्रेनी।
सेवति जाहि उमाहि सुघर घरनी सुखदेनी॥
रोचन रंजित पुच्छ रजत शृंगनि चढ़ि चमकै।
परी पीठि पर लाल झूल झबिया-जुत झमकै॥३८॥

बैठे होता दिव्य देह बर हवनकुंड पर।
भाल बिसाल त्रिपुंड धरे घन सिखा मुंड पर॥
पहिरे परम पुनीत पाटमय पाढ़र धोती।
ओढ़ि उपरना अमल अच्छ अति काँखासोती॥३९॥

मौंजी औ उपवीत अच्छ कंठा कल धारे।
बेद बिदित ब्यौहार मर्म के जाननिहारे॥
करत यथाबिधि तृप्त हव्यबाहन कौं रुचि करि।
साधत सब संसार हेत सुखसार सुमिरि हरि॥४०॥

आवत अभ्यागत अनेक मधुकर-व्रतधारी।
पंच भवन भ्रमि पंचभूत पोषन अधिकारी॥
आँचल औ कौपीन कसे कटि कर झोली गहि।
लै मधुकरी प्रथम जात सो नारायन कहि॥४६॥

बैठि साधु द्वै चार जहाँ तहँ सुचि मतिवारे।
बदन तेज की छटा जटा सिर सुंदर धारे॥
कोऊ काषायी बसन पहिरि कोऊ सिमिरिष रंगी।
सज्जन सुघर सुजान सीलसागर सतसंगी॥४७॥

कोउ हरि-लीला कहत सुनत पुलकत पुलकावत।
कोऊ न्याय बेदांत बरनि मुलकत मुलकावत॥
कोउ सितार करतार मेलि हरि-गुरु-गुन गावत।
कोउ उमंग सौं संग संग ढोलक ढमकावत॥४८॥

संन्यासिनि के कहुँ महान मंजुल मठ राजैं।
दरदलान कोठे जिनमैं चहुँ दिसि छबि छाजैं॥
छत छतरी बर बंद खंभ गेरू रँग राखे।
अलकतरे रँग कल किवार सित सोहत पाखे॥४९॥

बट पीपर औ मौलसिरी के बिटप सुहाए।
सुखद सुसीतल छाँह देत अति अजिर लगाए॥
जिनके नीचे लसत लिए कर दंड कमंडल।
बिसद बिराजत जम-अदंड दंडिनि कौ मंडल॥५०॥

आँचल औ कौपीन धरे काषाय रँगाए।
भाल बिसाल त्रिपुंड मुंड सह सिखा मुँड़ाए॥
सिव हर-हर धुनि धुनत गुनत सिव-गुन-गन नीके।
कीट भृंग के न्याव भए सिव रूप मही के॥५१॥

महामंत्र कोउ भनत कोऊ नारायन टेरत।
कोऊ बेद बेदांत बदित सिद्धांत निवेरत॥
करि अनुराग सभाग कोऊ गुरु-चरन-तरनि पर।
करत दंडवत दौरि दंड निज धारि धरनि पर॥५२॥

धर्म सरूप उदार भूप तहँ छेत्र चलावत।
तामैँ इच्छा पूरि भूरि भिच्छा सब पावत॥
साहूकार उदार सेठ श्रद्धा सरसाए।
राजा राउत राव भक्ति के भाव भराए॥५३॥

कबहुँ तहाँ बर बेष भूरि भोजन ठनवावत।
रसना-रंजन रुचिर बिबिध ब्यंजन बनवावत॥
सकल जथा करि बिनय यथाबिधि न्यौति बुलावत।
पुलकित अंग उमंग संग देखत उठि धावत॥५४॥

पग पखारि कर ढारि बारि सादर बैठारत।
स्वजन-सहित कर ब्यजन लिये स्रम स्वेद निबारत॥
आत्म-ज्ञान गंभीर नीर निधि थाहनहारे।
पंच तत्त्व कौ तत्त्व भली बिधि ठाहनहारे॥५५॥

पावन परम समाज जुरयौ तकि पातक हहरैं।
दुख दारिद दुर्भाग्य दुरित दुर्मति टरि टहरैं॥
सोभा सुभग ललाम लाहु लोचन कौं भावत।
इत उत तैं बहु लोग ललकि दरसन कौं आवत॥५६॥

पातल दोने दिब्य बिमल कल कदली दल के।
परत पाँति के पाँति स्वच्छ धोए सुचि जल के॥
भाँति भाँति के जात पुनीत पदारथ परसे।
सुंदर सोंधे स्वादु स्वच्छ सब रस सौं सरसे॥५७॥

वासुमती कौ भात रमुनिया दाल सँवारी।
कढ़ी पकौरी परी कचौरी मोयनवारी॥
दधिभीने बर बरे बरी सह साग निमोने।
पापर अति परपरे चने चरपरे सलोने॥५८॥

नीबू आम अचार अम्ल मीठे रुचिकारी।
चटनी चटपट अरस सरस लटपट तरकारी॥
मोदक मोतीचूर जालजुत मालपुवा तर।
मेवामय श्रीखंड केसरिया खीर मनोहर॥५९॥

हर हर हर हर महादेव धुनि धाम मढ़ावत।
कृपा मंद मुसकानि आनि आनंद बढ़ावत॥
पंच कवल करि अँचै आचमन रुचि उपजावत।
अति आमोद प्रमोद भरे भिच्छा सब पावत॥६०॥

अंचल छाँधे सहित पाय काषाय रँगाए।
निज निज आसन ओर चलत सुठि सुख सरसाए ॥
सो सोभा सुभ चहत बनै कछु कहत बनै ना।
मनहु अमंगल जीति चली मंगल की सैना ॥६१॥

कहूँ सकल सुखधाम धर्मसाले मनभाए।
सब सुबिधा कैाँ साधि ब्यौंत सैाँ बिसद बनाए ॥
चहुँ दिसि दीसत दिब्य रचे लघु दीरघ कोठे।
जिनके आगे अति बिसाल बर बने बरोठे ॥६२॥

एक ओर चौकन की राजति रुचिर पँत्यारी।
गोमय माटी मृदुल मेलि सुचि स्वच्छ सँवारी ॥
आँगन माहिँ अनूप कूप सुंदर सुखदाई।
जाकी जगति सुरूप मनहु जलभूप बनाई ॥६३॥

बिद्यारत बर बिप्र ब्रह्मचारी ब्रत बाहे।
बसत तहाँ प्रमुदित प्रसन्न उन्नति उत्साहे ॥
बहु बिधि कष्ट उठाय ठाय निज इष्टहिँ साधत।
यथालाभ लहि असन बसन बानी आराधत ॥६४॥

बड़े भोर हठि उठत मोरि मुख सुख निद्रा सैाँ।
जद्यपि पाये पूर्व रात्रि हू दुख निद्रा सैाँ ॥
सकल सैाच करि तुरत फुरत गंगा दिसि धावत।
तहँ अन्हाय निर्बाहि नित्य निज-निज थल आवत ॥६५॥

सघन सिखा सुठि ग्रंथि भाल पर तिलक लगाए ।
हाथ सुपावन पाथ पूरि लोटा लटकाए ॥
कटि धोती पनरँगी धरें गमछा कल काँधे ।
उतर्यौ बसन पछारि गारि आसन मैं बाँधे ॥६६॥

पुनि पुंजनि के पुंज पधारत पाठ पढ़न कौं ।
बिद्याबाट बिराट बिकट बिय बेगि बढ़न कौं ॥
बहु बिधि बाद बिबाद बिनोद करत मनभाए ।
पोथी चोंगा माहिँ राखि निज काँख दबाए ॥६७॥

कोऊ गुरु-गृह-दिसि कोऊ पाठसाला कौं धावत ।
निज-निज इच्छा सरिस सास्त्र सिच्छा तहँ पावत ॥
पढ़ि-पढ़ि परम प्रसन्न पलटि पुनि डेरनि आवत ।
आपस मैं बतरात बताई बात लगावत ॥६८॥

तब सब यथासँजोग उदर-पोषन बिधि बाँधत ।
कोउ छेत्रनि दिसि चलत धाम कोउ निज कर राँधत ॥
कोउ कहुँ न्यौता पाइ चलत अति चपल चाह सौं ।
आनन अन्न प्रसन्न-बदन कोउ उठि उछाह सौं ॥६९॥

इहिँ बिधि सुबिधा बहु बिधान सौं बिबिध लगावत ।
त्रितिय जाम बिस्राम भोजनादिक करि पावत ॥
जहँ तहँ जित तित जाइ आइ बतराय बैठि उठि ।
करि ठठोलि हँसि बोलि बितावत सेष दिवस सुठि ॥७०॥

अथवत भानु प्रमान आनि सब जुरत तहाँ पुनि ।
संध्याबंदन करत यथाबिधि सुमिरि देव-मुनि ।।
करि-करि कछु जलपान जहाँ तहँ दीपक धरि-धरि ।
भरि भरि सब जलपात्र पढ़न बैठत कहि हरि-हरि ।।७१।।

कोउ न्याय वेदांत गुनत कोउ गणित लगावत ।
कोऊ काव्य साहित्य संहिता कोउ सुरझावत ।।
कोउ बाँधे धुनि धमकि पढ़े पाठहिँ परिपोषत ।
अमरसिंह को कोष सूत्र पानिनि के घोषत ।।७२।।

कहुँ धनिकनि के धवल धाम अभिराम सुहाए ।
चौखँड पँचखँड सप्तखंड बर बिसद बनाए ।।
गृह बाटिका समेत सुघर सुंदर सुखदाई ।
जिनकी रचना रुचिर निरखि मति रहति लुभाई ।।७३।।

बारहदरी बिसाल अपर घर बिबिध सँवारे ।
तिदरे औ चौदरे पँचदरे परम उज्यारे ।।
दुहरे दिव्य दलान रचे पाषान खंभ पर ।
आँगन परम प्रसस्त चारु प्राकार सबिस्तर ।।७४।।

चित्रित चित्र बिचित्र चित्रसारी रँगवारी ।
उन्नत अनिल अवास अटित आकास अटारी ।।
दुहरे तिहरे सिसिर सुखद हम्माम मनोहर ।
ग्रीषम हित सीरे उसीर गृह तहखाने बर ।।७५।।

देस काल उपयोग जोग सब रुचिर रँगाए।
लता सुमन पसु पच्छि चित्र सौं चारु चिताए॥
सब सुबिधा कौं सोधि सजे सब सुघर सुहाए।
बिबिध भाँति बहु मूल्य साज सौं अति मन भाए॥७६॥

झाड़ कमल कल बिमल चारु चित्रित बहुरंगी।
बिसद बैठकी बृच्छ स्वच्छ मंजुल मिरदंगी॥
सुर नर मुनि के चारु चित्र चख आनँद-दाई।
फूलदान चंगेर महक जिन सौं उठि छाई॥७७॥

पँचरँग परदे पटापटी के पाट सँवारे।
चारु चीन की चिकैं चित्र जिन पर अति प्यारे॥
छीर-फेन सम स्वच्छ बिछायत अच्छ बिछाई।
परम नरम गादी मखमल की ललित लगाई॥७८॥

गिलिम गलीचे कल कालीन पीन पारस के।
सुघर सोजनी नव नमदा हरता आरस के॥
छोटे बड़े उसीस धरे दस-बीस सँवारे।
जिनपैं उठकत होत चैन लहि नैन घुमारे॥७९॥

करत सुगंधित सदन अगर बाती कहुँ सोहैं।
कहुँ फूलनि की ललित लरैं लटकत मन मोहैं॥
कहुँ स्यामा कहुँ अगिन कोकिला कहुँ कल गावैं।
कहुँ चकोर कहुँ कीर सारिका सब्द सुनावैं॥८०॥

कमला-कृपा-कटाच्छ लच्छ तहँ यच्छराज से।
सुघर सखा सुचि दासि दास लै सुर-समाज से॥
वैभव भव प्रभुता नरेस प्रभु नारायन से।
संपति सलिल अपार सार मोती बिधुगन से॥८१॥

माधौलाल समान मान-धन-मधु सौं छाके।
कृस्नचन्द से सौम्य प्रीति-भाजन कमला के॥
साहूकार पहार धरे धन के गिरिधर से।
दाऊ से ब्यवहार-दच्छ सुख संपति करसे॥८२॥

सुघर सोम से भाल बिभूषन वैभव भव के।
रामचंद से सहज करन कारज गौरव के॥
नित नव उत्सव ठानि मानि आनँद मनभाए।
बिलसत बिबिध बिलास हास सुखरासि सुहाए॥८३॥

षट् रस व्यंजन तुष्टि पुष्टिदायक स्रमहारी।
लेह पेय अरु चर्व चोष रसना रुचिकारी॥
बासित बर बरास मृगमद केसर गुलाब सौँ।
सजे रजतमय बासन मैं सब सुघर फाब सौँ॥८४॥

माखन मिश्री मंजु मधुर मेवा मनमाने।
देस देस के फल बिसेस वहु व्यय करि आने॥
हँसमुख चतुर सुआर परोसत कहि मृदु बानी।
परत दीठि जिहिँ भरत पाकसासन मुख पानी॥८५॥

बिबिध बसन बहुमोल लोल लोचनहिँ छकित कर।
झीन पीन रंगीन स्वेत सादे फुलवर बर॥
पाट टसर सन सूत ऊन सौं बिरचित नीके।
चारु सचिक्कन पोत मनहुँ गाभा कदली के॥८६॥

साँतिपूर मदरास नागपुर की कल धोती।
द्रविण पाटमय पाढ़ निपुनता की जनु सोती॥
ढाके की मलमल सु डोरिया राधानगरी।
बिष्नुपूर मुरसिदाबाद पाटंबर पगरी॥८७॥

आजमगढ़ के चमचमात गलता अरु संगी।
कासी के बहुमूल्य बसन बहु बिधि बहुरंगी॥
अतलस चिनियापोत बासकट तास ताफता।
अमरू मसरू धूपछाँह कमखाब बाफता॥८८॥

सुघर जामदानी बर टाँड़े की टिकसारी।
चिकन लखनऊ रचित बेल अरु बूटनवारी॥
चारु चँदेली की चादर मंदील मनोहर।
जैपुर साँगानीर चीर छापे अति सुंदर॥८९॥

ललित लायचा दरियाई च्यौली पंजाबी।
तिब्बत के संबूर छाल रूसी संजाबी॥
साल दुसाले कलित कृपारामी कस्मीरी।
जिनके नेरैं जान सीत नहिँ सिसिर समीरी॥९०॥

चिलकी चिक्कन चारु चीर चीनी जापानी।
पाट पीठिवारी मखमल कोमल कासानी॥
भोटी गुदमे गहब नवल नमदे मुलतानी।
बगदादी कम्मल बनात सुंदर सुलतानी॥९१॥

भूषन दूषन रहित सुघरता सहित सँवारे।
रुचिर रजत सुठि स्वर्ण मंजु मुक्तामनि वारे॥
सादे सुथरे सुखद चारु चित्रित मनभाए।
हीराकट कल कटक काम अभिराम बनाए॥९२॥

ललित लखनऊ जयपुर मीना-मंडित सुंदर।
खुले बंद नगजटित बिबिध काँटे कुंदन पर॥
जिनकी जगमग ज्योति होति दारिद चखचौंधी।
कबहुँ भूलि तेहिँ ओर तकत जो करि मति औंधी॥९३॥

पद्मराग कुरुबिंद नीलगँधी मानिक बर।
स्वच्छ स्निग्ध समगात वृत्त गरुवे किरनाकर॥
ब्रह्म बदखसा औ तिब्बत महि के कल भूषन।
हैं जिनसौं अनुरक्त प्रीति परिपालित पूषन॥९४॥

बसरा सिंघल द्वीप अदन मुक्ता मर्यादी।
अमल सजल सित स्निग्ध वृत्त हरुवे आह्लादी॥
जलनिधि नातौ मानि जानि निज किरननि बोरें।
हिमकर कृपा कटाच्छ करत जिन निपट निहोरें॥९५॥

गरुए गोल सुडौल पीन ब्रन-हीन असीले।
पारस खाड़ी के प्रवाल अति लाल लसीले॥
मंगल बरन बिसाल बिसद मंगल-दुखहारी।
दरन अमंगल मूल महा-मुद-मंगलकारी॥९६॥

चिक्कन चिनकी चारु चटक रँग रोचक धानी।
छूट सहित गुरु स्निग्ध मंजु मरकत मुलतानी॥
चीनी चारु अमोल अमीचंदी ध्वज-धारन।
बुध-गृह-बाधा-बधन बिबिध बिषधर-बिष-बारन॥९७॥

पुष्पराग पृथु स्निग्ध स्वच्छ गुरु समघटवारे।
कर्निकार - कल - कुसुम - कांति - कोमल - किरनारे॥
जानि बिंध्य गुरु-भक्त खानि-संभूत सुहाए।
जिनसौं रहत प्रसन्न सदा सुरगुरु सुख-पाए॥९८॥

कुलिस एक-रस रुचिर ओज सो द्विगुनित दरसत।
तिहूँ जाति चहुँ बरन इंद्रधनु पँचरंग परसत॥
सुभ छकोन सप्तास्र-प्रभा-पूरित सुखदायक।
अष्ट फलक सौं फबित नवौ रत्नानि के नायक॥९९॥

बिसद बारितर तरल तड़प तीखे त्यौनारे।
मसृन मंजु स्फुट स्निग्ध स्वच्छ अति कठिन करारे॥
असुर - अस्थि - संभूत असुर - गुरु - कृपाधिकारी।
पन्ना पुहुमि गोलकुंडा के गौरवकारी॥१००॥

इंद्रनील-मनि कलित कृष्न आभा गर्भीले ।
इकछाया गुरु स्निग्ध स्वच्छ मृदु पिंडित डीले ॥
सुघर साम कसमीर धाम के सुघटित सुंदर ।
अमल अमोल अमंद मंद-ग्रह-द्वंद-मंदकर ॥१०१॥

गोमेदक गोमेद-रंग गुरु सुभग सजीले ।
स्वच्छ स्निग्ध समतल निर्दल चिक्कन चमकीले ॥
सिंघल द्वीप प्रदीप मलय महिमा बिस्तारन ।
जिनकौ जागत लाहु राहुग्रह-आहु-निबारन ॥१०२॥

असित सिताभा सहित स्वच्छ सम गुरु गुनपूरे ।
अभ्र सुभ्र सुचि रुचिर रेख रंजित अति रूरे ॥
वर बिराट कैकेय खानि के पानिप भीने ।
तिब्बत औ नैपाल भोट के खोट-बिहीने ॥१०३॥

सुभग सार्ध द्वै सूत सहित अति अहित-बिरोधी ।
दारिद-दरन दरेरि धरनि धृत संपति सोधी ॥
तरनि-किरन लहि बिबिध बरन वर धरन सुहाए ।
कुटिल केतु दुख दूर हेतु बैदूर बराए ॥१०४॥

तीखे तरल तुरंग बिबिध बहुरंग असीले ।
करत कुलंग कुरंग संग सब अंग सजीले ॥
बोटी बोटी फरकि उठत जो परमत चोटी ।
बदलि कनोटी कनमनात कर चहत चमोटी ॥१०५ ॥

चपल उठावत धरत पाय पुहुमी जनु तापी।
ग्रीवा पुच्छ उठाइ चलत जिमि नचत कलापी ॥
दाबत रान उरान करत ज्यौं बान चलाए।
उच्चैश्रवा समान सुघर सुभ सान चढ़ाए ॥१०६॥

बाजिनि के सिरताज तेज तरकी औ ताजी।
जो बातहुँ सौं बदत बेग-बिक्रम मैं बाजी ॥
सुंदर सुघर सुसील स्वामितर रुचि-अनुगामी।
जिनकी चाहत चाल चकत पच्छिनि के स्वामी ॥ १०७ ॥

बिसद बदखसानी बर बलखी बिदित बुखारी।
गरबी गुनगन माहिँ मंजु अरबी अनुहारी ॥
काबुल औ खंधार देस के बहु-मग-गामी।
पुष्ट सरीर सुधीर कोट कूदन मैं नामी ॥ १०८ ॥

कठिन काठियावार चुटीले के परिपोखे।
चंचल चपल चलाँक बाँकपन आँक अनोखे ॥
सुंदरता के ग्वैंड ऐंड सो पैंड चलैया।
जिनकी सुघर कनौटिनि बिच रुकि रहत रुपैया ॥ १०९ ॥

कच्छी कलित कमान पीठवारे सुभ लच्छी।
पग मग धरत अलच्छ जात अधरहिँ जनु पच्छी ॥
उन्नत ग्रीव नितंब पुच्छ गुच्छित मनभाई।
जिनके आगे सौं सवार नहिँ देत दिखाई ॥११०॥

बर बलोतरे औ कुलंग जंगल के जाए।
भक्खर के अति भव्य भाड़वाड़ी मनभाए॥
बैलर बिसद बिसाल काय बलगद बलसाली।
गुन गँभीर गौरंड देस के सुघर सुचाली॥१११॥

गिरिवर लाँघन कदमबाज टाँघन भोटानी।
जिनपै चलत सवार थार छलकत नहिँ पानी॥
बिततैँ डेढ़ी करनि करन टेढ़ी के टट्टू।
जो खुटपुट इमि अटत नटत जैसैँ नट लट्टू॥११२॥

अंग ढंग औ रंग भूरि भौँरी सुभ लच्छन।
सालिहोत्र मत सोधि लिए सब बिबिध बिचच्छन॥
जिनके सुभग प्रसंग माहिँ नामहु दोषन के।
लेन न उचित बिहाय भाय गुनगन पोषन के॥११३॥

चारि सुदीरघ अंग चारि लघु ललित सुहाए।
आयत चारि सुढार चारि सूच्छम मनभाए॥
ऊरधचारी चारि चारि अधगति गुन भीने।
अरुन बरन बर चारि चारि पुनि माँस बिहीने॥११४॥

स्वेत अरुन बर बरन पीत मनहरन सुहाए।
सुभ सारंग सुपिंगि नील मेचक मन-भाए॥
सबजे सुभग सुढार गहब गुलदार गुनीले।
चीनी सुरखे सुठि सुरंग गर्रे गरबीले॥११५॥

ललित लखौटे बलित कलित कुम्मैत करारे।
कुल्ले कठिन सरीर समुद अति जीवटवारे॥
अबलख लखिबैँ जोग सुभग सुंदर कल्यानी।
पँचकल्यान पुनीत अष्टमंगल मुददानी॥११६॥

गंगा जमुनी रजत साज सौँ सजित सुहाए।
जिनकी चमकनि चहत रहत रबि-बाजि चकाए॥
सादे सुथरे सुघर मंजु मीना मनि धारे।
कासी कटक सुरचित खचित हीराकटवारे॥११७॥

पूजी कलगी करनफूल कल हैकल सेली।
झाँझनि झबिया जाल सहित दुमची रुचि रेली॥
मृदु मखतूल मुकेस फूँदने फबत सुहाए।
यालनि की सुचि रुचिर चारु चोटिनि लटकाए॥११८॥

औ काहू पर कसी कलित काठी अँगरेजी।
दुहरी दिढ़ लागी लगाम रोकन हित तेजी॥
पुनि काहू पर सजे साज रूमी तुरकानी।
जिनमैँ कसे कुबूल जंघमूलनि सुखदानी॥११९॥

खुले थान तैँ थमत न थिरकत जमत जकंदत।
कौतुक लागे लोग लखत लोभत अभिनंदत॥
उच्चैश्रवा सिहात सान सजधज अवलोकत।
चमक दमक अरु तमक ताकि रबिहूँ रथ रोकत॥१२०॥

बिबिध यान बहु रंग ढंग के सुघर सजीले।
गाधी पखरी पीठि लगे लोने लचकीले॥
बने बंबई कलकत्ता कासी के नीके।
जिन पर चलत न हलत अंग रस-रंगरली के॥१२१॥

टमटम फिटन पालगाड़ी लैंडो सुखदाई।
बिसद् बैगनेट बर बहली रथ रुचि अनुयाई॥
पैनबेग अति मौन गौन मोटर मनभाए।
कला कलित गौरंड देस के दिब्य बनाए॥१२२॥

तामजान सुखपाल सुखद सुभ पिनस पालकी।
बक्रतुंड चंडोल चारु बहुमोल नालकी॥
सज्जित सुघर कहार कंदला कलित कसीले।
पदपाटव मैं निपुन सुखद-गति अति फुरतीले॥१२३॥

गजसालनि मैं त्यौं मतंग झूमत मतवारे।
मकने मंजुल एकदंत सुभ दिब्य दँतारे॥
ऐरावत-कुल-कलस दिग्गजनि के श्रमहारी।
उन्नत-भाल बिसाल-काय बल-बिक्रम-धारी॥१२४॥

सजल जलद बर बरन कलिंदहु के मदहारी।
जिनके अंग अनूप रूप जग बिसमयकारी॥
कच्छप कैसे कलित-गंडमंडल मद-मंडित।
जिन पर मधुकर निकर मंजु गुंजत रस पंडित॥१२५॥

दर मुकलित कलबिंक नैन चल श्रौनि सुबिस्तर ।
अरुन बरन बर बिसद ओठ तालू मुख पुसकर ॥
सुंडाडंड बिसाल बृत्त सुभ ढार मनोहर ।
मनु कलिंद तैं गिरति कलिंदी धार धरनि पर ॥१२६॥

दिढ़ दीरघ दोउ दंत एक-सम सुघर सजीले ।
हेम कलित बर बलय-बलित चिक्कन चमकीले ॥
जुगल द्वैज द्विजराज बिभूषित बिज्जु छटा सौं ।
मानहु निकसे सुचि सावन की स्याम घटा सौं ॥१२७॥

पीन प्रलंबित बदन चारु चित्रित मनभाए ।
स्निग्ध सँवारे सीस उच्च चल सुभग सुहाए ॥
ग्रीवा गोल सुडौल लोल लाँबी लहकारी ।
गजपालनि सुखदानि भरनि रद सिर भर भारी ॥१२८॥

पीठिडंड कोदंड मांसमंडित दीरघ कल ।
सुढर ढार दोउ पच्छ ढरे मानहु कदली दल ॥
पुच्छ सुगुच्छित छोर कछुक पुहुमी सौं ऊँची ।
मनु अदभुत रस रूप लिखन की लेखन कूँची ॥१२९॥

रंभ खंभ के दंभ-दलन चहुँ पाय सुहाए ।
मनहु लदाऊ स्याम सिला मंडप के पाए ॥
अँगुरी बिसद बिसाल सुभग सम संख्य सघन बर ।
कमठ पीठि से उच्च गोल नख स्वच्छ सुबिस्तर ॥१३०॥

मदजल पुस्कर पौन सुभग सौरभ बगरावत।
मधुकर-निकर अथोर डोर जाकी लगि धावत॥
गति अति सुंदर सुघर जाहि जानत कोबिद जन।
जिहिँ अनुहरत सुहात मंद गवनी रवनीगन॥१३१॥

तीनि जाति के जे करिबर ग्रंथनि मैँ गाए।
सब सुभ लच्छन सहित स्वच्छ सोहत मनभाए॥
पुनि संकीरन बिबिध भाँति के मिस्रित लच्छन।
दूषन भूषन सोधि लिए मनबोधि बिचच्छन॥१३२॥

मृगा सु मंजुल गात लिए लघुता हरुवाई।
मदजल मैँ रुचि स्याम दृगनि कछु दीरघताई॥
पंच हस्त परिमान उच्च कर सप्त प्रलंबित।
अष्ट हस्त परिनाह माँहिँ गति अति अबिलंबित॥१३३॥

थूल काय गति मंद मंद लघु दृग लंबोदर।
बली बलित उर कच्छि कुच्छि जुत पेचक लरबर॥
सदल त्वचा गुरुग्रीव श्रवत, मद-पीत-बरन बर।
डील डौल मैँ अधिक मृगा सौँ एक हाथ भर॥१३४॥

बिसद बिसाल सुढाल काय अवयव अलगाने।
धनुष पीठि कल कोलजंघ समगात सयाने॥
मधुरुचि दीरघ दंत हरित मदवंत भद्र बर।
मंदहु तैँ परिमान माहिँ इक हाथ अधिकतर॥१३५॥

सुंडादंड उदंड करत नभ-मंडल थाहत।
मनु गनपति की अकस चंद गहि धारन चाहत॥
कै मेघनि सौं संचि चंचला की चिलकाई।
निज-पट-भूषन भरन चहत झलमल अधिकाई॥१३६॥

लसत जथाविधि जथा जोग सब साज सजाए।
हेम रजत मुकता प्रवाल मनिमय मन भाए॥
पंखा झूल सचंदसिरी गजगा झुकि झमकैं।
कंठा-हैकल-हार-किरन-दुमची-दुति दमकैं॥१३७॥

अंबर परसत मंजु मेघडंबर काहू कौ।
मनु कलिंद पर कलित कनक मंडप आहू कौ॥
हलकति झलकति झूल झालरनि जुत इमि भावै।
स्यामघटा पर बिज्जुछटा मानौ छबि छावै॥१३८॥

द्रविन-पाट पट-ठाट ठटे गज-रच्छक राजत।
जिनकैं कर बर रजत-बंक-अंकुस छबि छाजत॥
निज करतब मैं दच्छ सकल गुन औगुन जानत।
अंग-फुरन तैं निज मतंग मन रंग पिछानत॥१३९॥

इक इक करि के संग लगे द्वै द्वै फुरतीले।
कुंतलबाही निपुन साहसी सजग सजीले॥
कोउ कहुँ साँटेमार सटकि साँटौ निज परखत।
जाकी धुनि सौं धमकि मत्त सिंधुर-मद धरषत॥१४०॥

इहिँ बिधि बाहन बिबिध सबिध सज्जित मनभाए।
चहल-पहल नित रहत पौरि पर मंजु मचाए॥
पुरजन-परिजन-सखा सुहृद सचिवनि की टोली।
आवति जाति लखाति परस्पर करत ठठोली॥१४१॥

मित्र-मंडली चलति कबहुँ आराम-रमन कौं।
सेवन सुचि जल बात तथा श्रम बिसम समन कौं॥
बहु प्रकार व्यापार-जनित दुख-दंद दमन कौं।
.... ॥१४२।

मंगलाचरण

जासौँ जाति बिषय-बिषाद की बिवाई बेगि
चोप-चिकनाई चित चारु गहिबौ करै।
कहै रतनाकर कबित्त-बर-व्यंजन मैँ
जासौँ स्वाद सौगुनौ रुचिर रहिबौ करै॥
जासौँ जोति जागति अनूप मन-मंदिर मैँ
जड़ता - बिषम - तम - तोम दहिबौ करै।
जयति जसोमति के लाड़िले गुपाल, जन
रावरी कृपा सौँ सो सनेह लहिबौ करै॥ १।

[उद्धव का मथुरा से ब्रज आना]

न्हात जमुना मैं जलजात एक देख्यौ जात
जाकौ अध-ऊरध अधिक मुरझायौ है।
कहै रतनाकर उमहि गहि स्याम ताहि
बास-बासना सौं नैंकु नासिका लगायौ है॥
त्यौंहीं कछु घूमि झूमि बेसुध भए कै हाय
पाय परे उखरि अभाय मुख छायौ है।
पाए घरी द्वैक मैं जगाइ, ल्याइ ऊधौ तीर
राधा-नाम कीर जब औचक सुनायौ है॥ २॥

आए भुज-बंध दिए ऊधव-सखा कैं कंध
डग-मग पाय मग धरत धराए हैं।
कहै रतनाकर न बूझैं कछू बोलत औ
खोलत न नैन हूँ अचैन चित छाए हैं॥
पाइ बहे कंज मैं सुगंध राधिका कौ मंजु
ध्याए कदली-बन मतंग लौं मताए हैं।
कान्ह गए जमुना नहान पै नए सिर सौं
नीकैं तहाँ नेह की नदी मैं न्हाइ आए हैं॥ ३॥

देखि दूरि ही तैं दौरि पौरि लगि भैंटि ल्याइ
आसन दै साँसनि समेटि सकुचानि तैं।
कहै रतनाकर यौं गुनन गुबिंद लागे
जौलौं कछू भूले से भ्रमे से अकुलानि तैं॥

कहा कहैं ऊधौ सौं कहैं हूँ तौ कहाँ लौं कहैं
कैसैं कहैं कहैं पुनि कौन सी उठानि तैं ।
तौलौं अधिकाई तैं उमगि कंठ आइ भिंचि
नीर ह्वै बहन लागी बात अँखियानि तैं ॥ ४ ॥

बिरह-बिथा की कथा अकथ अथाह महा
कहत बनै न जो प्रबीन सुकबीनि सौं ।
कहै रतनाकर बुझावन लगे ज्यौं कान्ह
ऊधौ कौं कहन-हेत ब्रज-जुवतीनि सौं ॥
गहबरि आयौ गरौ भभरि अचानक त्यौं
प्रेम परयौ चपल चुचाइ पुतरीनि सौं ।
नैंकु कही बैननि, अनेक कही नैननि सौं,
रही-सही सोऊ कहि दीनी हिचकीनि सौं ॥ ५ ॥

नंद औ जसोमति के प्रेम-पगे पालन की
लाड़-भरे लालन की लालच लगावती ।
कहै रतनाकर सुधाकर-प्रभा सौं मढ़ी
मंजु मृगनैनिनि के गुन-गन गावती ॥
जमुना-कछारनि की रंग-रस-रारनि की
बिपिन-बिहारनि की हौंस हुमसावती ।
सुधि ब्रज-बासिनि दिवैया सुख-रासिनि की
ऊधौ नित हमकौं बुलावन कौं आवती ॥ ६ ॥

चलत न चारयौ भाँति कोटिनि बिचारयौ तऊ
दाबि दाबि हारयौ पै न टारयौ टसकत है।
परम गहीली बसुदेव-देवकी की मिली
चाह-चिमटी हूँ सौं न खैंचौ खसकत है॥
कढ़त न क्यौं हूँ हाय बिथके उपाय सबै
धीर-आक-छीर हूँ न धारैं धसकत है।
ऊधौ ब्रज-बास के बिलासनि कौ ध्यान धस्यौ
निसि-दिन काँटे लौं करेजैं कसकत है॥ ७॥

रूप-रस पीवत अघात ना हुते जो तब
सोई अब आँस ह्वै उबरि गिरिबौ करैं।
कहै रतनाकर जुड़ात हुते देखैं जिन्हैं
याद किएँ तिनकौं अवाँ सौं घिरिबौ करैं॥
दिननि के फेर सौं भयौ है हेर-फेर ऐसौ
जाकौं हेरि फेरि हेरिबौई हिरिबौ करैं।
फिरत हुते जू जिन कुंजनि मैं आठौं जाम
नैननि मैं अब सोई कुंज फिरिबौ करैं॥ ८॥

गोकुल की गैल-गैल गैल-गैल ग्वालनि की
गोरस कैं काज लाज-बस कै बहाइबौ।
कहै रतनाकर रिझाइबौ नवेलिनि कौं
गाइबौ गवाइबौ औ नाचिबौ नचाइबौ॥

कीबौ स्रमहार मनुहार कै विविध विधि
मोहिनी मृदुल मंजु बाँसुरी बजाइबौ ।
ऊधौ सुख-संपति-समाज ब्रज-मंडल के
भूलैँ हूँ न भूलै भूलैँ हमकौँ भुलाइबौ ॥ ९ ॥

मोर के पखौवनि कौ मुकुट छबीलौ छोरि
क्रीट मनि-मंडित धराइ करिहैँ कहा ।
कहै रतनाकर त्यौँ माखन-सनेही बिनु
षट-रस व्यंजन चबाइ करिहैँ कहा ॥
गोपी ग्वाल बालनि कौँ झोँकि बिरहानल मैँ
हरि सुर-बृंद की बलाइ करिहैँ कहा ।
प्यारौ नाम गोबिंद गुपाल कौ बिहाय हाय
ठाकुर त्रिलोक के कहाइ करिहैँ कहा ॥१०॥

कहत गुपाल माल मंजु मनि-पुंजनि की
गुंजनि की माल की मिसाल छबि छावै ना ।
कहै रतनाकर रतन-मै किरीट अच्छ
मोर-पच्छ-अच्छ-लच्छ-अंसहू सु-भावै ना ॥
जसुमति मैया की मलैया अरु माखन कौ
काम-धेनु-गोरस हू गूढ़ गुन पावै ना ।
गोकुल की रज के कनूका औ तिनूका सम
संपति त्रिलोक की बिलोकन मैँ आवै ना ॥११॥

राधा-मुख-मंजुल-सुधाकर के ध्यान ही सौं
प्रेम-रतनाकर हियैं यौं उमगत है।
त्यौंहीं बिरहातप प्रचंड सौं उमंडि अति
ऊरध उसास कौ झकोर यौं जगत है॥
केवट बिचार कौ बिचारौ पचि हारि जात
होत गुन-पाल ततकाल नभ-गत है।
करत गँभीर धीर-लंगर न काज कछू
मन कौ जहाज डगि डूबन लगत है॥१२॥

सील-सनी सुरुचि सु-बात चलैं पूरब की
औरै ओप उमगी दृगनि मिदुराने तैं।
कहै रतनाकर अचानक चमक उठी
उर घनस्याम कैं अधीर अकुलाने तैं॥
आसाछन्न दुरदिन दीस्यौ सुरपुर माहिँ
ब्रज मैं सुदिन बारि-बूंद हरियाने तैं।
नीर कौ प्रबाह कान्ह-नैननि कैं तीर बह्यौ
धीर बह्यौ ऊधौ-उर-अचल रसाने तैं॥१३॥

प्रेम-भरी कातरता कान्ह की प्रगट होत
ऊधव अवाइ रहे ज्ञान-ध्यान सरके।
कहै रतनाकर धरा कौ धीर धूरि भयौ
भूरि-भीति-भारनि फनिंद-फन करके॥

सुर सुर-राज सुद्ध-स्वारथ-सुभाव-सने
संसय समाए धाए धाम बिधि हर के।
आई फिरि ओप ठाम-ठाम ब्रज-गामनि के
बिरहिनि बामनि के बाम अंग फरके ॥१४॥

हेत-खेत माहिँ खोदि खाई सुद्ध स्वारथ की
प्रेम-तृन गोपि राख्यौ तापै गमनौ नहीँ।
करिनी प्रतीति-काज करनी बनावट की
राखी ताहि हेरि हियैँ हौंसनि सनौ नहीँ॥
घात मैँ लगे हैँ ये बिसासी ब्रजबासी सबै
इनके अनोखे छल-छंदनि छनौ नहीँ।
बारनि कितेक तुम्हैँ बारन कितेक करैँ
बारन-उबारन है बारन बनौ नहीँ ॥१५॥

पाँचौ तत्त्व माहिँ एक सत्त्व ही की सत्ता सत्य
याही तत्त्व-ज्ञान कौ महत्त्व स्रुति गायौ है।
तुम तौ बिबेक रतनाकर कहौ क्यौँ पुनि
भेद पंचभौतिक के रूप मैँ रचायौ है॥
गोपिनि मैँ, आप मैँ, बियोग औ सँजोग हूँ मैँ
एकै भाव चाहिए सचोप ठहरायौ है।
आपु ही सौँ आपुकौ मिलाप औ बिछोह कहा
मोह यह मिथ्या सुख-दुख सब ठायौ है ॥१६॥

आवौ एक बार धारि गोकुल-गली की धूरि
तब इहिँ नीति की प्रतीति धरि लैहैँ हम।
मन सौँ, करेजे सौँ, स्रवन-सिर-आँखिनि सौँ
ऊधव तिहारी सीख भीख करि लैहैँ हम ॥१९॥

बात चलैँ जिनकी उड़ात धीर धूरि भयौ
ऊधौ मंत्र फूँकिन चले हैँ तिन्हैँ ज्ञानी ह्वै।
कहै रतनाकर गुपाल के हिये मैँ उठी
हूक मूक भायनि की अकह कहानी ह्वै॥
गहबर कंठ ह्वै न कढ़न संदेस पायौ
नैन-मग तौलौँ आनि बैन अगवानी ह्वै।
प्राकृत प्रभाव सौँ पलट मनमानी पाइ
पानी आज सकल सँवारचौ काज बानी ह्वै ॥२०॥

ऊधव कैँ चलत गुपाल उर माहिँ चल-
आतुरी मची सो परै कहि न कबीनि सौँ।
कहै रतनाकर हियौ हूँ चलिबै कौँ संग
लाख अभिलाष लै उमहि बिकलीनि सौँ॥
आनि हिचकी ह्वै गरैँ बीच सकस्यौई परै
स्वेद ह्वै रस्यौई परै रोम-झँझरीनि सौँ।
आनन-दुवार तैँ उसाँस ह्वै बढ़्यौई परै
आँसू ह्वै कढ़्यौई परै नैन-खिरकीनि सौँ ॥२१॥

[उद्धव की ब्रज यात्रा]

आइ ब्रज-पथ रथ ऊधौ कौं चढ़ाइ कान्ह
अकथ कथानि की व्यथा सौं अकुलात हैं।
कहै रतनाकर बुझाइ कछु रोकैं पाय
पुनि कछु ध्याइ उर धाइ उरझात हैं॥
उससि उसाँसनि सौं बहि बहि आँसनि सौं
भूरि भरे हिय के हुलास न उरात हैं।
सीरे तपे बिबिध सँदेसनि की बातनि की
घातनि की झोंक मैं लगेई चले जात हैं॥२२॥

लै कै उपदेस-औ-सँदेस-पन ऊधौ चले
सुजस-कमाइबैं उछाह-उदगार मैं।
कहै रतनाकर निहारि कान्ह कातर पै
आतुर भए यौं रह्यौ मन न सँभार मैं॥
ज्ञान-गठरी की गाँठि छरकि न जान्यौ कब
हरैं हरैं पूँजी सब सरकि कछार मैं।
डार मैं तमालनि की कछु बिरमानी अरु
कछु अरुझानी है करीरनि के झार मैं॥२३॥

हरैं-हरैं ज्ञान के गुमान घटि जान लगे
जोग के बिधान ध्यान हूँ तैं टरिबै लगे।
नैननि मैं नीर रोम सकल सरीर छयौ
प्रेम-अद्भुत-सुख सूझि परिबै लगे॥

गोकुल के गाँव की गली मैं पग पारत हीं
भूमि कैं प्रभाव भाव औरै भरिबै लगे।
ज्ञान-मारतंड के सुखाए मनु मानस कौं
सरस सुहाए घनस्याम करिबै लगे ॥२४॥

[उद्धव का ब्रज में पहुँचना]

दुख सुख ग्रीषम औ सिसिर न ब्यापै जिन्हैं
छापै छाप एकै हिये ब्रह्म-ज्ञान-साने मैं।
कहै रतनाकर गँभीर सोई ऊधव कौ
धीर उधरान्यौ आनि ब्रज के सिवाने मैं॥
औरै मुख-रंग भयौ सिथिलित अंग भयौ
बैन दबि दंग भयौ गर गरुवाने मैं।
पुलकि पसीजि पास चाँपि मुरझाने काँपि
जानैं कौन बहति बयारि बरसाने मैं ॥२५॥

धाईं धाम-धाम तैं अवाई सुनि ऊधव की
बाम-बाम लाख अभिलाषनि सौं भ्वै रहीं।
कहै रतनाकर पै बिकल बिलोकि तिन्हैं
सकल करेजौ थामि आपुनपौ ख्वै रहीं॥
लेखि निज-भाग-लेख रेख तिन आनन की
जानन की ताहि आतुरी सौं मन म्वै रहीं।
आँस रोकि साँस रोकि पूछन-हुलास रोकि
मूरति निरास की सी आस-भरी ज्वै रहीं ॥२६॥

भेजे मनभावन के ऊधव के आवन की
सुधि ब्रज-गावनि मैं पावन जबै लगीं।
कहै रतनाकर गुवालिनि की झौरि-झौरि
दौरि-दौरि नंद-पौरि आवन तबै लगीं ।।
उझकि-उझकि पद-कंजनि के पंजनि पै
पेखि पेखि पाती छाती छोहनि छवै लगीं।
हमकौं लिख्यौ है कहा, हमकौं लिख्यौ है कहा,
हमकौं लिख्यौ है कहा कहन सबै लगीं ।।२७।।

देखि देखि आतुरी बिकल ब्रज-बारिनि की
ऊधव की चातुरी सकल बहि जाति हैं।
कहै रतनाकर कुसल कहि पूछि रहे
अपर सनेस की न बातैं कहि जाति हैं।
मौन रसना ह्वै जोग जदपि जनायौ सबै
तदपि निरास-बासना न गहि जाति हैं।
साहस कै कछुक उमाहि पूछिबै कौं ठाहि
चाहि उत गोपिका कराहि रहि जाति हैं ।।२८।।

दीन दसा देखि ब्रज-बालनि की ऊधव कौ
गरि गौ गुमान ज्ञान गौरव गुठाने से।
कहै रतनाकर न आए मुख बैन नैन
नीर भरि ल्याए भए सकुचि सिहाने से ।।

सूखे से स्रमे से सकबके से सके से थके
भूले से भ्रमे से भभरें से भकुवाने से।
हौले से हले से हूल-हूले से हिये मैं हाय
हारे से हरे से रहे हेरत हिराने से ॥२९॥

मोह-तम-रासि नासिबे कौं स-हुलास चले
ब्रह्म कौ प्रकास पारि मति रति-माती पर।
कहै रतनाकर पै सुधि उधिरानी सबै
धूरि परी धीर जोग-जुगति-सँघाती पर॥
चलत बिषम ताती बात ब्रज-बारिनि की
बिपति महान परी ज्ञान-बरी बाती पर।
लच्छ दुरे सकल बिलोकत अलच्छ रहे
एक हाथ पाती एक हाथ दिए छाती पर ॥३०॥

[उद्धव के ब्रजवासियों से बचन]

चाहत जौ स्ववस सँजोग स्याम-सुंदर कौ
जोग के प्रयोग मैं हियौ तौ बिलस्यौ रहै।
कहै रतनाकर सु-अंतर-मुखी है ध्यान
मंजु हिय-कंज-जगी जोति मैं धस्यौ रहै॥
ऐसैं करौ लीन आतमा कौं परमातमा मैं
जामैं जड़-चेतन-बिलास बिकस्यौ रहै।
मोह-बस जोहत बिछोह जिय जाकौ छोहि
सो तौ सब-अंतर निरंतर बस्यौ रहै ॥३१॥

पंच तत्त्व मैं जो सच्चिदानँद की सत्ता सो तौ
हम तुम उनमैं समान ही समोई है।
कहै रतनाकर बिभूति पंच-भूत हू की
एक ही सी सकल प्रभूतनि मैं पोई है॥
माया के प्रपंच ही सौं भासत प्रभेद सबै
काँच-फलकनि ज्यौं अनेक एक सोई है।
देखौ भ्रम-पटल उघारि ज्ञान-आँखिनि सौं
कान्ह सब ही मैं कान्ह ही मैं सब कोई है॥३२॥

सोई कान्ह सोई तुम सोई सबही हैं लखौ
घट-घट-अंतर अनंत स्यामघन कौं।
कहै रतनाकर न भेद-भावना सौं भरौ
बारिधि औ बूँद के बिचारि बिछुरन कौं॥
अबिचल चाहत मिलाप तौ बिलाप त्यागि
जोग-जुगती करि जुगावौ ज्ञान-धन कौं।
जीव आतमा कौं परमातमा मैं लीन करौ
छीन करौ तन कौं न दीन करौ मन कौं॥३३॥

सुनि-सुनि ऊधव की अकह कहानी कान
कोऊ थहरानी, कोऊ थानहिं थिरानी हैं।
कहै रतनाकर रिसानी, बररानी कोऊ
कोऊ बिलखानी, बिकलानी, बिथकानी हैं॥

कोऊ सेद-सानी, कोऊ भरि दृग-पानी रहीं
कोऊ घूमि-घूमि परीं भूमि मुरझानी हैं।
कोऊ स्याम-स्याम कै बहकि बिललानी कोऊ
कोमल करेजौ थामि सहमि सुखानी हैं ॥३४॥

[उद्धव के प्रति गोपियों का वचन]

रस के प्रयोगनि के सुखद सु जोगनि के
जेते उपचार चारु मंजु सुखदाई हैं।
तिनके चलावन की चरचा चलावै कौन
देत ना सुदर्सन हूँ यौं सुधि सिराई हैं॥
करत उपाय ना सुभाय लखि नारिनि कौ
भाय क्यौं अनारिनि कौ भरत कन्हाई हैं।
ह्वाँ तौ बिषमज्वर-बियोग की चढ़ाई यह
पाती कौन रोग की पठावत दवाई हैं ॥३५॥

ऊधौ कहौ सूधौ सौ सनेस पहिलैं तौ यह
प्यारे परदेस तैं कबैं धौं पग पारिहैं।
कहै रतनाकर तिहारी परि बातनि मैं
मीड़ि हम कब लौं करेजौ मन मारिहैं॥
लाइ-लाइ पाती छाती कब लौं सिरैहैं हाय
धरि-धरि ध्यान धीर कब लगि धारिहैं।
बैननि उचारिहैं उराहनौ कबै धौं सबै
स्याम कौ सलोनौ रूप नैननि निहारिहैं ॥३६॥

षटरस-ब्यंजन तौ रंजन सदा ही करैं

ऊधौ नवनीत हूँ स-प्रीति कहूँ पावैं हैं।

कहै रतनाकर बिरद तौ बखानैं सबै

साँची कहौ केते कहि लालन लड़ावैं हैं ॥

रतन-सिँहासन बिराजि पाकसासन लौं

जग-चहुँ-पासनि तौ सासन चलावैं हैं।

जाइ जमुना-तट पै कोऊ बट-छाहिँ माहिँ

पाँसुरी उमाहि कबौं बाँसुरी बजावैं हैं ॥३७॥

कान्ह-दूत कैधौं ब्रह्म-दूत ह्वै पधारे आप

धारे प्रन फेरन कौ मति ब्रजबारी की।

कहै रतनाकर पै प्रीति-रीति जानत ना

ठानत अनीति आनि नीति लै अनारी की ॥

मान्यौ हम, कान्ह ब्रह्म एक ही, कह्यौ जो तुम,

तौहूँ हमैं भावति न भावना अन्यारी की।

जैहै बनि-बिगरि न बारिधिता बारिधि की

बूँदता बिलैहै बूँद बिबस बिचारी की ॥३८॥

चोप करि चंदन चढ़ायौ जिन अंगनि पै

तिनपै बजाइ तूरि धूरि दरिबौ कहौ।

रस-रतनाकर स-नेह निरवार्‌यौ जाहि

ता कच कौं हाय जटा-जूट बरिबौ कहौ ॥

चंद अरबिंद लौं सराह्यौ ब्रजचंद जाहिं
ता मुख कौं काकचंचवत करिबौ कहौ।
छेदि-छेदि छाती छलनी कै बैन-बाननि सौं
तामैं पुनि ताइ धीर-नीर धरिबौ कहौ ॥३९॥

चिंता-मनि मंजुल पँवारि धूरि-धारनि मैं
काँच-मन-मुकुर सुधारि रखिबौ कहौ।
कहै रतनाकर बियोग-आगि सारन कौं
ऊधौ हाय हमकौं बयारि भखिबौ कहौ॥
रूप-रस-हीन जाहि निपट निरूपि चुके
ताकौ रूप ध्याइबौ औ रस चखिबौ कहौ।
एते बड़े बिस्व माहिं हेरैं हूँ न पैयै जाहि,
ताहि त्रिकुटी मैं नैन मूँदि लखिबौ कहौ ॥४०॥

आए हौ सिखावन कौं जोग मथुरा तैं तोपै
ऊधौ ये बियोग के बचन बतरावौ ना।
कहै रतनाकर दया करि दरस दीन्यौ
दुख दरिबै कौं, तोपै अधिक बढ़ावौ ना॥
टूक-टूक ह्वैहै मन-मुकुर हमारौ हाय
चूकि हूँ कठोर-बैन-पाहन चलावौ ना।
एक मनमोहन तौ बसिकै उजार्‌यौ मोहिं
हिय मैं अनेक मनमोहन बसावौ ना ॥४१॥

हाय बिन मोल हूँ बिकी न मग हूँ मैं कहूँ
तापै बटपार-टोल लोल हू लुभानी ना।
केती मिली मुकति बधू बर के कूबर मैं
ऊबर भई जो मधुपुर मैं समानी ना ॥४४॥

हम परतच्छ मैं प्रमान अनुमानैं नाहिँ
तुम भ्रम-भौंर मैं भलैं हीं बहिबौ करौ।
कहै रतनाकर गुबिंद-ध्यान धारैं हम
तुम मनमानौ ससा-सिंग गहिबौ करौ॥
देखति सो मानति हैं सूधौ न्याव जानति हैं
ऊधौ ! तुम देखि हूँ अदेख रहिबौ करौ।
लखि ब्रज-भूप-रूप अलख अरूप ब्रह्म
हम न कहैंगी तुम लाख कहिबौ करौ ॥४५॥

रंग-रूप-रहित लखात सबही हैं हमैं
वैसौ एक और ध्याइ धीर धरिहैं कहा।
कहै रतनाकर जरी हैं बिरहानल मैं
और अब जोति कौं जगाइ जरिहैं कहा॥
राखौ धरि ऊधौ उतै अलख अरूप ब्रह्म
तासौं काज कठिन हमारे सरिहैं कहा।
एक ही अनंग साधि साध सब पूरीं अब
और अंग-रहित अराधि करिहैं कहा ॥४६॥

कर-बिनु कैसैं गाय दूहिहै हमारी वह
पद-बिनु कैसैं नाचि थिरकि रिझाइहै।
कहै रतनाकर बदन-बिनु कैसैं चाखि
माखन बजाइ बेनु गोधन गवाइहै॥
देखि सुनि कैसैं दृग स्रवनि बिनाहीं हाय
भोरे ब्रजबासिनि की बिपति बराइहै।
रावरौ अनूप कोऊ अलख अरूप ब्रह्म
ऊधौ कहौ कौन धौं हमारैं काम आइहै॥४७॥

वे तौ बस बसन रँगावैं मन रंगत ये
भसम रमावैं वे ये आपुहीं भसम हैं।
साँस साँस माहिँ बहु बासर बितावत वे
इनकैं प्रतेक साँस जात ज्यौं जनम हैं॥
ह्वै कै जग-भुक्ति सौं बिरक्त मुक्ति चाहत वे
जानत ये भुक्ति मुक्ति दोऊ बिष-सम हैं।
करिकै बिचार ऊधौ सूधौ मन माहिँ लखौ
जोगी सौं बियोग-भोग-भोगी कहा कम हैं॥४८॥

जोग को रमावै औ समाधि को जगावै इहाँ
दुख-सुख-साधनि सौं निपट निबेरी हैं।
कहै रतनाकर न जानैं क्यौं इतै धौं आइ
साँसनि की सासना की बासना बखेरी हैं॥

हम जमराज की धरावतिँ जमा न कछू
सुर-पति-संपति की चाहतिँ न ढेरी हैँ।
चेरी हैँ न ऊधौ ! काहू ब्रह्म के बबा की हम
सूधौ कहे देतिँ एक कान्ह की कमेरी हैँ ॥४९॥

सरग न चाहैँ अपबरग न चाहैँ सुनौ
भुक्ति-मुक्ति दोऊ सौं बिरक्ति उर आनैँ हम।
कहै रतनाकर तिहारे जोग-रोग माहिँ
तन मन साँसनि की साँसति प्रमानैँ हम॥
एक ब्रजचंद कृपा-मंद-मुसकानि हीँ मैँ
लोक परलोक कौ अनंद जिय जानैँ हम।
जाके या बियोग-दुख हू मैँ सुख ऐसौ कछू
जाहि पाइ ब्रह्म-सुख हू मैँ दुख मानैँ हम ॥५०॥

जग सपनौ सौ सब परत दिखाई तुम्हैँ
तातैँ तुम ऊधौ हमैँ सोवत लखात हौ।
कहै रतनाकर सुनै को बात सोवत की
जोई मुँह आवत सो बिबस बयात हौ॥
सोवत मैँ जागत लखत अपने कौं जिमि
त्यौं हीँ तुम आपहीँ सुज्ञानी समुझात हौ।
जोग-जोग कबहूँ न जानैँ कहा जोहि जकौ
ब्रह्म-ब्रह्म कबहूँ बहकि बररात हौ ॥५१॥

ऊधौ यह ज्ञान कौ बखान सब बाद हमैं
सूधौ बाद छाँड़ि बकबादहिँ बढ़ावै कौन।
कहै रतनाकर बिलाइ ब्रह्म-काय माहिँ
आपने सौं आपुनपौ आपुनौ नसावै कौन॥
काहू तौ जनम मैं मिलैंगी स्यामसुंदर कौं
याहू आस प्रानायाम-साँस मैं उड़ावै कौन।
परि कै तिहारी ज्योति-ज्वाल की जगाजग मैं
फेरि जग जाइबे की जुगति जरावै कौन॥५२॥

वाही मुख मंजुल की चहतिँ मरीचैं सदा
हमकौं तिहारी ब्रह्म-ज्योति करिबौ कहा।
कहै रतनाकर सुधाकर-उपासिनि कौं
भानु की प्रभानि कौं जुहारि जरिबौ कहा॥
भोगि रहीं बिरचे बिरंचि के सँजोग सबै
ताके सोग सारन कौं जोग चरिबौ कहा।
नव ब्रजचंद कौ चकोर चित चारु भयौ
बिरह-चिंगारिनि सौं फेरि डरिबौ कहा॥५३॥

ऊधौ जम-जातना की बात ना चलावौ नैंकु
अब दुख सुख कौ बिबेक करिबौ कहा।
प्रेम-रतनाकर-गँभीर-परे मीननि कौं
इहिँ भव-गोपद की भीति भरिबौ कहा॥

एकै बार लैहैँ मरि मीच की कृपा सौँ हम
रोकि-रोकि साँस बिनु मीच मरिबौ कहा।
छिन जिन झेली कान्ह-बिरह-बलाय तिन्हैँ
नरक-निकाय की धरक धरिबौ कहा ॥५४॥

जोगिनि की भोगिनि की बिकल बियोगिनि की
जग मैँ न जागती जमातैँ रहि जाइँगी।
कहै रतनाकर न सुख के रहे जौ दिन
तौ ये दुख-द्वंद की न रातैँ रहि जाइँगी॥
प्रेम-नेम छाँड़ि ज्ञान-छेम जो बतावत सो
भीति ही नहीँ तौ कहा छातैँ रहि जाइँगी।
घातैँ रहि जाइँगी न कान्ह की कृपा तैँ इती
ऊधौ कहिबे कौँ बस बातैँ रहि जाइँगी ॥५५॥

कठिन करेजौ जो न करक्यौ बियोग होत
तापर तिहारौ जंत्र मंत्र खँचिहै नहीँ।
कहै रतनाकर बरी हैँ बिरहानल मैँ
ब्रह्म की हमारैँ जिय जोति जँचिहै नहीँ॥
ऊधौ ज्ञान-भान की प्रभानि ब्रजचंद बिना
चहकि चकोर चित चोपि नचिहै नहीँ।
स्याम-रंग-राँचे साँचे हिय हम ग्वारिनि कैँ
जोग की भगौँहीँ भेष-रेख रँचिहै नहीँ ॥५६॥

नैननि के नीर औ उसीर पुलकावलि सौं
जाहि करि सीरो सीरो बातहिँ बिलासैं हम।
कहै रतनाकर तपाई बिरहातप की
आवन न देतिँ जामैं बिषम उसासैं हम॥
सोई मन-मंदिर तपावन के काज आज
रावरे कहे तैं ब्रह्म-जोति लै प्रकासैं हम।
नंद के कुमार सुकुमार कौं बसाइ यामैं
ऊधौ अब हाइ कै बिसास उदवासैं हम॥५७॥

जोहैं अभिराम स्याम चित की चमक ही मैं
और कहा ब्रह्म की जगाइ जोति जोहैंगी।
कहै रतनाकर तिहारी बात ही सौं रुकी
साँस की न साँसति कै औरौ अवरोहैंगी॥
आपुही भई हैं मृगछाला ब्रज-बाला सूखि
तिनपै अपर मृगछाला कहा सोहैंगी।
ऊधौ मुक्ति-माल बृथा मढ़त हमारे गरैं
कान्ह बिना तासौं कहौ काकौ मन मोहैंगी॥५८॥

कीजै ज्ञान-भानु कौ प्रकास गिरि-सृंगनि पै
ब्रज मैं तिहारी कला नैंकु खटिहैं नहीं।
कहै रतनाकर न प्रेम-तरु पैहै सूखि
याकी डार-पात तृन-तूल घटिहैं नहीं॥

रसना हमारी चारु चातकी बनी हैं ऊधौ
पी-पी की बिहाइ और रट रटिहैं नहीं ।
लौटि-पौटि बात कौ ववंडर बनावत क्यौं
हिय तैं हमारे घन-स्याम हटिहैं नहीं ॥५९॥

नैननि के आगैं नित नाचत गुपाल रहैं
ख़्याल रहैं सोई जो अनन्य-रसवारे हैं ।
कहै रतनाकर सो भावना भरीयै रहै
जाके चाव भाव रचैं उर मैं अखारे हैं ॥
ब्रह्म हूँ भए पै नारि ऐसियै बनी जौ रहैं
तौ तौ सहैं सीस सबै बैन जो तिहारे हैं ।
यह अभिमान तौ गवैंहैं ना गए हूँ प्रान
हम उनकी हैं वह प्रीतम हमारे हैं ॥६०॥

सुनीं गुनीं समझीं तिहारी चतुराई जिती
कान्ह की पढ़ाई कबिताई कुबरी की हैं ।
कहै रतनाकर त्रिकाल हू त्रिलोक हू मैं
आनैं आन नैंकु ना त्रिदेव की कही की हैं ॥
कहहिं प्रतीति प्रीति नीति हूँ त्रिबाचा बाँधि
ऊधौ साँच मन की हिये की अरु जी की हैं ।
वै तौ हैं हमारे ही हमारे ही हमारे ही औ
हम उनही की उनही की उनही की हैं ॥ ६१॥

नेम ब्रत संजम कै आसन अखंड लाइ
साँसनि कौं घूँटिहैं जहाँ लौं गिलि जाइगौ।
कहै रतनाकर धरैंगी मृगछाला अरु
धूरि हूँ दरैंगी जऊ अंग छिलि जाइगौ॥
पाँच-आँचि हूँ की झार झेलिहैं निहारि जाहि
रावरौ हू कठिन करेजौ हिलि जाइगौ।
सहिहैं तिहारे कहैं साँसति सबै पै बस
एती कहि देहु कै कन्हैया मिलि जाइगौ॥६२॥

साधि लैहैं जोग के जटिल जे बिधान ऊधौ
बाँधि लैहैं लंकनि लपेटि मृगछाला हू।
कहै रतनाकर सु मेल लैहैं छार अंग
झेलि लैहैं ललकि घनेरे घाम पाला हू॥
तुम तौ कही औ अनकही कहि लीनी सबै
अब जौ कहौ तौ कहैं कछु ब्रज-बाला हू।
ब्रह्म मिलिबै तैं कहा मिलिहै बतावौ हमैं
ताकौ फल जब लौं मिलै ना नंदलाला हू॥६३॥

साधिहैं समाधि औ अराधिहैं सबै जो कहौ
आधि-ब्याधि सकल स-साध सहि लैहैं हम।
कहै रतनाकर पै प्रेम-प्रन-पालन कौं
नेम यह निपट सछेम निरबैहैं हम॥

जैहैं प्रान-पट लै सरूप मनमोहन कौ
तातैं ब्रह्म रावरे अनूप कौं मिलैहैं हम ।
जौपै मिल्यौ तौ तौ धाइ चाय सौं मिलैंगी पर
जौ न मिल्यौ तौ पुनि इहाँ हीं लौटि ऐहैं हम ॥६४॥

कान्ह हूँ सौं आन ही विधान करिबे कौं ब्रह्म
मधुपुरियानि की चपल कँखियाँ चहैं ।
कहै रतनाकर हसैं कै कहौ रोवैं अब
गगन-अथाह-थाह लेन मखियाँ चहैं ॥
अगुन-सगुन-फंद-बंद निरारन कौं
धारन कौं न्याय की नुकीली नखियाँ चहैं ।
मोर-पंखियाँ कौ मौर-वारौ चारु चाहन कौं
ऊधौ अँखियाँ चहैं न मोर-पंखियाँ चहैं ॥६५॥

ढोंग जात्यौ ढरकि परकि उर सोग जात्यौ
जोग जात्यौ सरकि स-कंप कँखियानि तैं ।
कहै रतनाकर न लेखते प्रपंच ऐंठि
बैठि धरा लेखते कहूँधौं नखियानि तैं ॥
रहते अदेख नाहिं बेष वह देखत हूँ
देखत हमारी जान मोर पँखियानि तैं ।
ऊधौ ब्रह्म-ज्ञान कौ बखान करते ना नैंकु
देख लेते कान्ह जौ हमारी अँखियानि तैं ॥६६॥

चाव सौं चले हौ जोग-चरचा चलाइबै कौं
चपल चितौनि तैं चुचात चित-चाह है।
कहै रतनाकर पै पार ना बसैहै कछू
हेरत हिरैहै भर्यौ जो उर उछाह है॥
अंडे लौं टिटेहरी के जैहैं जू बिबेक बहि
फेरि लहिबे की ताके तनक न राह है।
यह वह सिंधु नाहिँ सोखि जो अगस्त लियौ
ऊधौ यह गोपिनि के प्रेम कौ प्रबाह है॥६७॥

धरि राखौ ज्ञान गुन गौरव गुमान गोइ
गोपिनि कौं आवत न भावत भड़ंग है।
कहै रतनाकर करत टायँ-टायँ बृथा
सुनत न कोऊ इहाँ यह मुहचंग है॥
और हूँ उपाय केते सहज सुढंग ऊधौ
साँस रोकिबै कौं कहा जोग ही कुढंग है।
कुटिल कटारी है अटारी है उतंग अति
जमुना-तरंग है तिहारौ सतसंग है॥६८॥

प्रथम भुराइ चाय-नाय पै चढ़ाइ नीकैं
न्यारी करी कान्ह कुल-कूल हितकारी तैं।
प्रेम-रतनाकर की तरल तरंग पारि
पलटि पराने पुनि प्रन-पतवारी तैं॥

और न प्रकार अब पार लहिबै कौ कछू
अटकि रही हैं एक आस गुनवारी तैं ।
सोऊ तुम आइ बात बिषम चलाइ हाय
काटन चहत जोग-कठिन कुठारी तैं ॥६९॥

प्रेम-पाल पलटि उलटि पतवारी-पति
केवट परान्यौ कूब-तूँबरी अधार लै ।
कहै रतनाकर पठायौ तुम्हैं तापै पुनि
लादन कौं जोग कौ अपार अति भार लै ॥
निरगुन ब्रह्म कहौ रावरौ बनैहै कहा
ऐहै कछु काम हूँ न लंगर लगार लै ।
बिषम चलावौ ज्ञान-तपन-तपी ना बात
पारी कान्ह तरनी हमारी मँझधार लै ॥७०॥

प्रथम भुराइ प्रेम-पाठनि पढ़ाइ उन
तन मन कीन्हें बिरहागि के तपेला हैं ।
कहै रतनाकर त्यौं आप अब तापै आइ
साँसनि की साँसति के झारत झमेला हैं ॥
ऐसे ऐसे सुभ उपदेस के दिवैयनि की
ऊधौ ब्रजदेस मैं अपेल रेल-रेला हैं ।
वे तौ भए जोगी जाइ पाइ कूबरी कौ जोग
आप कहैं उनके गुरू हैं किधौं चेला हैं ॥७१॥

एते दूरि देसनि सौं सखनि-सँदेसनि सौं
लखन चहैं जो दसा दुसह हमारी है।
कहै रतनाकर पै बिषम बियोग-बिथा
सबद-बिहीन भावना की भाववारी है॥
आनैं उर अंतर प्रतीत यह तातैं हम
रीति नीति निपट भुजंगनि की न्यारी है।
आँखिनि तैं एक तौ सुभाव सुनिबै कौ लियौ
काननि तैं एक देखिबै की टेक धारी है॥७२॥

द्रौनाचल कौ ना यह छटक्यौ कनूका जाहि
छाइ छिगुनी पै छेम-छत्र छिति छायौ है।
कहै रतनाकर न कूबर बधू-बर कौ
जाहि रंच रांचैं पानि परसि गँवायौ है॥
यह गरु प्रेमाचल दृढ़-ब्रत-धारिनि कौ
जाकैं भार भाव उनहूँ कौ सकुचायौ है।
जानै कहा जानि कै अजान ह्वै सुजान कान्ह
ताहि तुम्हैं बात सौं उड़ावन पठायौ है॥७३॥

सुधि बुधि जातिं उड़ी जिनकी उसाँसनि सौं
तिनकौं पठायौ कहा धीर धरि पाती पर।
कहै रतनाकर त्यौं बिरह-बलाय ढाइ
मुहर लगाइ गए सुख-थिर-थाती पर॥

और जो कियौ सो कियौ ऊधौ पै न कोऊ बियौ
ऐसी घात धूनी करै जनम-सँघाती पर।
कूबरी की पीठि तैँ उतारि भार भारी तुम्हैँ
भेज्यौ ताहि थापन हमारी छीन छाती पर ॥७४॥

सुघर सलोने स्यामसुंदर सुजान कान्ह
करुना-निधान के बसीठ बनि आए हौ।
प्रेम-प्रनधारी गिरिधारी कौ सनेसौ नाहिँ
होत है अँदेसौ झूठ बोलत बनाए हौ॥
ज्ञान-गुन-गौरव-गुमान-भरे फूले फिरौ
बंचक के काज पै न रंचक बराए हौ।
रसिक-सिरोमनि कौ नाम बदनाम करौ
मेरी जान ऊधौ कूर-कूबरी-पठाए हौ ॥७५॥

कान्ह कूबरी के हिय-हुलसे-सरोजनि तैँ
अमल अनंद-मकरंद जो ढरारै है,
कहै रतनाकर, यौँ गोपी उर संचि ताहि
तामैँ पुनि आपनौ प्रपंच रंच पारै है॥
आइ निरगुन-गुन गाइ ब्रज मैँ जो अब
ताकौ उदगार ब्रह्मज्ञान-रस गारै है।
मिलि सो तिहारौ मधु मधुप हमारैँ नेह
देह मैँ अछेह बिष बिषम बगारै है ॥७६॥

सीता असगुन कौं कटाई नाक एक बेरि
सोई करि कूब राधिका पै फेरि फाटी है।
कहै रतनाकर परेखौ नाहिँ याकौ नैंकु
ताकी तौ सदा की यह पाकी परिपाटी है॥
सोच है यहै कै संग ताके रंगभौन माहिँ
कौन धौं अनोखौ ढंग रचत निराटी है।
छाँटि देत कूबर कै आँटि देत डाँट कोऊ
काटि देत खाट किधौं पाटि देत माटी है॥७७॥

आए कंसराइ के पठाए वे प्रतच्छ तुम
लागत अलच्छ कुबजा के पच्छवारे हौ।
कहै रतनाकर बियोग लाइ लाई उन
तुम जोग बात के बवंडर पसारे हौ॥
कोऊ अबलानि पै न ढरिकै ढरारे होत
मधुपुरवारे सब एकै ढार ढारे हौ।
लै गए अक्रूर क्रूर तन तैं छुड़ाइ हाय
ऊधौ तुम मन तैं छुड़ावन पधारे हौ॥७८॥

आए हौ पठाए वा छतीसे छलिया के इतै
बीस बिसै ऊधौ बीरबावन कलाँच है।
कहै रतनाकर प्रपंच ना पसारौ गाढ़े
बाढ़े पै रहौगे साढ़े बाइस ही जाँच है॥

प्रेम अरु जोग मैं है जोग छठैं-आठैं पर्यौ
एक ह्वै रहैं क्यौं दोऊ हीरा अरु काँच है।
तीन गुन पाँच तत्त्व बहकि बतावत सो
जैहै तीन-तेरह तिहारी तीन-पाँच ह्वै ॥७९॥

कंस के कहे सौं जदुबंस कौ बताइ उन्हैं
तैसैं हीं प्रसंसि कुबजा पै ललचायौ जो।
कहै रतनाकर न मुष्टिक चनूर आदि
मल्लनि कौ ध्यान आनि हिय कसकायौ जो॥
नंद जसुदा की सुखमूरि करि धूरि सबै
गोपी ग्वाल गैयनि पै गाज लै गिरायौ जो।
होते कहूँ क्रूर तौ न जानैं करते धौं कहा
एतौ क्रूर करम अक्रूर ह्वै कमायौ जो॥८०॥

चाहत निकारन तिन्हैं जो उर-अंतर तैं
ताकौ जोग नाहिँ जोग-मंतर तिहारे मैं।
कहै रतनाकर बिलग करिबै मैं होति
नीति बिपरीत महा कहति पुकारे मैं॥
तातैं तिन्हैं ल्याइ लाइ हिय तैं हमारे बेगि
सोचियै उपाय फेरि चित्त चेतवारे मैं।
ज्यौं-ज्यौं बसे जात दूरि-दूरि पिय प्रान-मूरि
त्यौं-त्यौं धँसे जात मन-मुकुर हमारे मैं॥८१॥

ह्वाँ तौ ब्रजजीवन सौँ जीवन हमारौ हाय
जानैँ कौन जीव लै उहाँ के जन जनमैँ ।
कहै रतनाकर बतावत कछू कौ कछू
ल्यावत न नैँकु हूँ बिबेक निज मन मैँ ॥
अच्छिनि उघारि ऊधौ करहु प्रतच्छ लच्छ
इत पसु-पच्छिनि हूँ लाग है लगन मैँ ।
काहू की न जीहा करै ब्रह्म की समीहा सुनौ
पीहा-पीहा रटत पपीहा मधुबन मैँ ॥८२॥

बाढ़्यौ ब्रज पै जो ऋन मधुपुर-बासिनि कौ
तासौँ ना उपाय काहूँ भाय उमहन कौँ ।
कहै रतनाकर बिचारत हुतीँ हीँ हम
कोऊ सुभ जुक्ति तासौँ मुक्त ह्वै रहन कौँ ॥
कीन्यौ उपकार दौरि दोउनि अपार ऊधौ
सोई भूरि भार सौँ उबारता लहन कौँ ।
लै गयौ अक्रूर-क्रूर तब सुख-मूर कान्ह
आए तुम आज प्रान-ब्याज उगहन कौँ ॥८३॥

पुरतीँ न जो पै मोर-चंद्रिका किरीट-काज
जुरतीँ कहा न काँच किरचैँ कुभाय की ।
कहैं रतनाकर न भावते हमारे नैन
तौ न कहा पावते कहूँधौं ठाँय पाय की ॥

मान्यौ हम मान कै न मानती मनाएँ बेगि
कीरति-कुमारी सुकुमारी चित-चाय की ।
याही सोच माहिँ हम होतिँ दूबरी कै कहा
कूबरी हू होती ना पतोहू नंदराय की ॥८४॥

हरि-तन-पानिप के भाजन दृगंचल तैँ
उमगि तपन तैँ तपाक करि धावै ना ।
कहै रतनाकर त्रिलोक-ओक-मंडल मैँ
बेगि ब्रहमद्रव उपद्रव मचावै ना ॥
हर कौँ समेत हर-गिरि के गुमान गारि
पल मैँ पतालपुर पैठन पठावै ना ।
फैलै बरसाने मैँ न रावरी कहानी यह
बानी कहूँ राधे आधे कान सुनि पावै ना ॥८५॥

आतुर न होहु ऊधौ आवति दिवारी अबै
वैसियै पुरंदर-कृपा जौ लहि जाइगी ।
होत नर ब्रह्म ब्रह्म-ज्ञान सौँ बतावत जो
कछु इहिँ नीति की प्रतीति गहि जाइगी ॥
गिरिवर धारि जौ उबारि ब्रज लीन्यौ बलि
तौ तौ भाँति काहूँ यह बात रहि जाइगी ।
नातरु हमारी भारी बिरह-बलाय-संग
सारी ब्रह्म-ज्ञानता तिहारी बहि जाइगी ॥८६॥

आवत दिवारी बिलखाइ ब्रज-बारी कहैं

अबकैं हमारैं गाँव गोधन पुजैहै को।

कहै रतनाकर बिबिध पकवान चाहि

चाह सौं सराहि चख चंचल चलैहै को॥

निपट निहोरि जोरि हाथ निज साथ ऊधौ

दमकति दिव्य दीपमालिका दिखैहै को।

कूबरी के कूबर तैं उबरि न पावैं कान्ह

इंद्र-कोप-लोपक गुबर्धन उठैहै को॥८७॥

बिकसित बिपिन बसंतिकावली कौ रंग

लखियत गोपिनि के अंग पियराने मैं।

बौरे बृंद लसत रसाल-बर बारिनि के

पिक की पुकार है चबाव उमगाने मैं॥

होत पतझार झार तरुनि समूहनि कौ

बैहरि बतास लै उसास अधिकाने मैं।

काम-बिधि बाम की कला मैं मीन-मेष कहा

ऊधौ नित बसत बसंत बरसाने मैं॥८८॥

ठाम ठाम जीवन-बिहीन दीन दीसै सबै

चलति चबाई-बात तापत घनी रहै।

कहै रतनाकर न चैन दिन-रैन परै

सूखी पत-छीन भई तरुनि अनी रहै॥

जार्यौ अंग अब तौ बिधाता है इहाँ कौ भयौ
तातैं ताहि जारन की ठसक ठनी रहै।
बगर-बगर बृषभान के नगर नित
भीषम-प्रभाव ऋतु ग्रीषम बनी रहै ॥८९॥

रहति सदाई हरियाई हिय-घायनि मैं
ऊरध उसास सो झकोर पुरवा की है।
पीव-पीव गोपी पीर-पूरित पुकारति हैं
सोई रतनाकर पुकार पपिहा की है॥
लागी रहै नैननि सौं नीर की झरी औ
उठै चित मैं चमक सो चमक चपला की है।
बिनु घनस्याम धाम-धाम ब्रज-मंडल मैं
ऊधौ नित बसति बहार बरसा की है ॥९०॥

जात घनस्याम के ललात दृग-कंज-पाँति
घेरी दिख-साध-भौंर-भीर की अनी रहै।
कहै रतनाकर बिरह-बिधु बाम भयौ
चंद्रहास ताने घात घालत घनी रहै॥
सीत-घाम-बरषा-बिचार बिनु आने ब्रज
पंचबान-बाननि की उमड़ ठनी रहै।
काम बिधना सौं लहि फ़रद दवामी सदा
दूरद दिवैया ऋतु सरद बनी रहै ॥९१॥

रीते परे सकल निषंग कुसुमायुध के
दूर दुरे कान्ह पै न तातैं चलै चारौ है।
कहै रतनाकर बिहाइ बर मानस कौं
लीन्यौ है हुलास-हंस बास दूरिवारौ है॥
पाला परै आस पै न भावत बतास बारि
जात कुम्हिलात हियौ कमल हमारौ है।
षट ऋतु ह्वैहै कहूँ अनत दिगंतनि मैं
इत तौ हिमंत कौ निरंतर पसारौ है॥९२॥

काँपि-काँपि उठत करेजौ कर चाँपि-चाँपि
उर ब्रजबासिनि कैं ठिठुर ठनी रहै।
कहै रतनाकर न जीवन सुहात रंच
पाला की पटास परी आसनि घनी रहै॥
बारिनि मैं बिसद बिकास ना प्रकास करै
अलिनि बिलास मैं उदासता सनी रहै।
माधव के आवन की आवतिँ न बातैं नैंकु
नित प्रति तातैं ऋतु सिसिर बनी रहै॥९३॥

माने जब नैंकु ना मनाएँ मनमोहन के
तौपै मन-मोहिनि मनाए कहा मानौ तुम।
कहै रतनाकर मलीन मकरी लौं नित
आपुनौहीं जाल आपने हीं पर तानौ तुम॥

कबहूँ परे न नैन-नीर हूँ के फेर माहिँ
पैरिबौ सनेह-सिंधु माहिँ कहा ठानौ तुम।
जानत न ब्रह्म हूँ प्रमानत अलच्छ ताहि
तौपै भला प्रेम कौं प्रतच्छ कहा जानौ तुम ॥९४॥

हाल कहा बूझत बिहाल परीँ बाल सबै
बसि दिन द्वैक देखि दृगनि सिधाइयौ।
रोग यह कठिन न ऊधौ कहिबे के जोग
सूधौ सौ सँदेस याहि तू न ठहराइयौ॥
औसर मिलै औ सर-ताज कछु पूछहिँ तौ
कहियौ कछू न दसा देखी सो दिखाइयौ।
आह कै कराहि नैन नीर अवगाहि कछू
कहिबे कौं चाहि हिचकी लै रहि जाइयौ ॥९५॥

नंद जसुदा औ गाय गोप गोपिका की कछू
बात बृषभान-भौन हूँ की जनि कीजियौ।
कहै रतनाकर कहतिँ सब हा हा खाइ
ह्याँ के परपंचनि सौं रंच न पसीजियौ॥
आँसू भरि ऐहै औ उदास मुख हैहै हाय
ब्रज-दुख-त्रास की न तातैं साँस लीजियौ।
नाम कौ बताइ औ जताइ गाम ऊधौ बस
स्याम सौं हमारी राम-राम कहि दीजियौ ॥९६॥

ऊधौ यहै सूधौ सौ सँदेस कहि दीजौ एक
जानति अनेक ना बिबेक ब्रज-बारी हैं।
कहै रतनाकर असीम रावरी तौ छमा
छमता कहाँ लौं अपराध की हमारी हैं॥
दीजै और ताजन सबै जो मन भावै पर
कीजै ना दरस-रस-बंचित बिचारी हैं।
भली हैं बुरी हैं औ सलज्ज निरलज्ज हू हैं
जो कहौ सो हैं पै परिचारिका तिहारी हैं॥९७॥

[उद्धव की ब्रज-बिदाई]

धाईं जित तित तैं बिदाई-हेत ऊधव की
गोपी भरीं आरति सँभारति न साँसुरी।
कहै रतनाकर मयूर-पच्छ कोऊ लिए
कोऊ गुंज-अंजली उमाहै प्रेम-आँसुरी॥
भाव-भरी कोऊ लिए रुचिर सजाव दही
कोऊ मही मंजु दाबि दलकति पाँसुरी।
पीत पट नंद जसुमति नवनीत नयौ
कीरति-कुमारी सुरवारो दई बाँसुरी॥९८॥

कोऊ जोरि हाथ कोऊ नाइ नम्रता सौं माथ
भाषन की लाख लालसा सौं नहि जात हैं।
कहै रतनाकर चलत उठि ऊधव के
कातर है प्रेम सौं सकल महि जात हैं॥

सबद न पावत सो भाव उमगावत जो
ताकि-ताकि आनन ठगे से ठहि जात हैं।
रंचक हमारी सुनौ रंचक हमारी सुनौ
रंचक हमारी सुनौ कहि रहि जात हैं ॥९९॥

दाबि-दाबि छाती पाती-लिखन लगायौ सबै
ब्यौंत लिखिबै कौ पै न कोऊ करि जात है।
कहै रतनाकर फुरति नाहिँ बात कछू
हाथ धरयौ ही-तल थहरि थरि जात है॥
ऊधौ के निहोरैं फेरि नैंकु धीर जोरैं पर
ऐसौ अंग ताप कौ प्रताप भरि जात है।
सूखि जाति स्याही लेखिनी कैं नैंकु डंक लागैं
अंक लागैं कागद बररि बारि जात है॥१००॥

कोऊ चले काँपि संग कोऊ उर चाँपि चले
कोऊ चले कछुक अलापि हलबल से।
कहै रतनाकर सुदेस तजि कोऊ चले
कोऊ चले कहत सँदेस अबिरल से॥
आँस चले काहू के सु काहू के उसाँस चले
काहू के हियै पै चंदहास चले हल से।
ऊधव कैं चलत चलाचल चली यौं चल
अचल चले औ अचले हू भए चल से॥१०१॥

माँगी बिदा माँगत ज्यौं मीच उर भीचि कोऊ
कीन्यौ मौन गौन निज हिय के हुलास लौं।
बिथकित साँस लौं चलत रुकि जात फेरि
आँस लौं गिरत पुनि उठत उसास लौं ॥१०४॥

चल-चित-पारद की दंभ-कंचुली कै दूरि
ब्रज-मग-धूरि प्रेम-मूरि सुभ-सीली लै।
कहैं रतनाकर सु जोगनि बिधान भावि
अमित प्रमान ज्ञान-गंधक गुनीली लै॥
जारि घट-अंतर हीँ आह-धूम धारि सबै
गोपी बिरहागिनि निरंतर जगीली लै॥
आए लौटि ऊधव बिभूति भव्य भायनि की
कायनि की रुचिर रसायन रसीली लै॥१०५॥

आए लौटि लज्जित नवाए नैन ऊधौ अब
सब सुख-साधन कौ सूधौ सौ जतन लै।
कहै रतनाकर गवाँए गुन गौरव औ
गरब-गढ़ी कौ परिपूरन पतन लै॥
छाए नैन नीर पीर-कसक कमाए उर
दीनता अधीनता के भार सौं नतन लै।
प्रेम-रस रुचिर बिराग-तूमड़ी मैं पूरि
ज्ञान-गूदड़ी मैं अनुराग सौ रतन लै॥१०६॥

आए दौरि पौरि लौं अवाई सुनि ऊधव की
और ही बिलोकि दसा दृग भरि लेत हैं।
कहै रतनाकर बिलोकि बिलखात उन्हैं
येऊ कर काँपत करेजैं धरि लेत हैं॥
आवति कछूक पूछिबे औ कहिबे की मन
परत न साहस पै दोऊ दरि लेत हैं।
आनन उदास साँस भरि उकसौंहैं करि
सौंहैं करि नैननि निचौंहैं करि लेत हैं॥१०७॥

प्रेम-मद-छाके पग परत कहाँ के कहाँ
थाके अंग नैननि सिथिलता सुहाई है।
कहै रतनाकर यौं आवत चकात ऊधौ
मानौ सुधियात कोऊ भावना भुलाई है॥
धारत धरा पै ना उदार अति आदर सौं
सारत बँहोलिनि जो आँस-अधिकाई है।
एक कर राजै नवनीत जसुदा कौ दियौ
एक कर बंसी बर राधिका-पठाई है॥१०८॥

ब्रज-रज-रंजित सरीर सुभ ऊधव कौ
धाइ बलबीर है अधीर लपटाए लेत।
कहै रतनाकर सु प्रेम-मद-माते हेरि
थरकति बाँह थामि थहरि थिराए लेत॥

कीरति-कुमारी के दरस-रस सद्य ही की
छलकनि चाहि पलकनि पुलकाए लेत।
परन न देत एक बूँद पुहुमी की कोंछि
पोंछि-पोंछि पट निज नैननि लगाए लेत ॥१०९॥

[उद्धव के बचन श्रीभगवान प्रति]

आँसुनि की धार औ उभार कौं उसाँसनि के
तार हिचकीनि के तनक टरि लेन देहु।
कहै रतनाकर फुरन देहु बात रंच
भावनि के बिषम प्रपंच सरि लेन देहु ॥
आतुर ह्वै और हू न कातर बनावौ नाथ
नैसुक निवारि पीर धीर धरि लेन देहु।
कहत अबै हैं कहि आवत जहाँ लौं सबै
नैंकु थिर कढ़त करेजौ करि लेन देहु ॥११०॥

रावरे पठाए जोग देन कौं सिधाए हुते
ज्ञान गुन गौरव के अति उदगार मैं।
कहै रतनाकर पै चातुरी हमारी सबै
कित धौं हिरानी दसा दारुन अपार मैं ॥
उड़ि उधिरानी किधौं ऊरध उसासनि मैं
बहिधौं बिलानी कहूँ आँसुनि की धार मैं।
चूर ह्वै गई धौं भूरि दुख के दरेरनि मैं
छार ह्वै गई धौं बिरहानल की झार मैं ॥१११॥

सीत-घाम-भेद खेद-सहित लखाने सबै
भूले भाव भेदता-निषेधन-बिधान के।
कहै रतनाकर न ताप ब्रजबालनि के
काली-मुख-ज्वाल ना दवानल समान के ॥
पटकि पराने ज्ञान-गठरी तहाँ हीँ हम
थमत बन्यौ ना पास पहुँचि सिवान के।
छाले परे पगनि अधर पर जाले परे
कठिन कसाले परे लाले परे प्रान के ॥११२॥

ज्वालामुखी गिरि तैँ गिरत द्रवे द्रव्य कैधौँ
बारिद पियौ है बारि बिष के सिवाने मैँ।
कहै रतनाकर कै काली दाँव लेन-काज
फेन फुफकारे उहिँ गावँ दुख-साने मैँ ॥
जीवन बियोगिनि कौ मेघ अँचयौ सो किधौँ
उपच्यौ पच्यौ न उर ताप अधिकाने मैँ।
हरि-हरि जासौँ बरि-बरि सब बारी उठैँ
जानैँ कौन बारि बरसत बरसाने मैँ ॥११३॥

लैकै पन सूछम अमोल जो पठायौ आप
ताकौ मोल तनक तुल्यौ न तहाँ साँठी तैँ।
कहैं रतनाकर पुकारे ठौर-ठौर पर
पौरि बृषभानु की हिरान्यौ मति नाठी तैँ ॥

लीजै हेरि आपुहीँ न हेरि हम पायौ फेरि
याही फेर माहिँ भए माठी दधि-आँठी तैँ।
ल्याए धूरि पूरि अंग अंगनि तहाँ की जहाँ
ज्ञान गयौ सहित गुमान गिरि गाँठी तैँ ॥११४॥

ज्यौंहीं कछु कहन सँदेस लग्यौ त्यौंहीं लख्यौ
प्रेम-पूर उमँगि गरे लौं चढ़्यौ आवै है।
कहै 'रतनाकर' न पाँव टिकि पावैँ नैँकु
ऐसौ दृग-द्वारनि स-बेग कढ़्यौ आवै है॥
मधुपुरि राखन कौ बेगि कछु ब्यौंत गढ़ौ
धाइ चढ़ौ बट कै न जौपै गढ़्यौ आवै है।
आयौ भज्यौ भूपति भगीरथ लौं हौं तौ नाथ
साथ लग्यौ सोई पुन्य-पाथ बढ़्यौ आवै है॥११५॥

जैहै ब्यथा बिषम बिलाइ तुम्हैं देखत हीं
तातैं कही मेरी कहूँ झूँठि ठहरावौ ना।
कहै रतनाकर न याही भय भाषैं भूरि
याही कहैं जावौ बस बिलँब लगावौ ना॥
एतौ और करत निबेदन सबेदन हैं
ताकौ कछु बिलग उदार उर ल्यावौ ना।
तब हम जानैं तुम धीरज-धुरीन जब
एक बार ऊधौ बनि जाइ पुनि जावौ ना॥११६॥

छावते कुटीर कहूँ रम्य जमुना कैं तीर
गौन रौन-रेती सौं कदापि करते नहीं।
कहै रतनाकर बिहाइ प्रेम-गाथा गूढ़
स्रौन रसना मैं रस और भरते नहीं॥
गोपी ग्वाल बालनि के उमड़त आँसू देखि
लेखि प्रलयागम हूँ नैंकु डरते नहीं।
होतौ चित चाव जौ न रावरे चितावन कौ
तजि ब्रज-गाँव इतै पावँ धरते नहीं॥११७॥

आठी कै बियोग जोग-जटिल-लुकाठी लाइ
लाग सौं सुहाग के अदाग पिघलाए हैं।
कहै रतनाकर सुबृत्त प्रेम-साँचे माहिँ
काँचे नेम संजम निबृत्त कै ढराए हैं॥
अब परि बीच खीचि बिरह-मरीचि-बिंब
देत लव लाग की गुबिंद-उर लाए हैं।
गोपी - ताप - तरुन - तरनि - किरनावलि के
ऊधव नितांत कांत-मनि बनि आए हैं॥११८॥

मंगलाचरण

जय बिधि-संचित-सुकृत-सार-सुख-सागर-संगिनि ।
जय हरि-पद-अरबिंद-मंजु-मकरंद-तरंगिनि ॥
जय सुर-सेवित-संभु-बिपुल-बल-बिक्रम-साका ।
जय भूपति-कुल-कलस-भगीरथ-पुन्य-पताका ॥
जय गंग सकल-कलि-मल-हरनि बिमल-बरनि बानी करौ ।
निज महि-अवतरन-चरित्र के भव्य भाव उर मैं भरौ ॥१॥

जय बृंदारक-बृंद-बंद्य बुध-गन-आनंदिनि ।
जय मुख-चंद-प्रकासि हृदय-तम-रासि-निकंदिनि ॥
जय सुमंद मुसक्याइ कृपा-चंदक-संचारिनि ।
जय कबिंद-उर-अजिर सदा स्वच्छंद बिहारिनि ॥
तव बीना-पुस्तक-बाद बर रतनाकर उर मैं बसैं ।
सुभ सब्द-अर्थ-लालित्य दोउ गंग-औतरन मैं लसैं ॥२॥

सिंधुर-बदन-सुरंग गंग-सिर-धरन-दुलारे ।
गिरजा-गोद बिनोद करत मोदक मुख धारे ॥
सुभ सुंडिका उभारि धारि सीतल जल धावत ।
षड़मुख-सनमुख सुमुख साधि उझकत झझकावत ॥
सो लुकत ओट नंदीस की लखि दंपति-मन मुद भरै ।
यह बाल-खेल गनपाल कौ बिघन-जाल सुमिरत हरै ॥३॥

प्रथम सर्ग

पावनि-सरजू-तीर अवध-पुरि बसति सुहावनि ।
महि-महिमा-आधार त्रिपुर सोभा-सरसावनि ॥
मेदिनि-मंडल-मंजु-मुद्रिका-मनि सी राजै ।
बन-राजी चहुँ फेर घेर-नग की छबि छाजै ॥ १ ॥

बसुधा-सुभग-सिँगार-हार-लर सरजू सोहै ।
मनि-नायक सु-ललाम धाम साकेत बिमोहै ॥
भुक्ति-मुक्ति की खानि बेद-इतिहास-बखानी ।
जाकौ बास महान पुन्य सौं पावत प्रानी ॥ २ ॥

सप्त पुरिनि मैं प्रथम रेख जाकी जग लेखत ।
सुर-समाज ह्वै दंग रंग जाकौ जुरि देखत ॥
ताकी जथा-स्वरूप कौन करि सकत बड़ाई ।
जो त्रिलोक-अभिराम रामहूँ कैं मन भाई ॥ ३ ॥

धवल धाम अभिराम लसत तहँ बिसद बनाए ।
हाट बाट के ठाट सुघर सुंदर मन भाए ॥
रुचिर रम्य आराम जिन्हैं लखि नंदन लाजत ।
बापी कूप तड़ाग भरे जल बिमल बिराजत ॥ ४ ॥

दिनकर-बंस-अनूप-भूप-गन की रजधानी।
न्याय चाय कैँ भाय सदा सासित सुख-सानी॥
चारहुँ बरन पुनीत बसत जहँ आनँद माने।
धनी गुनी सुभ-कर्म धर्म-रत सुमति सयाने॥ ५॥

भयौ भूप तिहिँ नगर सगर इक परम प्रतापी।
दिग-छोरनि लौँ उमगि जासु कल कीरति ब्यापी॥
रिपु-बल-खल-दल-दलन प्रजा-परिजन-दुख-भंजन।
गुनि-जन-जीवन-मूल सुकृति-सज्जन-मन-रंजन॥ ६॥

गो-ब्राह्मन-प्रतिपाल ईस-गुरु-भक्त अदूषित।
बल-बिक्रम-बुधि-रूप-धाम सुभ-गुन-गन-भूषित॥
नीति-पाल जिहिँ सचिव बाल की खाल खिँचैया।
सेनप स्वामि-प्रसेद-पात-थल रक्त-सिँचैया॥ ७॥

भामिनि-भूषन भईँ जुगल ताकी पटरानी।
ज्ञान-सुसंगिनि जथा भक्ति स्रद्धा सुख-सानी॥
जोबन-रूप-अनूप भूप-सुचि-रुचि-अनुगामिनि।
जिनकी प्रभा निहारि हारि सकुचति सुर-स्वामिनि॥ ८॥

इक केसिनी बिदर्भ-राज बर की कुल-कन्या।
दूजी सुमति सुपर्न-भव्य-भगिनी भुवि-धन्या॥
दोउ पुनीत पति-प्रीति-पात्र दोउ पति-अनुरागिनि।
दोउ कुल-कमला-गिरा-रूप दोउ अति बड़-भागिनि॥ ९॥

भव-वैभव कौ जदपि भूप-गृह अमित उज्यारौ ।
तउ इक सुत कुल-दीप बिना सब लगत अँध्यारौ ॥
इक दिन मानि गलानि नीर नैननि नृप ढारयौ ।
काया-कष्ट उठाइ इष्ट-साधन निरधारयौ ॥१०॥

हिम-गिरि कैं प्रस्रवन-पार्स्व मुनि-जन-मन-हारी ।
सुर - किन्नर - गंधर्व - सिद्ध - चारन - सुख - कारी ॥
दोउ भामिनि लै संग भूप भृगु-आस्रम आए ।
करि तप उग्र सहर्ष बर्ष सत सतत बिताए ॥११॥

ह्वै प्रसन्न ऋषिराज नृपति आदर अति कीन्यौ ।
मन-मान्यौ बरदान दिव्य दोउ दारनि दीन्यौ ॥
लहै केसिनी पूत एक कुल-संतति-कारी ।
साठ सहस सुत सुमति बिपुल-बल-बिक्रम-धारी ॥१२॥

लहि नरबर बर प्रबर पलटि निज नगर पधारे ।
पुरजन-स्वजन-समूह भए सब सुहृद सुखारे ॥
कछु दिन बीतैं भईं गर्भ-गरुई दुहुँ रानी ।
भरि औरै द्युति देह नवल सोभा सरसानी ॥१३॥

लहि सुभ समय-निदेस केसिनी सुत इक जायौ ।
गुरुबर गुनि गुन तासु नाम असमंज धरायौ ॥
सुमति सलोनी जनी एक तूँबी अति अद्भुत ।
निकसे जासौं साठ सहस लघु बीज सरिस सुत ॥१४॥

दीरघ घृत-घट घालि पालि ते धाइ बढ़ाए।
समय-संग सब अंग रूप जोबन अधिकाए॥
महा बीर बरिबंड भए महि-मंडल-मंडन।
निज भुजदंड उदंड चंड-अरि-मुंड-बिहंडन॥१५॥

उत असमंजहु भयौ भूरि-बल-बिक्रम-साली।
पै अति उद्धत कुल-बिरुद्ध निर्बुद्धि कुचाली॥
कलित कल्पतरु माहिँ कटुक माहुर-फल आयौ।
बिधि कलंक कौ पंक बिमल-बिधु-अंक लगायौ॥१६॥

ताकी क्रीड़ा बिषम माहिँ पीड़ा जग पावत।
पुर-बालक बहु पकरि सदा सो सरित डुबावत॥
दीन प्रजा दुख पाइ आइ नृप-द्वार गुहारति।
लहत भूप संताप चहत तिनकी अति आरति॥१७॥

सुनि पुकारि इक बार नीर नैननि नृप ढारयौ।
तुरत ताहि तजि नेह गेह सौं दूरि निकारयौ॥
जैसैँ जब बहु करि उपाय औषधि, हिय हारत।
सब अंगनि दुख-देत दंत बुधिवंत उखारत॥१८॥

ताकौ सुत सुभ अंसुमान कल-कीरति-धारी।
प्रिय-बादी प्रिय-रूप भूप-परिजन-हितकारी॥
भयौ जुबा ह्वै धीर बीर बरिबंड प्रतापी।
परम बिनीत पुनीत नीति-मरजादा-थापी॥१९॥

दिय राज कौ काज ताहि जुवराज बनायौ।
अस्वमेध के करन माँहिं नृप निज मन लायौ॥
बोलि साधनी-पुंज मंजु मंडप रचवायौ।
जाकी सोभा निरखि बिस्वकर्मा सकुचायौ॥ २० ॥

ऋत्विज-गन अति निपुन बेद-बिद न्यौति पठाए।
गुरु बसिष्ठ लै ऋषि-समाज सादर तहँ आए॥
छोड़्यौ छिति-पति स्यामकरन सुवरन बर बाजी।
ताकैं सँग डटि चली बिकट सुभटनि की राजी॥ २१ ॥

परम साहसी साठ सहस नृप-सुत असि-बाही।
दृढ़-दीरघ-बल-बलित-काय अतिसय उतसाही॥
गर्जत तर्जत चले संग सब अंग उमैठत।
जिनकौ लखि आतंक बंक-अरि-उर भय पैठत॥ २२ ॥

फिर्‌यौ अस्व चहुँ ओर छोर छिति की सब छानी।
पै मनसायौ नैंकु नाहिं कोउ प्रतिभट मानी॥
रह्यौ बाँधिबौ दूरि घूरि कोउ ताहि न देखत।
प्रत्युत पूजि सभीति ईति बीती निज लेखत॥ २३ ॥

इमि बाजी प्रति नगर सगर-कीरति कल थापी।
ताकी प्रभुता-छाप टाप-रेखनि छिति छापी॥
करि करनी की अवधि अवध सब पलटि पधारे।
देत दुंदुभी करत नाद अति आनँदवारे॥२४॥

तब भूपति-ढिग आनि ब्यवस्था बिषम बखानी।
बिस्मय-ब्रीड़ा-त्रास-हास-लटपट मृदु बानी ॥
पर्‍यौ रंग मैँ भंग ढंग है सकल बिचारत।
मूक भाव सौँ एक एक कौ वदन निहारत ॥३०॥

उपाध्याय-गन धाइ धवल आनन लटकाए।
त्रिकुटी उँचै ससंक बंक भ्रकुटी भभराए ॥
भरि गँभीर स्वर भाव भूप सौँ कियौ निवेदन।
गयौ पर्व-दिन अस्व भयौ भारी हित-छेदन ॥३१॥

सुनि अति अनहित बैन भए नृप-नैन रिसौँहैँ।
फरकि उठे भुजदंड तने तेवर तरजौँहैँ ॥
कह्यौ सारथी टेरि त्रिपथ-गामी रथ नाधौ।
महाचाप सायक अमोघ भाथनि भरि बाँधौ ॥३२॥

सेनप होहिँ सनद्ध सकल-जग-जीतनहारे।
हम चलि देखैँ आप कौन कौँ प्रान न प्यारे ॥
काकौ सिर धर त्यागि धरा पर परन चहत है।
को जम-गाल कराल भाल निज भरन चहत है ॥३३॥

चाह्यौ उठन भुवाल भाषि इमि बलकति बानी।
पै राख्यौ कर पकरि रोकि गुरुबर बिज्ञानी ॥
कह्यौ अहो नृप कौन ढार यह ढरन चहत हौ।
बृथा जज्ञ-फल-लोप कोप करि करन चहत हौ ॥३४॥

जज्ञ-सरन ज्यौँ त्यागि चरन बाहिर कढ़ि जैहै।
ह्वैहै त्यौं मख-भंग रंग रिपु कौ बढ़ि जैहै॥
पुनि याहू तै करि बिबेक मन नैंकु बिचारौ।
कापै साजत सेन कौन जग सत्रु तिहारौ॥३५॥

महि-मंडल मैं भूप कौन ऐसौ भट मानी।
जो तव अच्छ-समच्छ सकत कर पकरि कृपानी॥
पै बिन जानैं कहौ कौन पै अस्त्र चलैहौ।
उथलपथल थल किऐं बृथा कछु लाभ न पैहौ॥३६॥

करि उपयुक्त उपाय प्रथम हय-खोज लगावौ।
जथाजोग उद्योग साधि ताकौँ पुनि पावौ॥
अपकीरति अपमान अमंगल न तु जग छैहै।
बिमल भानु-कुल आनि राहु-छाया परि जैहै॥३७॥

इमि सुनत बचन गुरुदेव के बिधि-बिबेक-आदर-भरे।
अति सोक सोच संकोच के खीच-बीच नरपति परे॥३८॥

द्वितीय सर्ग

तब नृप गुरु-पद बंदि चंदसेखर उर धाए।
जज्ञ पुरैबौ ठानि बिज्ञ दैवज्ञ बुलाए॥
पूजि जथाबिधि असन बसन भूषन सौं तोषे।
दिए दच्छिना माहिँ लच्छ सुबरन पय-तोषे॥ १॥

बहुरि जोरि जुग पानि सानि मृदु रस बर बानी।
स्यामकरन की हरन-व्यवस्था बिषम बखानी॥
कियौ प्रस्न पुनि गयौ कहाँ वह अस्व हमारौ।
हारे हेरि समस्त ब्यस्त महि-मंडल सारौ॥ २॥

कढ़ी परति करवाल कोस सौं चमकि-चमकि कै।
निकसे आवत बान तून सौं तमकि-तमकि कै॥
उठि-उठि कर रहि जात कसकि तिनके बाहन कौं।
पै न लगति अरि-खोज ओज सौं उत्साहन कौं॥ ३॥

जोग लगन दिन नखत सोधि सब लगे बिचारन।
रेखा अंक खँचाइ दीठि पाटी पर पारन॥
करि-करि पृथक बिचार मेलि सब सार निसारयौ।
गनपति गिरा मनाइ नाइ॰ सिर बचन उचारयौ॥ ४॥

बाजी गयौ पताल यहै ग्रह-चाल बतावति।
हरनहार कौ धाम ठाम ऊँचौ ठहरावति॥
है मिलिबौ स्रम-साध्य दैव पर अंत मिलैहै।
ह्वैहै सुभ परिनाम आदि अति असुभ लखैहै॥ ५॥

सुनि गनकनि की गूढ़ गिरा सब बिस्मय पागे।
असुभ-त्रास-सुभ-आस-भरे निरखन मुख लागे॥
मख राखन कौ रंग पाइ नरपति हरियाने।
मानौ सूखत सालि-खेत पर घन घहराने॥ ६॥

और भाव सब भूलि भूप मन मैं मुद मान्यौ।
परमारथ कौ लाभ अस्व-पावन मैं जान्यौ॥
साठ सहस सुत धीर बीर बरिबंड बुलाए।
कर्ष-हर्ष-आमर्ष-जनक बर बचन सुनाए॥ ७॥

जाके पूत सपूत होहिँ तुम से बल-साली।
ताकौ हय हरि लेहि हाय कोउ क्रूर कुचाली॥
देव दनुज थहरात देखि दल तात तिहारौ।
कहा बापुरौ चपल चोर आधे-जियवारौ॥ ८॥

ह्वैहै अति हित-हानि अस्व जो हाथ न ऐहै।
हंस-बंस की साक धाक माटी मिलि जैहै॥
ह्वै सनद्ध कटि-बद्ध सकल मन-सुद्ध सिधारौ।
पैठि पेलि पाताल तुरत हय हेरि निकारौ॥ ९॥

उथलपथल तल करहु सकल बसुधा धरि नाठौ।
जल-मय थल करि देहु जलधि सब थल भरि भाठौ॥
सुर किन्नर नर नाग अस्व-हर्ता जिहिँ पावौ।
तुरत तुरंगम छीनि ताहि जम-लोक पठावौ॥१०॥

रैहैँ आहुति देत भए दीच्छित हम तब लौँ।
करिहौ पूरन जज्ञ पाइ बाजी नहिँ जब लौँ॥
तातैँ तन मन लाइ बेगि बिक्रम बिस्तारौ।
धरै ईस कर सीस करै कल्यान तिहारौ॥११॥

पितु-आयसु सुनि सकल सुमति-नंदन मन माषे।
तमकि तोलि भुजदंड चंड बिक्रम अभिलाषे॥
चले नाइ पद माथ हाथ मोछनि पर फेरत।
सिंहनाद बिकराल लाल लोचन करि हेरत॥१२॥

जोजन जोजन बाँटि खोदि खोजन महि लागे।
सूल-कुदाल-गदाल-घात-रव सब जग जागे॥
मनहु खाइ हिय घाइ मेदिनी मर्म-बिदारी——
टेरति उच्च बिषाद-नाद सौँ हरि दुख-हारी॥१३॥

प्रबल प्रहारनि पौन चपल बाजी लौँ चमकत।
हलचल होत समुद्र भद्र-अद्री-उर धमकत॥
उड़त फुलिंग असेस सेस मानौ फुफुकारत।
सुरपतिहूँ पछतात प्रलय-आगम निरधारत॥१४॥

गैँड़ा सिंह गयंद रीछ आदिक बनचारी ।
राकस-असुर-समाज उरग महि-उदर-बिहारी ॥
बिदलित होत सगोत बिकल बिललात बिसूरत ।
हाहाकार मचाइ दिसनि करुना सौं पूरत ॥ १५ ॥

तहस-नहस करि सहस साठ जोजन बसुधा-तल ।
जंबुदीप चहुँ कोद खोदि सब कियौ रसातल ॥
उलट-पलट ह्वै गई सकल मिति थिति जलथल की ।
उड़ी अचलता-धाक धूरि ह्वै बिचलि अचल की ॥ १६ ॥

देव दनुज गंधर्व नाग तब सब अकुलाए ।
सर्व लोक के पूज्य पितामह पहँ जुरि आए ॥
माथ नाय मन पाइ हाथ जुग जोरि सुबानी ।
ह्वै उदास भरि साँस कही जग-त्रास-कहानी ॥ १७ ॥

सगर-सुवन सुख-दुवन भुवन खोदे सब डारत ।
जलचारी बहु सिद्ध संत मारे अरु मारत ॥
कछु काहू की कानि आन उर मैं नहिँ राखत ।
परम प्रचंड उदंड बदन आवत सो भाषत ॥ १८ ॥

'इहै कियौ मख-भंग इहै हरि लियौ तुरंगम' ।
यौँ कहि हिंसत सबहिँ लहहिँ जासौँ जहँ संगम ॥
साठ सहस महिपाल-पूत महि-मर्म बिदारत ।
त्राहि-त्राहि भगवंत भए प्रानी सब आरत ॥ १९ ॥

लखि देवनि की भीति प्रीति-जुत कह्यौ बिधाता।
धरहु धीर महि-पीर बेगि हरिहै जगत्राता॥
सोइ प्रभु करुना-पुंज मंजु महिषी यह जाकी।
कपिल-रूप धरि धरत करत रच्छा नित याकी॥ २० ॥

इहिँ बिधि करत कुचाल जबै पाताल सिधैहैँ।
कपिल-कोप-बिकराल-ज्वाल सौँ सब जरि जैहैँ॥
भूमि-भेद कौँ कियौ बेद आदिहिँ निर्धारन।
सगर-कुमारनि-काज आज जारन कौ कारन॥ २१ ॥

यह सुनि ढाढ़स पाइ ठाइ कछु देव ढिठाए।
कपिलदेव-गुन-गान करत निज-निज गृह आए॥
इत नृप-सगर-कुमार रसातल चहुँ दिसि धाए।
मिल्यौ पै न हय हारि पलटि पुनि पितु पहँ आए॥ २२ ॥

सादर सब सिर नाइ सकल बृत्तांत सुनायौ।
पुनि पूछ्यौ अब होत कहा आयसु मन-भायौ॥
सुनत बिषम संबाद भूप टेढ़ी करि भौँहैँ।
मानि महा हित-हानि बचन बोले अनखौँहैँ॥ २३ ॥

महि नीचैँ हय-जोग ज्योतिसी-लोग बतावत।
तौ पुनि कारन कौन हेरि जो हाथ न आवत॥
फिरि धरि धीर गँभीर खोदि पाताल पधारौ।
हय-हर्ता-जुत हेरि स्वकुल-कीरति बिस्तारौ॥ २४ ॥

पितु-प्रेरित पुनि चले बिपुल-बल-बिक्रमधारी।
साठ सहस बरिबंड बीर सुर-नर-भय-कारी॥
खोदि पताल उताल खोरि सब खोजन लागे।
मच्यौ महा उत्पात नाग-असुरादिक भागे॥ २५॥

दिग-छोरनि की कोर लगे सब दौरि दबावन।
सगर-प्रचंड-प्रताप-दाप-धौंसा धमकावन॥
देखे दिग्गज तिन बिसाल बल बिक्रमवारे।
सिर पर परम अपार भार धरनी कौ धारे॥ २६॥

करि प्रदच्छिना पूजि सबनि सादर सिर नायौ।
कहि मख-भंग-प्रसंग सकल निज काज सुनायौ॥
पै तिनहूँ सौं मिली नैंकु नहिं सोध तुरग की।
तब उदास ह्वै लही दसा मनि-हीन उरग की॥ २७॥

सब मिलि सोचन लगे कौन करतब अब कीजै।
जासौं पितु-हित साधि जगत अतुलित जस लीजै॥
खोजे सकल पताल ब्याल-असुरादि बिदारे।
बल बिक्रम स्रम सौर्य भए सब ब्यर्थ हमारे॥ २८॥

कोउ आपुन बनि बिज्ञ अज्ञ दैवज्ञनि भाषत।
कोउ सरोष सब दोष दैव माथे पर राखत॥
कहत सबै बिन तुरग उरग-पुर सौं जौ जैहैं।
पुरजन-परिजन-पितहिं कौन मुख मलिन दिखैहैं॥ २९॥

काहू बिधि जौ सोध कहूँ बाजी की पावैं।
तौ कालहु कौ गाल फारि तुरतहिं उगिलावैं॥
पै बिन जानैं हाय कौन पैं हाथ दिखावैं।
काकौ स्रोनित तृषित कृपानहिं पान करावैं॥ ३० ॥

इमि बिलखत बतरात चकित चितवत चख रीतैं।
भए मंद-मुख-चंद गर्व-सर्वरि के बीतैं॥
पूरब-दक्खिन-छोर-ओर गवने उत्तर तैं।
चले अग्नि मैं मनहु प्रेरि भावी-कर बर तैं॥ ३१ ॥

भई छींक पग-संग अंग बाएँ सब फरके।
सरके सकल उछाह अकथ भय भरि उर धरके॥
पै निरास-हठ ठानि बढ़े यह मानि अभागे।
अब धौं अलहन कौन अस्व-अ-लहन के आगे॥ ३२ ॥

मिल्यौ जात मग माहिं ठाम इक परम मनोहर।
निज सोभा मनु स्वर्ग गाड़ि तहँ धरी धरोहर॥
मनि-मय पर्वत-पुंज मंजु कंचन-मय धरनी।
तेज-रासि दिग-छोर उए मानौ सत तरनी॥ ३३ ॥

देखे तिन तप करत तहाँ मुनिवर-बपुधारी।
स्वयं कपिल भगवान भूमि-भय-निखिल-निवारी।
ध्यानावस्थित सांतरूप पद्मासन मारे।
रोम-रोम सौं प्रभा-पुंज चहुँ पास पसारे॥ ३४ ॥

इक दिसि देख्यौ चरत चारु निज मख कौ बाजी ।
उठी उमगि सब-अंग हर्ष-पुलकनि की राजी ॥
दबी दीनता गई ग्लानि खिसियानि सिरानी ।
भावी-बस उर बहुरि अमित अहमति अधिकानी ॥ ३५ ॥

निहचय जानि अजान कपिलदेवहिँ हय-हर्ता ।
जज्ञ-बिघन कौ मूल सकल निज स्रम कौ कर्ता ॥
धरि धरि सूल कुदाल सैल बिटपनि की साषा ।
धाए बुद्धि-बिरुद्ध क्रुद्ध जलपत दुर्भाषा ॥ ३६ ॥

रे दुरमति दुर्भाग्य दुष्ट दुर्बृत्त दुरासय ।
कायर क्रूर कुपूत कपट-रत कुटिल-कला-मय ॥
हय चुराइ पाताल पैठि बैठ्यौ बक-ध्यानी ।
सगर-सुतनि की पै महान महिमा नहिँ जानी ॥ ३७ ॥

कोलाहल सुनि चौंकि चपल पल कपिल उघारे ।
निरखे सगर-किसोर घोर-बल-बिक्रमवारे ॥
करि कराल दृग लाल तमकि तिनकैँ तन ताक्यौ ।
कियौ हुमकि हुंकार छोभि त्रिभुवन भय छाक्यौ ॥ ३८ ॥

सब अंगनि इक-संग दीठि दामिनि लौँ दमकी ।
बज्र-घात लौँ अति कराल "हुं" की धुनि धमकी ॥
देखत-देखत भए सकल जरि छार छनक मैँ ।
दारु-पुत्तलनि माहिँ लगी मनु आगि तनक मैँ ॥ ३९ ॥

इमि सगर-नृपति-नंदन सकल कपिल-कोप परि जरि गए।
मनु साठ सहस नरमेध मख गंग-अवतरन-हित भए॥ ४० ॥

तृतीय सर्ग

इत नित आहुति देत रहे नृप जज्ञ जगाए।
अस्व अस्व-हर्तार अस्व-खोजिनि लव लाए॥
भए विविध अपसगुन परयौ उर भभरि अचानक।
मख-मंडप मुद-मूल लग्यौ दृग लगन भयानक॥ १॥

वहु दिन बीते जानि आनि कछु हृदय सकाए।
अंसुमान सौं कहे भूप वर वचन सुहाए॥
तव पितरनि कौं गए तात वहु दिवस सुहाए।
हय-हेरन के फेर माहिं सब आप हिराए॥ २॥

देव दनुज नर नाहिं तिन्हैं कोउ बाधनहारौ।
पै संकित चित होत दैव-करतव गुनि न्यारौ॥
तिनकौ समुझि सुभाव सुद्ध उद्धत अभिमानी।
लखि असगुन उर उठति असुभ-संका अनजानी॥ ३॥

तुम निज पुरषनि सरिस विज्ञ वल-विक्रम-धारी।
हंस-बंस के सब-प्रसंस्य-गुन-गन-अधिकारी॥
खोजि अस्व तिन सहित परम हित करौ हमारौ।
चारिहु जुग मैं रहै सुजस सुभ अमर तिहारौ॥ ४॥

धारौ कठिन कृपान पानि धनु बान सँभारौ।
महि-नीचैं बहु बसत जीव हिंसक ध्रुव धारौ॥
प्रतिबादक बधि बाँधि बंध्य-बृंदनि अभिनंदौ।
लहौ सिद्धि सानंद सकल-दुख-दंद निकंदौ॥ ५॥

धरि आयसु सुभ सीस ईस-चरननि चित दीने।
अस्त्र सस्त्र पाथेय सूर सेनप सँग लीने॥
अंसुमान सुख मानि चल्यौ हेरन बर बाजी।
गुरु बसिष्ठ-पद पूजि बंदि बिप्रनि की राजी॥ ६॥

गिरि-खोहनि खाड़िनि गँभीर सो स्रम करि सोध्यौ।
कूप-सरित-सर-ताल-खाल-पालनि मन बोध्यौ॥
पै न अस्व की टोह कहूँ काहू सौं पाई।
न तु पताल-पुर-पंथ दियौ कहुँ दृगनि दिखाई॥ ७॥

इक दिन देख्यौ जात भूमि-नीचे कौ मारग।
सगर-सुतनि कौ खन्यौ अतल-बितलादिक-पारग॥
तिहिँ लखि ललकि कुमार लग्यौ दृग-डोरनि थाहन।
कछु बिस्मय कछु हर्ष कछुक चिंता सौं चाहन॥ ८॥

भानु-बंस कौ बहुरि बीर बर बिरद बिचार्यौ।
कर कृपान उर ईस-आस तिहिँ मग पग धार्यौ॥
जाइ रसातल धाइ दिब्य दिग्गज सब देखे।
देव-दनुज-सेवित निहारि अति सुभ करि लेखे॥ ९॥

करि करि सबहिँ प्रनाम नाम कहि काम जनायौ।
पै तिनहूँ सौँ नैँकु अस्व-संवाद न पायौ॥
लहि असीस चलि चपल सकल पुनि पाय बढ़ाए।
सहत दुसह-दुख-दाह कपिल-आस्रम मैँ आए॥ १० ॥

सुगति गरुड़ तहँ मिल्यौ सुमति-भ्राता सुभ-दानी।
मानहु मंगल सकुन-राज कीन्ही अगवानी॥
जानि पितामह-सरिस कुँवर सादर सिर नायौ।
निज आगम कौ सकल बिषम संबाद सुनायौ॥ ११ ॥

बहुरि कह्यौ कर जोरि बिनय-रस बोरि बचन मैँ।
तात तुम्हैँ सब ज्ञात तिहारी गति त्रिभुवन मैँ॥
पितरनि कौ बृत्तांत कछुक करुना करि भाषौ।
पुनि कहि कहाँ तुरंग रंग रबि-कुल कौ राखौ॥ १२ ॥

अंसुमान के बैन बैनतेयहिँ अति भाए।
सगर-सुतनि कौँ सुमिरि सोचि लोचन भरि आए॥
करी भाँति बहु पच्छि-राज जुबराज-बड़ाई।
बरनि बीरता बिनय बचन-रचना-चतुराई॥ १३ ॥

भाष्यौ बहुरि बताइ छार-रासिनि कौ लेखौ।
निज पितरनि की पूत दसा दारुन यह देखौ॥
भए छनक मैँ छार सकल निज पाप प्रबल सौँ।
अप्रमेय-तप-तेज कपिल के कोप-अनल सौँ॥ १४ ॥

यौँ कहि जथा-प्रसंग कथा संछेप बखानी।
कहत सुनत दुहुँ दृगनि सोक-सरिता उमगानी॥
अंसुमान सुनि समाचार सब अति दुख पाग्यौ।
लखि लखि छार पछार खाइ बिलपन लुठि लाग्यौ॥ १५॥

हाय तात यह भयौ घात बिन बात तिहारौ।
होम करत कर जर्‌यौ पर्‌यौ बिधि बाम हमारौ॥
आए बाजी लेन बेचि बाजी इमि सोवत।
उठत क्यौँ न पितु लखत बाट उत इत सिसु रोवत॥ १६॥

सके न देखि उदास कबहुँ तुम बदन हमारौ।
बिलकत आज बिलोकि क्यौँ न कर गहि बुलकारौ॥
खेलन खोरि न दियौ हमैँ तुम धूर-धुरेटे।
सो अब आपुहिँ आइ छार-रासिनि मैँ लेटे॥ १७॥

पठयौ हमैँ भुवाल तात सुधि लेन तिहारी।
कहैँ कहा संबाद जाइ हम मर्म-बिदारी॥
सुनतहिँ ताकी कौन दसा दारुन ह्वै जैहै।
सुमति केसिनी को बिषाद-मरजाद नसैहै॥ १८॥

सुनि यह बिषम बिलाप ताप खग-पति अति पायौ।
कहि अनेक इतिहास ताहि बहु बिधि समुझायौ॥
धीर बीर इक्ष्वाकु-बंस कौ बिरद उचार्‌यौ।
छत्रिनि कौ सुभ परम धरम धीरज निरधार्‌यौ॥ १९॥

गुरु वसिष्ठ कौ सिष्य भाषि दै मरक मथायौ ।
भावी-भोग न टरन जोग सब भाँति लखायौ ॥
पुनि इक दिसि चलि कपिलदेव कौ दरस करायौ ।
तिनकैं पास पुनीत जज्ञ-हय चरत दिखायौ ॥ २० ॥

अंसुमान बिस्राम लह्यौ कछु मुनि-दरसन तैं ।
कछुक तोष हय हेरि हियैं आसा ससरन तैं ॥
माथ नाइ सकुचाइ मनहिं मन वंदन कीन्यौ ।
धन्यवाद इहिं लाभ-काज खग-राजहिं दीन्यौ ॥ २१ ॥

लग्यौ वहुरि सो लखन कोऊ सुचि-रुचिर-जलासय ।
जासौं लहि जल-क्रिया जाहिं सब पितर सुरालय ॥
करि लच्छित यह लच्छ पच्छि-पति चायनि चाह्यौ ।
स्रद्धा सील विवेक वरनि कहि साधु सराह्यौ ॥ २२ ॥

पुनि नैननि भरि नीर पीरजुत बचन उचार्‌यौ ।
अप्रमेय-तप-कपिल-साप तव पितरनि जार्‌यौ ॥
लहि यह लौकिक आप ताप तिनकौ नहिं जैहै ।
सात समुंदर सींचि न बाड़व-ज्वाल जुड़ैहै ॥ २३ ॥

तिनके तारन कौ उपाय दुस्साध्य महा है ।
पै तिहिं स्रम-हित हंस-बंस बर बाध्य महा है ॥
केवल गंग-तरंग पाप यह टारि सकति है ।
कपिल-साप सौं ब्रह्मद्रव उद्धारि सकति है ॥ २४ ॥

धर्म-धीर जो बीर इन्हैं तारन मन ठानै।
सो स्रम साधि अभंग गंग इहिँ आस्रम आनै॥
परत छार सो धार तुरत सिगरे तरि जैहैं।
कपिल-साप को दाप पाप के ताप नसैहैं॥ २५॥

कोऊ अपर उपाय तिन्हैं तारन कौ नाहीं।
हम करि गूढ़ बिचार चारु देख्यौ मन माहीं॥
तातैं अब लै तुरग तात तुम सपदि सिधावौ।
जोहत बाट भुआल काल जनि बृथा बितावौ॥ २६॥

अंसुमान करि कान बिस्नु-बाहन की बानी।
ह्वै बिस्मित-चित नमित-सीस बहु बिनय बखानी॥
कह्यौ सपुलकित गात बात सुनि तात तिहारी।
गुप्त-गंग-गुन-गान-सुनन-स्रद्धा उर धारी॥ २७॥

तातैं करि अब कृपा कहौ प्रनतारति-बारन।
अपर नदिनि सौँ अधिक गंग-महिमा कौ कारन॥
जो कपिलहु कौ कठिन साप करि दूरि सकति है।
परम-पाप-पर्बतहु चटकि चकचूरि सकति है॥ २८॥

अंसुमान की मंजु बचन-रचना-चतुराई।
सुनि खगपति-मति-सीवँ फड़कि गुनि ग्रीव हलाई॥
सुमिरि गंग-गुन-रूप भए सुख-मगन एक छन।
पुनि सँभारि उर धारि धीर बोले प्रमुदित-मन॥ २९॥

अहो तात हम कहा गंग की बात चलावैं।
सहस सारदा सेस जाहि कहि पार न पावैं॥
पूरन ब्रह्म-स्वरूप विगत-बकवाद वही है।
निर्गुन-सगुन-विबाद-बीच मर्जाद वही है॥ ३० ॥
कोटिनि बिधि-हरि-हरहिँ बिबिध जो नाच नचावत।
निज इच्छा-अनुसार सृजत पोषत विनसावत॥
वह ताही कौ द्रवीभूत सुभ रूप बिमल है।
ताहीतैं ताके प्रभाव कौ भाव प्रबल है॥ ३१ ॥
ताकी महिमा अति महान को जानि सकत है।
पारावार अपार कौन करि पार सकत है॥
सेवत ताहि बिरंचि संचि सादर मन लाए।
हरि हर ताके भूरि भाग पर रहत सिहाए॥ ३२ ॥
ब्रह्मा-पुत्र बसिष्ठदेव कुल-इष्ट तिहारे।
जानत गंग-प्रभाव-भाव त्रिभुवन तैं न्यारे॥
निज-नाथहिँ सुनि कहत कथा उतपति की ताकी।
हमहूँ कछु मति सरिस बात बूझी महिमा की॥ ३३ ॥
माया ब्रह्म स्वरूप जुगल तामैं इक थल हैं।
भुक्ति-मुक्ति-फल दिव्य दोऊ ताकैं करतल हैं॥
कोउ न असंभव काज ताहि बिनहूँ कछु कारन।
एकै बात बिहाइ पाइ पापी नहिँ तारन॥ ३४ ॥
इमि गुनत गंग-गुन-गन गहकि गरुड़-गिरा गद्गद भई।
मनु प्रबल प्रबाह अथाह की तरल तरंगनि परि गई॥ ३५ ॥

चतुर्थ सर्ग

अंसुमान सुनि गुप्त गंग-महिमा मन-मानी।
हाथ जोरि पुनि पच्छि-नाथ सौं बिनय बखानी ॥
सुनि यह रुचिर रहस्य-बात तव तात अनोखी।
अजगुत भयौ महान जाति चित-वृत्ति न तोखी ॥ १ ॥

स्रद्धा बढ़ी अपार अपर बृत्तांत सुनन की।
तव आनन सौं चुवत चारु सुभ सुमन चुनन की ॥
तातैं पूछन चहत कछुक उर ठाइ ढिठाई।
बालक जानि अजान धरौ जनि रोष-रुखाई ॥ २ ॥

कोटिनि बिधि हरि संभु आदि सुर-गन तुम भाषे।
सबकौ नेता कह्यौ एक जाके सब राखे ॥
ताकौ कछु सुभ नाम धाम अरु काम बखानौ।
जातैं यह भ्रम-भौंर-परचौ मन लहै ठिकानौ ॥ ३ ॥

बहुरि कहौ सो अति अनूप जल-रूप भयौ क्यौं।
बिधिहीं कैं गृह पूज्य सकल सुर-भूप भयौ क्यौं ॥
महा-मोह-तम-तोम भरचौ उर-ब्योम प्रकासौ।
ज्ञान-भानु स-मलान करत संसय-अहि नासौ ॥ ४ ॥

सुनत कुँवर की विनय दीन छल-हीन सुहाई।
गुनत गंग-कल-कथा-सुनन की आतुरताई॥
हरिजानहु-हिय हुलसि कहन-सद्धा सरसानी।
इमि मुख-मग ह्वै अति उदार बानी उमगानी॥ ५॥

यह इतिहास पुनीत महा-मुद-मंगल-कारी।
जद्यपि परम रहस्य देव-मुनिहूँ-मन-हारी॥
तउ अधिकारी जानि तुम्हैं हम कछुक सुनावत।
कहत सुन्यौ निज प्रभुहिँ तत्त्व ताकौ गहि गावत॥ ६॥

अखिल-कोटि-ब्रह्मांड-परम-प्रभुता-ध्रुव-धारी।
कृस्नचंद आनंद-कंद स्वच्छंद-बिहारी॥
नित नव लीला ललित ठानि गोलोक-अजिर मैं।
रमत राधिका-संग रास-रस-रंग रुचिर मैं॥ ७॥

इक दिन लहि कातिक-पुनीत-पूनौ मन-भाई।
श्रीराधा-उत्सव महान अति आनँद-दाई॥
बिधि हरि हर लै मुख्य देव गोलोक सिधाए।
जुगल-दरस की सरस लालसा लोचन लाए॥ ८॥

देखि तहाँ की परम रम्य सुखमा सुघराई।
तजी चकित-चित-चखहुँ सुभाविक चंचलताई॥
लहि अमंद आनंद एकटक देखि रहन कौ।
लूट्यौ सुर-गन लाहु नैन अनिमेष लहन कौ॥ ९॥

बन उपबन आराम ग्राम पुर नगर सुहाए।
लसत ललित अभिराम चहूँ दिसि अति छबि छाए॥
बत्तिस-बन-संयुक्त बीच बृंदाबन राजत।
गोबर्द्धन गिरिराज मंजु मनि-मय छबि छाजत॥ १० ॥

दिब्य द्रुमनि की पाँति लसतिँ सब भाँति सुहाई।
ललित लता बहु लहलहातिँ जिनसौं लपटाई॥
स्यामबरनि मन-हरनि नदी कृस्ना अति निर्मल।
कलित-कंज-बहु-रंग बहति तहँ मंजु मधुर-जल॥ ११ ॥

सीतल सुखद समीर धीर परिमल बगरावत।
कूजत बिबिध बिहंग मधुप गूँजत मनभावत॥
वह सुगंध वह रंग ढंग की लखि टटकाई।
लगति चित्र सी नंदनादि बन की चटकाई॥ १२ ॥

जहँ-तहँ गोपी बृंद-बृंद सानंद कलोलतिँ।
जुगल-प्रेम-मद-छाक-छकी डगमग मग डोलतिँ॥
थिर-बर-बैस अनूप-रूप गुन-गर्ब-गसीली।
बिबिध-बिलास-हुलास-रास-रँग-रत्त रसीली॥ १३ ॥

जित-तित सुरभि सबत्स चरतिँ बिचरतिँ सुखसानी।
बिबिध-बरनि मनहरनि तरुनि सुभ-गुन-सरसानी॥
हेम-कलित सुठि स्रृंग पुच्छ-मंडित-मुकताली।
पग नूपुर-झनकार झूल की झलक निराली॥ १४ ॥

मध्य कच्छ मैं अरुन अच्छ अच्छयबट राजत।
मनहु लोक-पति-सीस छत्र मानिक-मय छाजत॥
कोटि-चंद-द्युति-दिब्य लसत तहँ चारु चँदोवा।
सज्जित बिबिध बिधान लाइ सब साज सँजोवा॥ १५॥

ताके नीचैं सुघर सहस-दल कमल सुहायौ।
अति बिचित्र जिहिँ चित्र न सब्दनि जात खँचायौ॥
सुभ षोड़स-दल कमल अमल राजत तिहिँ ऊपर।
अष्ट दलनि कौ बहुरि बनज सोभित ताहू पर॥ १६॥

तीन्यौं क्रम सौं अधिक अधिक सोभा-सरसाए।
पद्मराग बहु-रंग लाइ रचि रुचिर बनाए॥
कंचन-मय किंजलक-दलक-द्युति झलमल झलकति।
मर्कत-मनि-कृत-कलित-कर्निका-छबि छुटि छलकति॥१७॥

कंजहि सी सुख-पुंज परम अति अजगुतहाई।
सुबरन माहिँ सुगंध मनिनि मैं कोमलताई॥
तिहिँ थल की सुखमा अनूप कासौं कहि आवै।
जो माया निज-प्रभु-बिलास-हित हुलसि बनावै॥ १८॥

मध्य कंज पर मंजु रतन-सिंहासन सोहै।
जाकी सुखमा कहत सहम-मनि-धर-मन मोहै॥
ताल-मेल सौं मेलि रतन बहु-रंग लगाए।
जिनकी द्युति सौं कोटि नवग्रह रहत चकाए॥ १९॥

तापर लखे बिराजमान बर जुगल-बिहारी।
गौर - स्याम - दोउ - तेज - तत्त्व-मृदु - मूरति-धारी ॥
घनीभूत सुभ सुद्ध सच्चिदानंद अखंडित।
ब्रह्म अनादि सु आदि-सक्ति-जुत गुन-गन-मंडित ॥ २० ॥

इक इक बाहिँ उमाहि किए गलबाहिँ बिराजैँ।
इक इक कर बड़भाग बनज बंसी कल भ्राजैँ ॥
मनु तमाल पर सोनजुही की लसै माल बर।
स्याम-तामरस-दाम प्रफुल्लित सोनजुही पर ॥ २१ ॥

नील पीत अभिराम बसन द्युति-धाम धराए।
मनहु एक कौ रंग एक निज अंग अँगाए ॥
निज-निज-रुचि-अनुहार धरे दोउ दिब्य बिभूषन।
जो तन-द्युति की दमक पाइ चमकत ज्यौँ पूषन ॥ २२ ॥

उर बिलसत सुभ पारिजात के हार मनोहर।
सब लोकनि की फूल-गंध के मूल सुघर बर ॥
चारु चंद्रिका मंजु मुकुट छहरत छबि-छाए।
मनहु रतन तन-तेज पाइ सिर चढ़ि इतराए ॥ २३ ॥

बिपुल पुलक दुहुँ गात परसपर सरस परस के।
पीत नील मनि माहिँ मनौ अंकुर सुचि रस के ॥
सुधि करि बिबिध बिलास फुरति अँग-अंग फुरहरी।
मनु सुखमा कैँ सिंधु उठति आनँद की लहरी ॥ २४ ॥

दोउ दोउनि कौं निरखि हरषि आनँद-रस चाखत।
दोउ दोउनि की सुरुचि मूक भावनि सौं राखत॥
दोउ दोउनि की प्रभा पाइ इकरँग हरियाने।
इक-मन इक-रुचि एक-प्रान इक-रस सरसाने॥ २५॥

मुखनि मंद मुसकानि कृपा-उमगानि बतावति।
चखनि चपलता चारु ढरनि-आतुरी जतावति॥
जो ब्रह्मांड निकाय माहिँ सुखमा सुघराई।
द्वै दल ताके परम बीज के सुभ सुखदाई॥ २६॥

लखि वह सुखद समाज-साज वह निखिल निकाई।
वह माधुरी स-लौन तथा वह मधुर लुनाई॥
भए देव-गन मगन दृगनि आनँद-जल छायौ।
बलिहारी कहि रहे मौन गद्गदि गर आयौ॥ २७॥

यह देवनि की देखि दसा प्रभु जन-हितकारी।
कृपा-दृष्टि सौं हेरि हरषि हिय-हिलग निवारी॥
बहुरि पूछि कुसलात मंजु मृदु बचन उचारयौ।
आसन उचित दिवाइ सबनि सादर बैठारयौ॥ २८॥

लगी सारदा प्रेम-पुलकि कल कीरति गावन।
बीना मधुर बजाइ झूमि नूपुर झनकावन॥
लय-लीकनि सौं चारु चित्र बहु-भाय खँचाए।
रुचिर राग-रँग पूरि हृदय-दृग लोल लुभाए॥ २९॥

भई सभा सब दंग रंग ऐसौ कछु माच्यौ।
प्रेमानंद अमंद मनहु तहँ तन धरि नाच्यौ॥
सुनि वह गान-बिधान लगे सुर सकल सराहन।
ब्रह्मदेव हिय हुलसि बंक संकर-दिसि चाहन॥ ३०॥

सिव सुजान तब उमगि डमकि डमरू सुख-पागे।
रचि तांडव रस-भूमि जुगल-गुन गावन लागे॥
भरचौ भूरि आनंद हृदय तिहिँ लगे उलीचन।
पौन-पटल पर भव्य भाव अंतर के खीचन॥ ३१॥

सकल कला के परम-धाम संकर अबिकारी।
प्रभु-गुन-गान सुजान सभा अवसर मनहारी।
सब संघट मिलि मंजु बँध्यौ इमि समौ सुहायौ।
भए देव-गन मुग्ध देह-अध्यास सिरायौ॥ ३२॥

इमि बाढ्यौ आनंद-सिंधु सुधि-बुधि-लय-कारी।
आपुहुँ ह्वै सिव मगन गान की सुरति बिसारी॥
तब सब संज्ञा पाइ दीठि जो इत-उत फेरी।
बिस्मय लह्यौ महान जुगल-मूरति नहिँ हेरी॥ ३३॥

सिंहासन चहुँ पास अमल जल-रासि लखाई।
गौर-स्याम-द्युति-दाम ललित लहरनि छबि छाई॥
ह्वै अति बिह्वल बिकल लगे सुर सकल बिसूरन।
आरत-नाद बिषाद-बाद सौँ सब दिसि पूरन॥ ३४॥

चतुरानन धरि ध्यान जानि तब मरम प्रकास्यौ ।
सबनि धरायौ धीर पीर-संसय-तम नास्यौ ।।
संभु-गान-सुख-सुधा-सिंधु सुभ की लहि लहरैं ।
दोउ लावन्य-स्वरूप द्रवित ह्वै यह छिति छहरैं ।। ३५ ।।

यह सुनि सब सुख पाइ उमगि अस्तुति-अनुरागे ।
पुनि-दरसन-हित करन बिनय अति आतुर लागे ।।
प्रभु मनसा लहि संभु जगत-हित पर चित दीन्यौ ।
मुक्ति-दीप भरि नेह प्रकासन कौ प्रन कीन्यो ।। ३६ ।।

तब श्रीसक्ति-समेत भक्ति-बस-बिस्व-बिहारी ।
बिरही-दुख-कातर कृपाल प्रनतारति-हारी ।।
घनीभूत ह्वै फेरि दरस दै हृदय सिराए ।
कृपा अनुग्रह मनहु जुगल बिग्रह धरि आए ।। ३७ ।।

तिनकैँ संगहि भई प्रगट इक बाल मनोहर ।
अखिल-लोक-सुख-पुंज-मंजु-जीवन-देबी बर ।।
दोउ-सुख-संपति-परम-मूल-धन-बृद्धि-रमा सी ।
बहुरि-दरस-रस-अलह-लाहु-आनंद-प्रभा सी ।। ३८ ।।

स्यामा सुधर अनूप-रूप गुन-सील-सजीली ।
मंडित-मृदु-मुख-चंद-मंद-मुसक्यानि-लजीली ।।
काम-बाम-अभिराम-सहस-सोभा-सुभ-धारिनि ।
साजे सकल सिँगार दिब्य हेरत हिय-हारिनि ।। ३९ ।।

प्रियतम कौ लावन्य प्रिया की मंजु मिठौनी।
दोउ मिलि ताकैं अंग-अंग अद्भुत मिठ-लौनी॥
सुखमा-संग उमंग महा महिमा की धारे।
मनहु रूप-गुन-सार मेलि तन अतन सँवारे॥ ४० ॥

प्रभु के पावन प्रबल भाव सौं चाव चढ़ाई।
श्री-राधा-कल-कृपा-बानि की कानि पढ़ाई॥
गंगा नाम पुनीत स्रवन-रसना-मन-रंजिनि।
प्रबल-प्रभाव-अमोघ महा-अघ-ओघ-बिभंजिनि॥ ४१ ॥

लागी ललकि लुभाइ स्यामसुंदर-मुख जोहन।
निज जोहन कैं भाय बिस्व-मोहन-मन मोहन॥
ताकौ रूप अनूप अकथ गुन भाव लजौंहैं।
लखि सोउ सुख सरसाइ भए रस-बस ललचौंहैं॥ ४२ ॥

निरखि नीठि निज ओर परति दुहुँ-दीठि कनैाड़ी।
अनख-घटा अति सघन घूमि राधा-उर औंड़ी॥
उठी चमक चित भए सजल दृग-छोर छबीले।
प्रगटे सब्द कठोर भाव बरसे तरजीले॥ ४३ ॥

देखि रोष कौ रंग गंग कछु सकुचि सकानी।
पुनि गुनि प्रेम-प्रसंग मनहिं मन मृदु मुसकानी॥
सूच्छम बपु धरि बहुरि बेगि प्रभु-अंग समाई।
अर्धांगिनि को कहै भई सर्बांगिनि भाई॥ ४४ ॥

रहे देव-गन मगन विनय बहु विस्तारन मैं।
प्रभु के सगुन चरित्र-चित्र चित-पट-धारन मैं।
ब्रह्मद्रव कौ रूप दृगनि भरि देखि न पाए।
तातैं ताके दरस-लाभ-हित बहुरि ललाए॥ ४५॥

स्रुति-मंत्रनि बिस्तारि बिबिध अस्तुति बिधि ठानी।
सुर-गन की अभिलाष-उमग कर जोरि बखानी॥
तब प्रभु परम उदार सकुचि स्वामिनि-मुख चाह्यौ।
उन स-मंद-मुसकानि अनुग्रह दृगनि उमाह्यौ॥ ४६॥

तिहिँ अवसर सुख-पुंज मंजु सुभ-गुन-सरसाए।
सकल-सुकृत-फल-कल्प-बिटप-ऋतुराज सुहाए॥
सुनि सुर-गन-बर-बिनय गंग नाथहु मनसा ज्वै।
पद-नख तैं पुनि प्रगट भई जल-रूप रुचिर ह्वै॥ ४७॥

लखि वह पावन पाथ सकल मिलि माथ नवायौ।
बहु भाँतिनि अभिनंदि महा आनंद मनायौ॥
कोउ छ्वायौ लै सीस दृगनि कोउ अंजन कीन्यौ।
कोउ मार्जन कोउ उमगि आचमन करि सुख भीन्यौ॥ ४८॥

प्रभु-रुख चाहि उमाहि चतुर बिधि भक्ति-भाव भरि।
लियौ कमंडल पूरि बेद-मंत्रनि मंडल करि॥
लहि प्रभु-दरस-प्रसाद देव मन मोद मढ़ाए।
करि करि दंड-प्रनाम सकल निज धामनि आए॥ ४९॥

राखत सजग बिरंचि ताहि धारे निज छाती।
जथा जुगावत सूम संचि संपति जिमि थाती॥
ताही कैं बल अकर-सुकर की कानि करत ना।
अनमिल रचत प्रपंच रंच उर धरक धरत ना॥ ५० ॥

सुन्यौ गंग-गुन-ग्राम तात सुभ-धाम सुहायौ।
कहत-मान जिहिँ लखौ छार औरै रँग छायौ॥
गंग कहा यह गंग-कथा ऐसहिँ जहँ ह्वैहै।
सकल तहाँ कौ पाप-ताप-कलमष ध्रुव ध्वैहै॥ ५१ ॥

अब तुम तुरत तुरंग-संग निज पुर पग धारौ।
सगरराज-मख-काज पूरि जग सुजस पसारौ॥
पुनि करतब्य बिचारि बारि पावन सोइ आनौ।
पितरनि तारन-हेत अपर कोउ जतन न जानौ॥ ५२ ॥

इमि कहत कहत खग-पति पुलकि प्रेम-बारि ढारन लगे।
मनु मानस-मुकताहल हुलसि सुरसरि-सिर वारन लगे॥ ५३ ॥

पंचम सर्ग

अंसुमान करि कान गंग-गुन-गान मनोहर।
धर्‍यौ संचि तिहिँ ध्यान माहिँ जिमि धर्म-धरोहर॥
पुनि पितरनि के दुसह-दसा-दुख पर चित दीन्यौ।
करि उसास कौ मंत्र आँसु सौँ तरपन कीन्यौ॥ १॥

परि पायनि धरि धीर माँगि आयसु खगपति सौँ।
चल्यौ कुँवर कर जोरि कुसल बिनवत जगपति सौँ॥
कपिलदेव-पद पूजि पाइ कछु सांति सिरायौ।
सुमिरत गंग तुरंग-संग सेना मैँ आयौ॥ २॥

दै पताल लौँ नीव भानु-कुल-सुकृत-सदन की।
श्री उतारि तहँ धारि सकल बृत्रारि-बदन की॥
जड़ जमाइ भवितव्य भगीरथ-जस-बर बट की।
सोधि खानि गंभीर भूति लै पुन्य-पुरट की॥ ३॥

हय-पावन कौ हरष सोक पितरनि कौ धारे।
कीन्यौ पलटि पयान कछुक उमगत मन मारे॥
निकस्यौ सदल सपाति हुमसि हरियात बिबर तैँ।
सगर-सौख्य-तरु कढ़्यौ उर्बरा के उर बर तैँ॥ ४॥

स्रम करि काटत बाट बेगि बिन मग बिलँबाए।
हय-रच्छा-हित सकट-ब्यूह अति बिकट बनाए॥
कीरति-मुकता-पुंज मंजु मग मैं बगरावत।
आए अवध-समीप सकल सुर सुकृत मनावत॥ ५॥

समाचार यह पाइ धाइ आए अगवानी।
परिजन पुरजन स्वजन सचिव सज्जन सेनानी॥
प्रेम-बारि दृग ढारि लग्यौ कोउ ललकि जुहारन।
कोउ असीस सुभ देन सीस कोउ मनि-गन वारन॥ ६॥

सगर-सुतनि कौ समाचार तब लौं तहँ ब्याप्यौ।
सब मुख-कंजनि खिलत सोक-पाला परि छाप्यौ॥
सादर चले लिवाइ सुभासुभ भाय बिचारत।
बिकचत सकुचत मधुर छार जल नैननि ढारत॥ ७॥

नृप-नंदहिँ अभिनंदि धीर गंभीर धरावत।
सांति-पाठ सुभ पढ़त सदासिव-संकर ध्यावत॥
उर आनँद सौं सोक सोक सौं आनँद मारे।
पहुँचे ज्यौं त्यौं आइ जज्ञ-मंडप के द्वारे॥ ८॥

तहँ बसिष्ठ कुल-इष्ट सिष्ट द्विज-गन सँग लीने।
मिले आनि सुख मानि पढ़त मंगल मुद-भीने॥
अंसुमान परि पाय पाइ आसिष हरषायौ।
पौरि धूरि धरि सीस जज्ञसाला मैं आयौ॥ ९॥

नृपहिँ निरखि अकुलाइ धाइ पायनि लपटायौ।
छिति-पति उमगि उठाइ छोहि छाती छपटायौ॥
दै असीस सुभ सूँघि सीस सादर बैठार्यौ।
पै ज्यौंहीं करि प्रेम छेम कौ प्रस्न उचार्यौ॥ १० ॥

पर्यौ करेजौ थामि थहरि त्यौं रोइ कुँवर वर।
निकसे सकसि न वचन भयौ हिचकिनि गद्गर गर॥
आँसु ढारि भरि साँस सचिव-सुत तब अगुवायौ।
काहू विधि सविषाद विषम संवाद सुनायौ॥ ११ ॥

उमड़्यौ सोक-समुद्र भई विप्लुत मख-साला।
बड़वागिनि सी लगन लगी जज्ञागिनि-ज्वाला॥
गयौ तुरत फिरि सब उछाह आनँद पर पानी।
बढ़ी पीर की लहर धीर-मरजाद नसानी॥ १२ ॥

लगे सकल सिर धुनन कांड करुना कौ माच्यौ।
मनु बनाइ बहु बपुष बरुन तिहिँ मंडप नाच्यौ॥
लागीं खान पछाड़ धाड़ मारन सब रानी।
मानहु माजा मज्जि तलफि सफरी अकुलानी॥ १३ ॥

भयौ भूप जड़-रूप अंग के रंग सिराए।
बज्राघात सहस्र साठ संगहिँ सिर आए॥
कढ़्यौ कंठ नहिँ बैन न नैननि आँसु प्रकास्यौ।
आनन भाव-विहीन गाँव ऊजड़ लौं भास्यौ॥ १४ ॥

मुनिहुँ सकल ह्वै बिकल लगे लोचन-जल मोचन।
नृप की दारुन दसा देखि औरै कछु सोचन॥
कोउ परखत मुख मलिन हाथ छाती कोउ लावत।
अभिमंत्रित-जल-छीँट छिरकि कोउ सीस जगावत॥ १५॥

तब गुरुवर धरि धीर कियौ निर्धारित मन मैं।
कोसल-पति-कुसलात बनति केवल रोवन मैं॥
जौ अति उबलत सोक-सलिल दृग-पथ नहिँ पैहै।
भूरि भाप सौं पूरि तुरत तौ घट फटि जैहै॥ १६॥

मनुष-सुभाव-प्रभाव बहुरि गुनि मुनि बिज्ञानी।
अति अचूक उपयुक्त जुक्ति ठानो हित-सानी॥
अंसुमान कौं पकरि पानि नृप अंग लगायौ।
करुना-क्रंदन करत कुँवर कंपत लपटायौ॥ १७॥

लहि सन्निधि सम-सील पूत के धरकत हिय की।
अनुकंपित कछु भईं सिरा नरपति जग-प्रिय की॥
ज्यौं कोउ तंत्री-बाज उठत कछु गाजि गमक सौं।
सम-सुर सात्म्य समीप-बाद की नाद-धमक सौं॥ १८॥

सनै सनै पुनि परन लगीं नरपति की पलकैं।
आनन पर लहरान लगीं माननि की झलकैं॥
तब बसिष्ठ इमि कह्यौ नृपति निरखौ निज नाती।
काकौ यह असमंज कुँवर की सौंपत थाती॥ १९॥

यह सुनि करुना-भाव भूरि उर-अंतर जागे।
ह्वै कातर बिललाइ फूटि नृप रोवन लागे॥
लहि अवसर उपयुक्त लगे गुरुवर समुझावन।
सिवि-दधीचि-हरिचंद-कथा कहि धीर धरावन॥ २० ॥

पुनि मुनि भृगु-बरदान गूढ़ पर ध्यान दिवायौ।
सुमति-सुमति-प्रति-बदित-वाक्य-आसय समुझायौ॥
अस्वमेध की बहुरि महा महिमा मुनि भाषी।
जिहिं सिहात करि बिघन-पात सहसा सहसाखी॥ २१ ॥

कह्यौ न उचित बिषाद-बाद मख-मंडप माहीँ।
यामैँ सोच असोच सोक कौ अवसर नाहीँ॥
मानि मन्यु मन अकरमन्य ह्वै जौ रहि जैहौ।
कुल-कीरत-अभिराम-सहित निज नाम नसैहौ॥ २२ ॥

तातैँ धीरज धारि प्रथम मख-काज पुरावौ।
स्वर्ग-लोक मैँ अति बिसोक निज ओक बनावौ॥
पुनि गुनि करौ उपाय पाप तिनके मेटन कौ।
जातैँ बनै बनाव बहुरि तहँ मिलि भेटन कौ॥ २३ ॥

अंसुमान तब उमगि गरुड़-इतिहास बखान्यौ।
पितरनि-तारन-हेत गंग-अवतारन ठान्यौ॥
बहुरि सगर-गर लागि मधुर बैननि समुझायौ।
साठ-सहस-छत-छन्न हियैँ निज नेह लगायौ॥ २४ ॥

गुरु-निदेस सिसु-प्रेम नेम कुल-कानि-रखन कौ।
मख-पूरन कौ भाव चाव पुनि सुतनि लखन कौ॥
सब मिलि ह्वै घन सघन भूप-मन मंडप कीन्यौ।
तापन-तपन निवारि नीर धीरज कौ दीन्यौ॥ २५॥

तब सम्हारि चित-बृत्ति सांति भूपति उर आनी।
हरि-इच्छा धरि सीस मानि अंतर-हित-सानी॥
गुरु-पद पूजि मनाइ ईस बिधिवत मख कीन्यौ।
असन-बसन-गो-हेम-दान बिप्रनि कौं दीन्यौ॥ २६॥

अस्वमेध सौं ह्वै निबृत्त नृप पुर पग धार्‌यौ।
सुरसरि-आनन कौ उपाय बहु भाय बिचार्‌यौ॥
लाई घात अनेक बात नहिँ कछु बनि आई।
ऐसहिँ सोच-बिचार माहिँ नृप-आयु सिराई॥ २७॥

अंसुमान तब भयौ भानु-कुल-कीरति-कारी।
धर्म-धीर बर बीर प्रजा-परिजन-दुख-हारी॥
सिंहासन-सौभाग्य मुकुट कौ मान-मढ़ैया।
छात्र-छत्र कौ छेम चमर-चित चाव-चढ़ैया॥ २८॥

कछु दिन न्याय चुकाइ प्रजा-गन तिन परिपोषे।
बिप्र पितर सुर दान मान पूजा सौं तोषे॥
रहत रहित-उतसाह सदा पितरनि हित सोचत।
गुनत गरुड़-इतिहास गूढ़ लोचन जल मोचत॥ २९॥

निसि-दिन करत विचार चारु सुरसरि ल्यावन कौ।
पितरनि तारि अपार छेम सौं छितिछावन कौ ॥
पै साधन-उपयुक्त-जुक्ति कोउ चित्त चढ़ति ना।
सोइ चिंता की सदा चुभति नट-साल कढ़ति ना ॥ ३० ॥

इक दिन गुरु-गृह जाइ पाय परि अति मृदु बानी।
करि अस्तुति बहु भाँति भूरि-स्रद्धा-सरसानी ॥
कह्यौ जोरि जुग हाथ अनुग्रह नाथ तिहारैं।
सुख संपति सौभाग्य जदपि सब साथ हमारैं ॥ ३१ ॥

तउ पितरनि की दुसह-दसा-चिंता नित जागति।
परत न चल चित चैन नैन निद्रा नहिँ लागति ॥
प्रन कैं भार अपार सदा सिर रहत निचौंहौं।
अवलोकत सब जगत लगत निज ओर हँसौंहौं ॥ ३२ ॥

सगर-सुतनि की सुनी दसा दारुन-दुख-सानी।
सुरसरि-महिमा मंजु गरुड़ की गूढ़ कहानी ॥
तुम सर्वज्ञ सुजान भानु-कुल-नित-हितकारी।
धरहु माथ मुनि-नाथ हाथ गुनि आरत भारी ॥ ३३ ॥

सुरधुनि आनन कौ उपाय करुना करि भाषौ।
होइ सुगम कै अगम सकुच गहि गोइ न राखौ ॥
अंसुमान की देखि दसा कातर मुनि-नायक।
कहे पुलकि भरि नैन बैन इमि धीरज-दायक ॥ ३४ ॥

धन्य भानु-कुल-भानु धन्य जग जनम तिहारौ ।
तुम बिन कौन महान ठान यह ठाननहारौ ॥
तुम बुधि-बल-गुन-धाम बीर छत्री-ब्रत-धारी ।
होहु न आतुर सुनहु धीर धरि बात हमारी ॥ ३५ ॥

बिसद बिहंगम-राज गंग-महिमा जो भाषी ।
ताके सत्य-प्रमान माहिँ हमहूँ सुचि साखी ॥
महा पाप अरु साप सकल सो टारि सकति है ।
साठ सहस की कहा जगत उद्धार सकति है ॥ ३६ ॥

कोउ न असंभव काज न कछु दुस्तर तिहिँ आगे ।
ताकौ गुन-गन गुनत रहत जम-गन भय-पागे ॥
जो करि जुक्ति अनेक सुकबि अत्युक्ति प्रकासैँ ।
सो सब गंग-प्रसंग माहिँ सहजोक्तिहि भासैँ ॥ ३७ ॥

पै अति दुस्तर काज भूमि ताकौ संचारन ।
तारन कठिन न ताहि कठिन ताकौ अवतारन ॥
फनि जिमि मनि तिमि रहत सदा बिधि ताहि जुगाए ।
स्रुति-बिधि-रच्छित मंजु कमंडल माहिँ पुगाए ॥ ३८ ॥

जो कोउ कष्ट उठाइ जाइ सेवै गिरि कानन ।
साधि तपस्या उग्र इतौ तोषै चतुरानन ॥
कै वह सहसा उमगि देहि कछु वह जल पावन ।
तौ आवै महि गंग होइ सब काज सुहावन ॥ ३९ ॥

यह सुनि मुनि-पद पूजि तुरत नृप आज्ञा लीनी।
तप-विधि संजम-नियम-रीति उर अंकित कीनी॥
लहि आयसु हरषाइ आइ निज गेह गुहार्‌यौ।
मंत्री मित्र कलत्र पुत्र सब आनि जुहार्‌यौ॥ ४० ॥

दै दिलीप कौं राज विविध नृप-काज बुझायौ।
मंत्रिनि मित्रनि सौंपि प्रजा-पालन समुझायौ॥
वर-विहंगपति-वदित गंग-महिमा सब भाखी।
बहुरि दई दृढ़ आन राखि दिग-पालनि साखी॥ ४१ ॥

जो इहिँ आसन होइ राज-सासन-अधिकारी।
सुरसरि-आनन-हेत करै कानन तप भारी॥
जब लौं कोउ पतंग-बंस महि गंग न आनै।
तब लौं सलभ पतंग-अर्थ इहिँ कुल-हित मानै॥ ४२ ॥

यौं कहि चले भुआल नेह नातौ सब तोरे।
सुरपुर-दुर्लभ राज-सदन-सुख सौं मुख मोरे॥
कियौ जाइ हिमवंत-सिखर तप महा कठिन तिन।
अंत लह्यौ सुरलोक-बास बीतैं आयुस-दिन॥ ४३ ॥

तब दिलीप तप-काज विदा माँगी गुरुवर सौं।
पै तिन जान न दियौ ग्रस्त गुनि रोग-रगर सौं॥
रोगी ऋनिया अंग-भंग आतुर अबिचारी।
ये नहिँ काहू भाँति तपस्या के अधिकारी॥ ४४ ॥

यह विचारि नृप राज-भार मंत्रिनि सिर धार्यौ।
दान मान सौं तोषि सवनि इमि वचन उचार्यौ॥
अव हम तप-हित जात गंग जासौं महि आवै।
होइ मिलन पुनि आइ ईस जौ आस पुरावै॥ ५० ॥

वहुरि जाइ गुरु-गेह नेह-जुत माथ नवायौ।
कहि मृदु वचन विनीत सकल संकल्प सुनायौ॥
सिख आसिष वहु भाँति पाइ सव संसय सार्यौ।
करि प्रनाम उर सुमिरि ईस वन-मग पग धार्यौ॥ ५१ ॥

इमि कर्मवीर सहसा भवन त्यागि गवन कानन कियौ।
छुट स्रद्धा साहस धीर अरु धर्म न कछु निज सँग लियौ॥५२॥

———

षष्ठ सर्ग

जाइ गोकरन-धाम नृपति अति आनँद पायौ।
मनु गज तोरि अलान उमगि कदली-बन आयौ॥
सिद्धि-छेत्र सुभ देखि नेत्र तहँ ललकि लुभाए।
मनहु सोधि मनि-खानि-सोध सोधी हुलसाए॥ १॥

तरु बल्ली बहु भाँति फलित प्रफुलित तहँ भावैं।
मनहु कामना सफल होन के सगुन दिखावैं॥
सर सरिता सब स्वच्छ जथा-इच्छित जल पावत।
मनु मन-आसय पूर होन के जोग जतावत॥ २॥

गुंजत मंजु मलिंद-पुंज मकरंद-अघाए।
मनहु मुदित मन करत तोष के घोष सुहाए॥
पसु-पच्छिनि के बृंद करत आनंद-नाद कल।
धन्यबाद मनु देत पाइ बांछित जीवन-फल॥ ३॥

बिद्याधर गंधर्व सिद्ध तप-बृद्ध सयाने।
बिचरत तहाँ बिनोद-मोद-मंडित मनसाने॥
मुनि-आस्रम अभिराम ठाम-ठामनि छबि छावैं।
साधक-गन पैं सिद्धि तहाँ खोजति चलि आवैं॥ ४॥

सो सुभ धाम ललाम देखि भूपति-मन मान्यौ।
तहँ तप-कष्ट उठाइ इष्ट-साधन ठिक ठान्यौ॥
पूजि छेत्र-पति पुलकि माँगि आयसु मुनि-गन सौं।
लगे भूप-मनि करन कठिन जप तप तन मन सौं॥ ५॥

कंद मूल तिन करि अहार कछु वार विताए।
कछुक दिवस तृन पात परे पुहुमी चुनि खाए॥
कछु दिन वारि बयारि पान करि कछु दिन टेरे।
इहिँ विधि कष्ट उठाइ किए ब्रत घोर घनेरे॥ ६॥

रह्यौ भूप कौ रूप भावना के लेखा सौ।
अस्ति नास्ति कैं बीच गनित-कल्पित रेखा सौ॥
सुर-मुनि अग्र समग्र देखि तप उग्र सिहाए।
नृपहिँ निवारन-हेत सवनि बहु हेत बुझाए॥ ७॥

रहे ध्यान धरि जपत भूप विधि-मंत्र निरंतर।
भरि जिय यहै उमंग गंग आवैँ अवनी पर॥
तरैँ सगर के सुवन भुवन मुद मंगल छावै।
डरैँ देखि जम-दूत पुरी पुरहूत वसावै॥ ८॥

बीते बरस अनेक टेक जब नैँकु न टारी।
सह्यौ सीस धरि धीर बीर हिम आतप बारी॥
तब ताकैँ तप-तेज तपन लाग्यौ महि-मंडल।
उफनि उठ्यौ ब्रह्मंड भभरि भय भर्‍यौ अखंडल॥ ९॥

सुर नर मुनि गंधर्ब जच्छ किन्नर कहलाने।
नभ-जल-थल-चर विकल सकल थल थल हहलाने॥
जानि पर्‌यौ त्रिपुरारि तमकि तीजौ दृग खोल्यौ।
त्रासनि परी पुकार चारमुख-आसन डोल्यौ॥ १० ॥

लै सँग देव-समाज काज बिसराइ जगत कौ।
उठि आतुर अकुलाय ल्याय मन भाय भगत कौ॥
चले प्रसंसत हँसत हंस हाँकत चतुरानन।
पहुँचे आनि तुरंत तपत भूपति जिहिँ कानन॥ ११ ॥

कृपा-छलक-छवि नैन बैन गद्‌गद मुख मुलकित।
बर बरदान-उमंग-तरंगनि सौं तन पुलकित॥
मृदुल मनोहर उर-उछाह-कारी स्रम-हारी।
सुघर सब्द सौं कलित ललित बिधि गिरा उचारी॥ १२ ॥

अहो भूप-कुल-कमल-अमल-अति-प्रबल-प्रभाकर।
कियौ कठिन तप जाहि निरखि रबि लगत सुधाकर॥
जाकैं प्रखर प्रभाव पदारथ परम सुलभ सब।
तजि सँकोच जो चहहु लहहु सानँद हमसौं अब॥ १३ ॥

सुनत बैन सुख-दैन भगीरथ नैन उघारे।
बिबुधनि-बलित प्रसन्न-बदन बिधि निकट निहारे॥
तप-तापैं तन परी सुखद आसा-जल-धारा।
सुधा स्रवन भरि चली उबरि ढरि नैननि द्वारा॥ १४ ॥

सरक्यौ सब दुख-दंद चंद-आनन मुद छरक्यौ।
फरक्यौ सुभग सरीर चीर बलकल कौ दरक्यौ ॥
जोरि पानि परि भूमि भूमि-पति सिर पद परसे।
सब देवनि सादर प्रनाम करि अति सुख सरसे ॥ १५ ॥

पाद अरघ आसन सुमूल फल फूल सुहाए।
अरपि जथा-विधि विनय-वचन कर जोरि सुनाए ॥
जय चतुरानन चतुर चतुर-जुग-जगत-विधायक।
जय सुर-नर-मुनि-वंद्य सदा सुंदर-बर-दायक ॥ १६ ॥

तव दरसन सौं आज काज पूजे सब मन के।
लखि यह देव-समाज साज छाए सुख-गन के ॥
धर्‌यौ माथ पर हाथ नाथ तौ देहु यहै बर।
तारन-बिरद-उतंग गंग आवैं पुहुमी पर ॥ १७ ॥

असन बसन बर बाम धाम भव-विभव न चाहैं।
सुरपुर-सुख विज्ञान मुक्तिहूँ पै न उमाहैं ॥
अति उदार करतार जदपि तुम सरबस-दानी।
हम लघु जाचक चहत एक चिल्लू-भर पानी ॥ १८ ॥

ताही सौं तप-ताप दूरि करि अंग जुड़ैहैं।
ताही सौं सब साप-दाप पितरनि के जैहैं ॥
ताही सौं जग सकल महा मुद मंगल छैहैं।
ताही सौं सुख पाइ लाख अभिलाष परैहैं ॥ १९ ॥

यह सुनि मृदु मुसकाइ चतुर चतुरानन भाष्यौ ।
धन्य धन्य महि-पाल मही-हित पर चित राख्यौ ॥
तुम्हैं न कछुहुँ अदेय एक यह असमंजस पर ।
गंग-धार कौ वेग धरै किमि धरनि धरा-धर ॥ २० ॥

धमकि धूम सौं धाइ धँसै जबहीं ब्रह्मद्रव ।
उथलपथल तल होइ रसातल मचहि उपद्रव ॥
जगत जलाहल होइ कुलाहल त्रिभुवन ब्यापै ।
ह्वै सनद्ध कटिबद्ध कौन थिरता फिरि थापै ॥ २१ ॥

तातैं कहत उपाय एक अतिसय हितकारी ।
आराधौ तुम आसुतोष संकर त्रिपुरारी ॥
सो सब भाँति समर्थ अर्थ-दायक चित-चाहे ।
करत न नैंकु बिचार चार फल देत उमाहे ॥ २२ ॥

बिकल सकल जग जोहि छोहि करुना जिन धारी ।
निधरक धरि गर गरल सुरासुर-बिपति बिदारी ॥
गर्ब खर्ब करि सर्ब कठिन कालहु दुर्दर कौ ।
चिर जीवन थिर कियौ मारकंडे मुनिबर कौ ॥ २३ ॥

सोइ इक सकत सँभारि गंग कौ बेग बिपुल बर ।
करि जु कृपा बर देहिँ लेहिँ यह काज सीस पर ॥
सकल मनोरथ होहिँ सिद्ध तब तुरत तिहारे ।
यौं कहि बिधि सब सुरनि सहित निज लोक सिधारे ॥ २४ ॥

यह सुनि महा धीर भूपति-मन नैँकु डग्यौ ना।
संसय संका सोक सोच मैँ पलहुँ पग्यौ ना॥
वरु बाढ़ी चित चोप ओप आनन पर आई।
अमित उमंग-तरंग अंग-अंगनि मैँ छाई॥ २५॥

अब तो हम सुभ ढंग गंग-आवन कैा पायैा।
पारावार-अपार-परे कैाँ पार लखायैा॥
यह विचार निर्धारि हियेँ आनँद सरसायैा।
धन्यवाद ह्वै नीर निकरि नैननि तैँ आयैा॥ २६॥

पुनि लागे तप तपन जपन संकर दुख-भंजन।
बर-दायक करुना-निधान निज-जन-मन-रंजन॥
इक अँगुठा ह्वै ठाढ़ गाढ़ व्रत संजम लीने।
सहे विविध दुख गहे मैान इक दिसि मन दीने॥ २७॥

खान पान बस किए नीँद नारी बिसराए।
और ध्यान सब धोइ देवधुनि की धुनि लाए॥
गयौ बीति इहिँ रीति एक संबतसर सारौ।
उठ्यौ गगन लौँ गाजि भूप कैा सुजस-नगारौ॥ २८॥

तब तजि अचल समाधि आधि-हर संकर जागे।
निज-जन-दुख मन आनि कसकि करुना सैाँ पागे॥
आतुर चले उमंग-भरे भंगहु नहिँ छानी।
कृपा-कानि वरदान-देन-हित हिय हुलसानी॥ २९॥

डगमग पग मग धरत तजे बरदहु हरबर सौं।
आए तिहिँ बन सघन बिभूषित जो नरबर सौं॥
देखि भूप कौ कुसित रूप नैननि जल छायौ।
स्रृंगी-नाद बिषाद-हरन सुख-करन बजायौ॥ ३० ॥

दृग उघारि त्रिपुरारि निरखि नृप निपट चकाए।
रहे ललकि छबि-छकित पलक बिन पलक गिराए॥
सुंदर अमल अनूप भव्य भव-रूप सुहायौ।
मनु तप-तेज-स्वरूप भूप-आगैँ चलि आयौ॥ ३१ ॥

हेम-बरन सिर जटा चंद-छबि-छटा भाल पर।
कलित कृपा की कटा-घटा लोचन बिसाल पर॥
फनि-पति-हार-बिहार-भूमि बच्छस्थल राजै॥
जग-अवलंब प्रलंब भुजनि फरकति छबि छाजै॥ ३२ ॥

दृढ़ कटि-धाम ललाम चाम सुभ दुरद-दुवन कौ।
गूढ़ जानु जो भार भरत सहजहिँ त्रिभुवन कौ॥
अरुन-कोकनद चरन सरन जो असरन जन के।
जिनकौ गुन-गुंजार करत मन-अलि मुनि-गन के॥ ३३ ॥

गौर सरीर बिभूति भूति त्रिभुवन की सोहै।
आनन परम-उदार-प्रकृति-छबि-छलक बिमोहै॥
उमगि कृपा कौ बारि पगनि डगमग उपजावत।
तकि तकि तांडव नचत दमकि-दम डमरु बजावत॥ ३४ ॥

मानि कामना सिद्ध जानि तूठे दुख-हारी।
भयौ भूप-मन मगन बढ़ेँ आनँद-नद भारी॥
किं-कर्तव्य-विमूढ़ गूढ़ भायनि भरि भाए।
रहे थकित से दंग छनक बिन अंग डुलाए॥ ३५॥

पुनि कछु धीर बटोरि जोरि कर परे धरनि पर।
बरुनिनि झारत पाय पखारत नैन-नीर-झर॥
कंपित गात लखाति प्रेम-पुलकावलि विकसति॥
उमगि कंठ लौँ आइ बात हिचकी ह्वै निकसति॥ ३६॥

यह करुनामय दृस्य संभु प्रनतारति-हारी।
सके न देखि विसेषि भक्त-दुख भए दुखारी॥
नृपहिँ और कछु करन कहन कौ ठौर न दीन्यौ।
अंतरजामी जानि भाव अंतर कौ लीन्यौ॥ ३७॥

भुज उठाइ हरषाय बाँकुरौ बिरद सँभार्यौ।
दियौ विसद बर-राज भूप कौ काज सँवार्यौ॥
हम लैहैँ सिर गंग दंग जग होहि जाहि ज्वैं।
यौँ कहि अंतर्धान भए नृप रहे चकित ह्वै॥ ३८॥

उठि महि सौँ महिपाल लगे चारौँ दिसि हेरन।
कृपा-सिंधु करुना-निधान कहि इत उत टेरन॥
सिव कौ सुखद स्वरूप चखनि भरि चहन न पाए।
मन की मनहीँ रही हाय कछु कहन न पाए॥ ३९॥

इहिँ गिलानि की आनि घटा आसा घुँघराई।
भयौ मंद सुख-चंद दंद-उम्मस उमगाई ॥
पै गुनि हर के बैन नैन आनँद-रस बरसे।
जप तप कौ करि विहित विसर्जन अति सुख सरसे ॥ ४० ॥

इहिँ भाँति भगीरथ भूप वर साधि जोग जप तप प्रखर।
लीन्यौ सिहात जिहिँ लखि अमर मान-सहित चित-चहत बर ॥ ४१ ॥

सप्तम सर्ग

तब नृप करि आचमन मारजन सुचि-रुचि-कारी।
प्रानायाम पुनीत साधि चित-बृत्ति सुधारी॥
बहुरि अंजली बाँधि ध्यान बिधि कौ बिधिवत गहि।
माँगी गंग उमंग-सहित पूरब प्रसंग कहि॥ १॥

बद्ध-अंजली देखि भूप बिनवत मृदु बानी।
मुसकाने बिधि आनि चित्त "चिल्लू-भर पानी"॥
लागे करन बिचार बहुरि जग-हित-अनहित पर।
पाप-पुन्य-फल-उचित-लाभ-मर्याद खचित पर॥ २॥

पुनि गुनि वर वरदान आपनौ औ संकर कौ।
सगर-सुतनि कौ साप-ताप तप नर-पति वर कौ॥
सुमिरि अखिल-ब्रह्मांड-नाथ मन माथ नवायौ।
सब संसय करि दूरि गंग-दैबौ ठिक ठायौ॥ ३॥

किए सजग दिग-पाल ब्याल-पति-हृदय दृढ़ायौ।
कोल कमठ पुचकारि भूधरनि धीर धरायौ॥
स्वस्ति-मंत्र पढ़ि तानि तंत्र मुद-मंगल-कारी।
लियौ कमंडल हाथ चतुर चतुरानन-धारी॥ ४॥

इत सुरसरि की धाक धमकि त्रिभुवन भय-पागे।
सकल सुरासुर विकल बिलोकन आतुर लागे॥
दहलि दसौं दिग-पाल बिकल-चित इत उत धावत।
दिग्गज दिग दंतनि दबोचि दृग भभरि भ्रमावत॥ ५॥

नभ-मंडल थहरान भानु-रथ थकित भयौ छन।
चंद चकित रहि गयौ सहित सिगरे तारागन॥
पौन रह्यौ तजि गौन गह्यौ सब भौन सनासन।
सोचत सबै सकाइ कहा करिहै कमलासन॥ ६॥

बिंध्य - हिमाचल - मलय - मेरु - मंदर - हिय हहरे।
ढहरे जदपि पषान ठमकि तउ ठामहिँ ठहरे॥
थहरे गहरे सिंधु पर्व बिनहूँ लुरि लहरे।
पै उठि लहर-समूह नैकुँ इत उत नहिँ ढहरे॥ ७॥

गंग कह्यौ उर भरि उमंग तौ गंग सही मैं।
निज तरंग-बल जौ हर-गिरि हर-संग मही मैं॥
लै स-बेग-बिक्रम पताल-पुरि तुरत सिधाऊँ।
ब्रह्म-लोक कौं बहुरि पलटि कंदुक-इव आऊँ॥ ८॥

सिव सुजान यह जानि तानि भौंहनि मन माषे।
बाढ़ी-गंग-उमंग-भंग पर उर अभिलाषे॥
भए सँभरि सन्नद्ध भंग कैं रंग रँगाए।
अति दृढ़ दीरघ सृंग देखि तापर चलि आए॥ ९॥

बाघंबर कौ कलित कच्छ कटि-तट सौं नाध्यौ ॥
सेसनाग कौ नागबंध तापर कसि बाँध्यौ ॥
ब्याल-माल सौं भाल बाल-चंदहिँ दृढ़ कीन्यौ।
जटा-जाल कौ झाल-ब्यूह गह्वर करि लीन्यौ ॥ १० ॥

मुंड-माल यज्ञोपवीत कटि-तट अटकाए।
गाड़ि सूल सृंगी डमरू तापर लटकाए ॥
बर बाहँनि करि फेरि चाँपि चटकाइ आँगुरिनि।
बच्छस्थल उमगाइ ग्रीव उचकाइ चाय भिनि ॥ ११ ॥

तमकि ताकि भुज-दंड चंड फरकत चित चोपे।
महि दबाइ दुहुँ पाय कछुक अंतर सौं रोपे ॥
मनु बल-बिक्रम-जुगल-खंभ जगथंभन-हारे।
धीर-धरा पर अति गँभीर-दृढ़ता-जुत धारे ॥ १२ ॥

जुगल कंध बल-संध हुमकि हुमसाइ उचाए।
दोउ भुज-दंड उदंड तोलि ताने तमकाए।
कर जमाइ करिहायँ नैन नभ-ओर लगाए।
गंगागम की बाट लगे जोहन हर ठाए ॥ १३ ॥

बल बिक्रम पौरुष अपार दरसत अँग-अँग तैँ।
बीर रौद्र दोउ रस उदार झलकत रँगरँग तैँ ॥
मनहु भानु-सितभानु-किरन-बिरचित पट बर की।
झलक दुरंगी देति देह-द्युति सिवसंकर की ॥ १४ ॥

बचन-बद्ध त्रिपुरारि ताकि सन्नद्ध निहारत।
दियौ ढारि बिधि गंग-बारि मंगल उच्चारत॥
चली बिपुल-बल-बेग-बलित बाढ़ति ब्रह्मद्रव।
भरति भुवन भय-भार मचावति अखिल उपद्रव॥ १५॥

निकसि कमंडल तैं उमंडि नभ-मंडल-खंडति।
धाई धार अपार बेग सौं बायु बिहंडति॥
भयौ घोर अति सब्द धमक सौं त्रिभुवन तर्जे।
महा मेघ मिलि मनहु एक संगहिं सब गर्जे॥ १६॥

भरके भानु-तुरंग चमकि चलि मग सौं सरके।
हरके बाहन रुकत नैंकु नहिं बिधि हरि हर के॥
दिग्गज करि चिक्कार नैन फेरत भय-थरके।
धुनि प्रतिधुनि सौं धमकि धराधर के उर धरके॥ १७॥

कढ़ि-कढ़ि गृह सौं बिबुध बिबिध जाननि पर चढ़ि-चढ़ि।
पढ़ि-पढ़ि मंगल-पाठ लखत कौतुक कछु बढ़ि-बढ़ि॥
सुर-सुंदरी ससंक बंक दीरघ हग कीने।
लगीं मनावन सुकृत हाथ काननि पर दीने॥ १८॥

निज दरेर सौं पौन-पटल फारति फहरावति।
सुर-पुर के अति सघन घोर घन घसि घहरावति॥
चली धार धुधकारि धरा-दिसि काटति कावा।
सगर-सुतनि के पाप-ताप पर बोलति धावा॥ १९॥

विपुल बेग सौं कबहुँ उमगि आगे कौं धावति।
सो सौ जोजन लौं सुढार ढरतिहिँ चलि आवति॥
फटिकसिला के बर बिसाल मन बिस्मय बोहत।
मनहु बिसद छद अनाधार अंबर मैँ सोहत॥ २० ॥

स्वाति-घटा घहराति मुक्ति-पानिप सौं पूरी।
कैधौं आवति झुकति सुभ्र-आभा-रुचि रूरी॥
मीन-मकर-जलब्यालनि की चल चिलक सुहाई।
सो जनु चपला चमचमाति चंचल-छबि-छाई॥ २१ ॥

रुचिर रजतमय कै बितान तान्यौ अति बिस्तर।
झिरतिँ बूँद सो झिलमिलाति मोतिनि की झालर॥
ताके नीचैँ राग-रंग के ढंग जमाए।
सुर-बनितनि के बृंद करत आनंद-बधाए॥ २२ ॥

बर-बिमान-गज-बाजि-चढ़े जो लखत देव-गन।
तिनके तमकत तेज दिब्य दमकत आभूषन॥
प्रतिबिंबित जब होत परम प्रसरित प्रबाह पर।
जानि परत चहुँ ओर उए बहु बिमल बिभाकर॥ २३ ॥

कबहुँ सु धार अपार-बेग नीचे कौं धावै।
हरहराति लहराति सहस जोजन चलि आवै॥
मनु बिधि चतुर किसान पौन निज मन कौ पावत।
पुन्य-खेत-उतपन्न हीर की रासि उसावत॥२४॥

कै निज नायक बँध्यौ बिलोकत ब्याल पास तैं ।
तारनि की सेना उदंड उतरति अकास तैं ॥
कै सुर-सुमन-समूह आनि सुर-जूह जुहारत ।
हर हर करि हर-सीस एक संगहि सब डारत ॥ २५ ॥

छहरावति छवि कबहुँ कोऊ सित सघन घटा पर ।
फबति फैलि जिमि जोन्ह-छटा हिम-प्रचुर-पटा पर ॥
तिहिँ घन पर लहराति लुरति चपला जब चमकै ।
जल-प्रतिबिंबित दीप-दाम-दीपति सी दमकै ॥ २६ ॥

कबहुँ बायु-बल फूटि छूटि बहु बपु धरि धावै ।
चहुँ दिसि तैं पुनि डटति सटति सिमटति चलि आवै ॥
मिलि-मिलि द्वै-द्वै चार-चार सब धार सुहाई ।
फिरि एकै ह्वै चलति कलित बल बेग बड़ाई ॥ २७ ॥

जैसैं एकै रूप प्रबल माया-बस मैं परि ।
बिचरत जग मैं अति अनूप बहु बिलग रूप धरि ॥
पै जब ज्ञान-बिधान ईस-सनमुख लै आवै ।
तब एकै ह्वै बहुरि अमित आतम-बल पावै ॥ २८ ॥

जल सौँ जल टकराइ कहूँ उच्छलत उमंगत ।
पुनि नीचैं गिरि गाजि चलत उत्तंग तरंगत ॥
मनु कागदी कपोत गोत के गोत उड़ाए ।
लरि अति ऊँचैं उलरि गोति गुथि चलत सुहाए ॥ २९ ॥

कहूँ पौन-नट निपुन गौन कौं बेग उघारत।
जल-कंदुक के बृंद पारि पुनि गहत उछारत॥
मनौं हंस-गन मगन सरद-बादर पर खेलत।
भरत भाँवरैं जुरत मुरत उलहत अवहेलत॥ ३० ॥

कबहुँ वायु सौं विचलि बंक-गति लहरति धावै।
मनहु सेस सित-बेस गगन तैं उतरत आवै॥
कबहुँ फेन उफनाइ आइ जल-तल पर राजै।
मनु मुकतनि की भीर छीर-निधि पर छबि छाजै॥ ३१ ॥

कबहुँ सुताड़ित ह्वै अपार-बल-धार-वेग सौं।
छुभित पौन फटि गौन करत अतिसय उदेग सौं॥
देवनि के दृढ़ जान लगत ताके झकझोरे।
कोउ आँधी के पोत होत कोउ गगन-हिँडोरे॥ ३२ ॥

उड़ति फुही की फाब फबति फहरति छबि-छाई।
ज्यौं परबत पर परत झीन बादर दरसाई॥
तरनि-किरन तापर बिचित्र बहु रंग प्रकासै।
इंद्र-धनुष की प्रभा दिव्य दसहूँ दिसि भासै॥ ३३ ॥

मनु दिगंगना गंग न्हाइ कीन्हे निज अंगी।
नव भूषन नव-रत्न-रचित सारी सत-रंगी॥
गंगागम-पथ माहिँ भानु कैधौं अति नीकी।
बाँधी बंदनवार बिबिध बहु पटापटी की॥ ३४ ॥

इहिँ बिधि धावति धँसति ढरति ढरकति सुख-देनी।
मनहु सवाँरति सुभ सुर-पुर की सुगम निसेनी॥
बिपुल बेग बल बिक्रम कैं ओजनि उमगाई।
हरहराति हरषाति संभु-सनमुख जब आई॥ ३५॥

भई थकित छबि छकित हेरि हर-रूप मनोहर।
ह्वै आनहि के प्रान रहे तन धरे धरोहर॥
भयौ कोप कौ लोप चोप औरै उमगाई।
चित चिकनाई चढ़ी कढ़ी सब रोष-रुखाई॥ ३६॥

छोभ-छलक ह्वै गई प्रेम की पुलक अंग मैं।
थहरन के ढरि ढंग परे उछरति तरंग मैं॥
भयौ बेग उद्वेग पेंग छाती पर धरकी।
हरहरान धुनि बिघटि सुरट उघटी हर-हर की॥ ३७॥

भयौ हुतौ भ्रू-भंग-भाव जो भव-निदरन कौ।
तामैं पलटि प्रभाव पर्‌यौ हिय हेरि हरन कौ॥
प्रगटत सोइ अनुभाव भाव औरै सुखकारी।
ह्वै थाई उतसाह भयौ रति कौ संचारी॥ ३८॥

कृपानिधान सुजान संभु हिय की गति जानी।
दियौ सीस पर ठाम बाम करि कै मन मानी॥
सकुचति ऐंचति अंग गंग सुख-संग लजानी।
जटा-जूट-हिम-कूट सघन बन सिमिटि समानी॥ ३९॥

पाइ ईस कौ सीस-परस आनँद अधिकायौ।
सोइ सुभ सुखद निवास बास करिबौ मन ठायौ॥
सीत सरस संपर्क लहत संकरहु लुभाने।
करि राखी निज अंग गंग कैँ रंग भुलाने॥ ४० ॥

बिचरन लागी गंग जटा-गह्वर-बन-वीथिनि।
लहति संभु-सामीप्य-परम-सुख दिननि निसीथिनि॥
इहिँ बिधि आनँद मैँ अनेक बीते संवत्सर।
छोड़त छुटत न बनत ठनत नव नेह परस्पर॥ ४१ ॥

यह देखि दुखित भूपति भए चित चिंता प्रगटी प्रबल।
अब कीजै कौन उपाय जिहिँ सुरसरि आवै अवनि-तल॥४२॥

अष्टम सर्ग

पुनि नृप उर धरि धीर बरद संकर आराधे।
बिबिध जोग जप जज्ञ नेम ब्रत संजम साधे॥
इक पग ऊपर उनइ सनय बहु बिनय बखानी।
जोरि पानि मृदु बानि सानि ढारत दृग पानी॥ १॥

जय जय भव-भय-हरन दरन दुख-दंद दयामय।
जय जय तरुनादित्य-तेज करुना-बरुनालय॥
जय जय असरन-सरन-भरन जग-बिपति-बिदारन।
जय जय औढर-सरनि-ढरन सुरसरि-सिर-धारन॥ २॥

ब्यापक ब्रह्म-स्वरूप भूप करि सुर जिहिँ जानत।
कहि कहि अकह-अनूप-रूप जिहिँ बेद बखानत॥
जय जय दीन-दयाल प्रनत-प्रतिपाल पुरारी।
काम-क्रोध-मद-मोह-रहित सेवक-हितकारी॥ ३॥

कीन्यौ नाथ सनाथ माथ सुरसरि जो धारी।
तुम बिन सकत सम्हारि कौन ताकौ बल भारी॥
सकल सुरासुर कौ अपार भय-भार निवार्‌यौ।
राख्यौ पैज-प्रमान दियौ बरदान सँभार्‌यौ॥ ४॥

पै कृपाल नहिँ होइ कामना सफल हमारी।
जब लौँ महि न सिँचाइ पाइ सुरसरि-वर-वारी॥
कृपा-कोर सौँ अब कीजै कोउ सुगम प्रनाली।
जातैँ सुरसरि आइ भरै धरनी-सुख-साली॥ ५॥

सुनि विनती गुनि दुखित दास संकर दिन-दानी।
निज विलंब मन मानि सकुच बोले मृदु बानी॥
अहो गंग सुभ-अंग अहो सुख-सागर-संगिनि।
करनि दुरित-भय-भंग तरल-उत्तंग-तरंगिनि॥ ६॥

कीन्यौ अकथ अनूप उग्र तप भूप भगीरथ।
तव आगम तैँ सुगम-करन-हित अगम परम पथ।
लहि बिधि सौँ बरदान मान हमहूँ सौँ पायौ।
तव उतरन आतंक पूरि त्रिभुवन थहरायौ॥ ७॥

तुम मन मानि सनेह सील पहिचानि पुरानी।
करि भूषित मम सीस भरी जग सुजस-कहानी॥
हम तव सुख-प्रद परस पाइ इहिँ भाय लुभाने।
रहे राखि निज संग सरस बहु बरस बिताने॥ ८॥

भई भूप की अति अनूप अभिलाष न पूरी।
जउ असाध्य स्रम साधि लही विधि सौँ निधि रूरी॥
अब तिहिँ निरखि अधीर पीर कसकति अति उर मैँ।
तातैँ तुम जग जाइ सुजस पूरौ तिहुँ पुर मैँ॥ ९॥

हरहु पाप के दाप ताप के पुंज नसावौ।
सुर-पुर उर मैं महि-महिमा कौ चाव उचावौ॥
भए छार जरि सगर-कुमारनि कौं निस्तारौ।
भूप भगीरथ-अति-अनूप-कीरति बिस्तारौ॥ १० ॥

बिलग न मानौ नैकु प्रमानौ गिरा हमारी।
बसिहौ नित मो सीस कबहुँ ह्वैहौ नहिं न्यारी॥
नित तव धार अखंड जटामंडल तैं कढ़िहै।
जिहिं लहि परम प्रमोद गोद बसुधा की मढ़िहै॥ ११ ॥

यह कहि कर गहि जटा सटा लौं सूँति सटाई।
बिंदु सरोबर ओर छोर ताकी लटकाई॥
तातैं निकसि अपार धार परिपूरि सरोबर।
चली उबरि ढरि करि उदोत षट सोत धरा पर॥ १२ ॥

नलिनी नीत पुनीत पावनी ललित ह्लादिनी।
इन तीननि सौं भई आनि प्राची-प्रसादिनी॥
सुभ सुचच्छु बलसंध सिंधु सीता सुपुनीता।
इनसौं पच्छिम चली पढ़ति भूपति-गुन-गीता॥ १३ ॥

पै न भगीरथ-चित-चाहे पथ सौं महि आई।
यह लखि बिलखि भुवाल रहे चिंता अधिकाई॥
आइ सरोबर-तीर धीर धरि भरि दृग बारी।
ह्वै आरत-आधीन दीन बिनती उच्चारी॥ १४ ॥

जय ब्रह्मा-संपत्ति-सार जय जय ब्रह्मद्रव ।
जय महेस-मन-हरनि दरनि दुख-दंद-उपद्रव ॥
जय बृंदारक-बृंद-वंद्य जय हिमगिरि-नंदिनि ।
जय जम-गन-मन-दंड-दान-अभिमान-निकंदिनि ॥ १५ ॥

जदपि बक्र तउ सक्र-सदन की सरल निसेनी ।
जउ नीचे कौं चलति उच्च पद तउ नित देनी ॥
जदपि छुभित अतिकांति सांति-दायनि तउ मन की ।
जउ उज्जल-जल-रूप तऊ रंजनि रुचि जन की ॥ १६ ॥

देहु कृपा-अवलंब अंब त्र्यंबक-गुन धारौ ।
भारत भूमि पवित्र करौ वैभव विस्तारौ ॥
सागर पूरि पताल पैठि तहँहूँ जस छावौ ।
सगर-सुतनि कौं सोक सारि सुर-लोक पठावौ ॥ १७ ॥

सुनि नृप-विनय निदेस गंग गुनि मन महेस कौ ।
सरित सातवीँ होइ गह्यौ पथ पुन्य-देस कौ ॥
भागीरथी-पुनीत-नाम-धारिनि दुख-हारिनि ।
गारिनि जम-गन-दाप पाप-संताप-निवारिनि ॥ १८ ॥

भूप भगीरथ भए दिव्य स्यंदन चढ़ि आगे ।
लगी गंग तिन संग भाग भारत के जागे ॥
स्रृंगनि सिखरनि तोरि फोरि ढाहति ढहरावति ।
औघट घाट अघाट चली निज बाट बनावति ॥ १९ ॥

प्रथम निकसि हिम-कलित कूल पर छबि छहराई ।
पुनि चहुँ दिसि तैं ढरकि ढार धारा ह्वै धाई ॥
चंद्रकांत-चट्टान चंद्रिका परत सुहाई ।
मनु पसीजि रस-भीजि सुधा-सरिता उपजाई ॥ २० ॥

तिहिँ प्रवाह मैं मिलित ललित हिम-कन इमि दमकत ।
सारद बारद माहिँ मनो तारा-गन चमकत ॥
कै वसुधा-सृंगार-हेत करतार सँवारी ।
सुघर सेत सुख-सार तार-बाने की सारी ॥ २१ ॥

कहुँ हिम ऊपर चलति कहूँ नीचैं धँसि धावति ।
कहुँ गालनि बिच पैठि रंध्र-जालनि मग आवति ॥
सरद-घटा की बिज्जु-छटा मानौ लुरि लहरति ।
ऊरध अध मधि माहिँ मचलि मंजुल छबि छहरति ॥ २२ ॥

कहुँ अटूट बहु धार गिरतिँ हिमकूट-तुंड तैं ।
एरावत के सुंड मनहु लटकत भुसुंड तैं ॥
छटकि छींट छबि छाइ छत्र लौं छिति पर छहरै ।
सुंड भर्‌यौ जल मनहु फैलि फुफकारनि फहरै ॥ २३ ॥

इमि हिम-खंड बिहाइ आइ पाहन-पथ मंडति ।
ढरकि ढार इक-डार चली गिरि-खंडनि खंडति ॥
फाँदति फैलति फटति सटति सिमिटति सुढंग सौं ।
सृंगनि बिच बिच बढ़ी गंग सरि भरि उमंग सौं ॥ २४ ॥

कहुँ ढाहे ढोकनि ढुकाइ निज गति अवरोधति।
पुनि ढकेलि ढुरकाइ तिन्हैं पकर्‌यौ मग सोधति॥
कबहुँ चलति कतराइ वक्र नव बाट काटि गहि।
कबहुँ पूरि जल-पूर कूर ऊपर उमंडि बहि॥ २५॥

कहुँ बिस्तर थल पाइ बारि-बिस्तार बढ़ावति।
लघु गुरु बीचि पसारि छंद-प्रस्तार पढ़ावति॥
कै दिग-दंती-दंत-दिव्य-दीरघ-पाटी पर।
लिखति सतोगुन घोटि भूप-जस-रूप रुचिर बर॥ २६॥

पुनि कोउ घाटी बीच भीचि जल-बेग बढ़ावति।
ढुरकत ढोकनि खड़बड़ाइ धुनि-धूम मचावति॥
मनहु भूप कौ अति अनूप वर विरद उचारति।
जम-गन कौ दरि दंभ खंभ ठोकति ललकारति॥ २७॥

हरहराति हर-हार सरिस घाटी सौं निकरति।
भव-भय-भेक अनेक एक संगहि सब निगरति॥
अखिल हंस-बर-बंस घेरि साँकर घर धारे।
भरभराइ इक संग कढ़त मनु खुलत किवारे॥ २८॥

कहुँ कोउ गह्वर गुहा माहिँ घहरति घुसि घूमति।
प्रबल बेग सौं धमकि धूँसि दसहूँ दिसि दूमति॥
कढ़ति फोरि इक ओर घोर धुनि प्रतिधुनि पूरति।
मानहु उड़ति सुरंग गूढ़ गिरि-स्रृंगनि चूरति॥ २९॥

सकल सुरासुर सिद्ध नाग गुह्यक गिरि-बासी।
इत उत हेरत हरबरात हिय भरे उदासी ॥
छाड़ि जोग जप जज्ञ अज्ञ लौं चौंकि चकाए।
जहँ तहँ दौरत दुरत जुरत कर कान लगाए ॥ ३० ॥

बिसद बितुंड दबाइ कुंडलित सुंड भुसुंडनि।
भय भरि नैन भ्रमाइ धाइ पैठत जल-कुंडनि ॥
चीते तिँदुवे बाघ भभरि निज आघ भुलाए।
जित तित दौरत दाबि पुच्छ अरु कान उठाए ॥ ३१ ॥

हरिन चौकड़ी भूलि दरिनि दौरत कदराए।
तरफरात बहुसृंग सृंग झाड़िनि अरुझाए ॥
गहत प्लवंग उतंग सृंग कूदत किलकारत।
उड़ि बिहंग बहु-रंग भयाकुल गगन गुहारत ॥ ३२ ॥

गुफा फारि फहराइ चलत फैलत बर बारी।
मानहु दुख-द्रुम-दलन-काज बिधि रचत कुठारी ॥
सगर-सुतनि के दुरित-जूह पर कै मन-मरकी।
बृंत-ब्यूह रचि चलत सुकृत-सेना नर बर की ॥ ३३ ॥

कै त्रिताप के हरन-हेत सुभ ब्यजन सुहायौ।
बिरचत रुचिर बिरंचि बिसद हिम-पटल-मढ़ायौ ॥
कै हीरक-मय मुकुट मंजु करि महि देवी कौं।
सब लोकनि मैं करत मान ताकौ अति नीकौं ॥ ३४ ॥

इहिँ विधि घाटिनि दरिनि कंदरिनि पैठति निकसति।
कहूँ सिमिटि घहराति कहूँ कल-धुनि-जुत बिकसति॥
कहूँ सरल कहुँ वक्र कहूँ चलि चारु चक्र-सम।
कहुँ सुढंग कहुँ करति भंग गिरि-सृंग सक्र-सम॥ ३५॥

गंगोत्तरि तैं उतरि तरल घाटी मैं आई।
गिरि-सिर तैं चलि चपल चंद्रिका मनु छिति छाई॥
वक-समूह इक संग गोति गिरि-तुंग-सिखर तैं।
गए फैलि दुहुँ-बाहु बीचि कैं फावि फहर तैं॥ ३६॥

तहाँ राजऋषि जह्नु परम हरि-भक्त प्रतापी।
द्वादस-अच्छर-महामंत्र के अविकल-जापी॥
पूरि भूरि अनुराग जाग कोउ सुभ ठान्यौ हो।
सकल देव-मुनि-गोत न्यौंति सानँद आन्यौ हो॥ ३७॥

ताकौ वह मख-बाट बिसद वह ठाट सजायौ।
औचक गंग-तरंग आइ करि भंग बहायौ॥
भयौं जह्नु-उर कोप जज्ञ कौ लोप निहारत।
आमंत्रित द्विज-देव-सिद्ध-अपमान बिचारत॥ ३८॥

सुमिरत हरि कौतुकिहिँ कछुक कौतुक उर आयौ।
उठि सम्हारि धृत धारि सबनि सादर सिर नायौ॥
हरि-माया की परम प्रबल महिमा मन धारी।
हरि हरि करि हरषाइ अंजली उमगि पसारी॥ ३९॥

ताकैं अंतर-ओक बसत गो-लोक-बिहारी।
सक्ति-सहित सुख-धाम भक्ति-बस जन-दुख-हारी ॥
जाकौ बिछुरन-छोभ अजौं सुरसरि उर राखति।
सफरिनि-मिसि धरि अमित नैन दरसन अभिलाषति ॥४०॥

यह अवसर सुभ सुलभ पाइ सो दुख-मेटन कौं।
पैठि जह्नु-उर-अजिर सपदि प्रभु सौं भेटन कौं ॥
अति मंगल मन मानि गंग आनँद सरसानी।
निज बिस्तार समेटि अंजली आनि समानी ॥ ४१ ॥

कियौ जह्नु तिहिँ पान हरषि हरि-नाम उचारत।
भावी भूत कुपूत पूत निज कुल के तारत ॥
सुर मुनि सब तिहिँ समय परम बिस्मय सौं पागे।
पर्वत-नृप-महिमा महान गुनि गावन लागे ॥ ४२ ॥

यह दुर्घट घट देखि भगीरथ निपट चकाए।
सुठि स्यंदन तैं उतरि तुरत आतुर तहँ आए ॥
माथ नाइ कर जोरि सकल सुर मुनि नृप बंदे।
गदगद स्वर सति भाय जह्नु सादर अभिनंदे ॥ ४३ ॥

सगर-सुतनि की कही प्रथम अति करुन-कहानी।
पुनि बिरंचि-हर-कृपा गंग जासौं महि आनी ॥
कह्यौ भयौ अपराध घोर यह सब बिन जानैं।
अनजानत की चूक-हूक पर साधु न मानैं ॥ ४४ ॥

छोभ-छलक अब छाड़ि छमा-छादिन चित कीजै।
ब्रह्म रुद्र लौं है दयाल सुरसरि सुभ दीजै॥
नित निज-महिमा-संग गंग तुव जस जग छैहै।
धारि जाह्नवी नाम हरषि तुव सुता कहैहै॥ ४५॥

दीन वचन सुनि भए सकल द्विज देव दुखारी।
जह्नु-जोग-बल बरनि भगीरथ बात सकारी॥
ह्वै प्रसन्न तब जह्नु कृपा-चितवनि सौं चाह्यौ।
अति असेस अवधेस-महास्रम-सुकृत सराह्यौ॥ ४६॥

सगर-सुतनि की दुसह दसा गुनि अति दुख मान्यौ।
सकल-जगत-हित माहिँ निजहिँ बाधक जिय जान्यौ॥
करुना-सिंधु-तरंग तुंग इमि उर मैँ बाढ़ी।
बन्यौ न राखत गंग पलटि काननि सौं काढ़ी॥ ४७॥

बैसाख सुक्क सुभ सप्तमी गंग-नाम-गौरव गह्यौ।
जब निकसि जह्नु के अंग सौं गंग जाह्नवी-पद लह्यौ॥ ४८॥

नवम सर्ग

सादर सबहिँ नवाइ सीस अवनीस भगीरथ।
बढ़े बहुरि अगुवाइ 'धाइ चढ़ि बायु-बेग रथ॥
चली गंगहू संग अंग ओजनि उमगाए।
ज्यौँ कल-कीरति रहति सदा सुकृतिहिँ पछियाए॥ १॥

पुन्य-पाथ परिपूरि करति पर्बत-पथ पावन।
सब प्रतिबंध नसाइ आइ गिरि-कंध सुहावन॥
कूदी धरि धुनि-धमक घोर ठाढ़ी खाढ़ी मैँ।
परी गाज सी गाजि पुहुमि-पातक-पाढ़ी मैँ॥ २॥

अति उछाह सौँ उछरि परी फहराति फलंगति।
प्रबन-पाद सौँ दूरि भूरि-बल-पूरि उमंगति॥
चढ़त चंद की चारु छटा ज्यौँ छिति छबि छावति।
उच्च-धाम-अभिराम-पाँति पच्छिम-दिसि आवति॥ ३॥

फलकि फेन उफनाइ आइ राजत जुरि जल पर।
मनहु सुधा-निधि महत सुधा उमहत तरि तल पर॥
फबति फुही की फाब धूम-धारा लौँ धावति।
गिरि-कोरनि पर मोर-पंख-तोरन-छबि छावति॥ ४॥

जिनके हाड़ पहाड़-खाड़-बिथुरित तिहिँ परसत।
सो लहि लहि वर वपुष जाइ सुरपुर सुख सरसत॥
जुरत न तिते बिमान जिते तारति इक संगहि।
निज प्रताप-बल पर पहुँचावति गंग-तरंगहि॥ ५॥

बिपुल वेग सौं जदपि गाजि गवनत जल तर कौं।
तउ सफरिनि हित होत सुपथ उमहत ऊपर कौं॥
निज अधीन पर ज्यौं प्रवीन विक्रम न जनावैं।
वरु दै बाहँ उमाहि उच्च पद पर पहुँचावैं॥ ६॥

देव दनुज गंधर्व जच्छ किन्नर कर जोरे।
निज निज नारिनि संग अंग बहु भावनि बोरे॥
भय विस्मय विस्वास आस आनँद उर छाए।
दुहुँ कूलनि सुख-मूल स्वच्छ पर परे जमाए॥ ७॥

अद्भुत अकथ अनूप गंग-कौतुक कल देखत।
अति अलभ्य यह लाभ ललकि लोचन कौ लेखत॥
स्वस्ति-पाठ कोउ पढ़त कोऊ अस्तुति गुनि गावत।
कोऊ भगीरथ भव्य भाग को राग कढ़ावत॥ ८॥

कोउ झुकि झाँकन-चाय बाढ़ पर पाय जमावत।
पै झाईं सौं झुलमुलाइ पाछैं हटि आवत॥
पुनि साहस करि सँभरि सकल खाढ़ी मैं उतरत।
पग पग पर दृग दिए किए चित-बित अच्युत-रत॥ ९॥

कोउ ढिठाइ नियराइ ठाइ पग झुकि जल परसत।
सुधा-स्वाद-सुख बाद बदत रसना रस सरसत॥
ताकी देखादेख सेष सब चाव उचावत।
हिचकिचात ललचात नीर नेरैं चलि आवत॥ १० ॥

सींचि सीस आचम्य रम्य सुखमा सुभ देखत।
नंदनबन-आनंद-अमित-लेखा लघु लेखत॥
कोउ ठमकत गहि ठाम ठठोली करि कोउ ठेलत।
कोउ भाजत छल छाइ धाइ कोउ ताहि पछेलत॥ ११ ॥

कोउ सीतल-जल-छींट छपकि काहू पर छिरकत।
कोउ काहू कौं पकरि पीठि-पाछैं हटि हिरकत॥
कोउ अधार कछु धारि धँसत जानू लगि जल मैं।
हरबराइ पर कढ़त थमत नहिं पूर प्रबल मैं॥ १२ ॥

कोउ कटि-तट पट बाँधि खेल अटपट अति ठावत।
इत तैं उत जल-धार-ढार-नीचैं है धावत॥
यह कौतुक कल अपर सकल बिस्मित-चित चाहत।
साधु साधु कहि गहि जुहारि जुरि ताहि सराहत॥ १३ ॥

जहँ कोउ मंजुल मोड़ तोड़-गति तरल निवारत।
प्रबल-बेग जल फैलि सांति-सुखमा बिस्तारत॥
तहाँ जूह के जूह जुरत जल-केलि-उमाहे।
बहु बिनोद आमोद करत आनँद अवगाहे॥ १४ ॥

कोउ नहात कोउ तिरत कोऊ जल-अंतर धावत।
रविहिं अर्घ कोउ देत कोऊ हर-हर-धुनि लावत॥
लै चुभकी कोउ भजत सीत-भय-भीत विलोकत।
कोउ परिहास-विलास-हेत ताकौं गहि रोकत॥ १५॥

कोऊ अच्छरिनि छरत छेड़ि छंटि छींट उछारत।
तिनकी उझकनि झुकनि झाँकि कहुँ अनत निहारत॥
कोउ कहुँ तरु-तर बैठि बिसद यह दृस्य निहारत।
मोद-आँसु-मुक्तालि प्रकृति-देवी पर वारत॥ १६॥

सुमुखि-सुलोचनि-बृंद मंद मुसकात कलोलत।
दर-विकसित अरविंद मनौ वीचिनि-बिच डोलत॥
जगर-मगर तन-रतन-जोति जल-तल इमि चमकति।
तरनि-किरन ज्यौं परत दिव्य दरपन पर दमकति॥ १७॥

न्हाइ आइ पुनि तीर चीर सुंदर सब धारत।
करि षोड़स उपचार आरती उमगि उतारत॥
जहँ तहँ मंगल-रंग-संग साजे जुवती-गन।
नाचत गावत विविध बजावत बाद मगन-मन॥ १८॥

इहिँ बिधि सुरसरि सुर-समाज-सेवित सुख-सानी।
भरि बिनोद गिरि-गोद मोद-मंडित उमगानी॥
कढ़त सिमिटि इक ओर घोर धुनि सौं नभ पूरति।
ढोँकनि ढेला करति ढुरत ढेलनि चकचूरति॥ १९॥

कहूँ तरल कहुँ मंद कहूँ मध्यम गति धारे।
दरति कूल-द्रुम-मूल ढहावति कठिन करारे॥
द्वै गिरि-स्रेनिनि बीच बढ़ति उमड़ति इमि आवति।
ज्यौं बादर की जोन्ह बिसद बीथिनि मैं धावति॥ २०॥

गिरि-बिहार इमि करति हरति दुख-दुरित-समूहनि।
देत निरासिनि आस त्रास जम-गन के जूहनि॥
कर्न-प्रयाग बिभूषि कर्न-गंगा सँग लावति।
उत्तर-कासी कौ महत्त्व लोकोत्तर ठावति॥ २१॥

भरि टिहरी-उत्संग संग भृगु-गंग समेटति।
देव-प्रयागहिँ पूरि अलक-नंदहिँ भरि भेँटति॥
हृषीकेस सौं होति सैल-बंधहिँ बिलगावति।
हरिद्वार मैं आइ छेम छिति-मंडल छावति॥ २२॥

जेठ मास सित पच्छ स्वच्छ दसमी सुखदाई।
तिहिँ दिन गंग उमंग-भरी भूतल पर आई॥
दस-बिधि-पातक-हरन-हेत फहरान फरहरा।
तातैं ताकौ पर्‌यौ नाम अभिराम दसहरा॥ २३॥

सुर-धुनि आवन-धूम धाम-धामनि मैं धाई।
चहुँ दिसि तैं चलि चपल जुरे बहु लोग लुगाई॥
चारहु बरन पुनीत नीति-नाधे गृह-बासी।
जोगी जंगम परमहंस तापस संन्यासी॥ २४॥

कोउ नहान कोउ दान करत कोउ ध्यान सुधारत।
कोउ स्रद्धा सौं पितर स्राद्ध तरपन करि तारत॥
कोऊ बेद बेदांत मथत रस सांत उगाहत।
कोऊ चढ़्यौ चित-चाव भक्ति के भाव उमाहत॥ २५॥

कोउ निरूपि निर्बान पुलकि सानँद दृग फेरत।
कोउ अघाइ जल-स्वाद पाइ ताकौं हँसि हेरत॥
कोउ अन्हात पछितात न पुनि जग-जनम बिचारत।
कोउ कुटीर-हित हुलसि तीर पर ठाम निहारत॥ २६॥

कवि कोविद कोउ भव्य भाव उर अंतर खाँचत।
निरखि उतंग तरंग रंग प्रतिभा कौ जाँचत॥
सुमिरि गिरा गननाथ गंग कौं माथ नवावत।
रुचिर काव्य-कल-करन-काज चित चाव चढ़ावत॥ २७॥

उज्जल-अमल-अनूप-रूप-उपमा बहु सोधत।
मुकता-पानिप सरिस स्वच्छ कहि कछु मन बोधत॥
पै तिहिँ अचल बिचारि चित्त तासौं बिचलावत।
पुनि बरनन कौं बरन बरन आनन नहिँ आवत॥ २८॥

बिपुल बेग बल बिक्रम कौं गुनि गिरि-तरु-गंजन।
तिनकी समता-हेत चेत चित परत प्रभंजन॥
पै तामैँ सुख-परस सरस कौ दरस न देखत।
प्रबल बाह मैँ बहीँ सकल उपमा तब लेखत॥ २९॥

सुचि सीतल जल परखि हरषि ही-तल उमगावत।
हिम-पट-पटतर प्रगटि नैकुँ निज जीव जुड़ावत॥
पै तिहिँ गुनद न जानि हीन-उपमा उर आनत।
आन सीत उपमान परे पाला तर मानत॥ ३० ॥

आधि-ब्याधि-दुख-दोष-दलन-गुन गुनि अभिलाषत।
सकुचि सजीवन-मूरि-स्वरस समता-हित भाषत।
पै ताकैँ सुख-स्वाद माहिँ संसय मन पारत।
तब गुन-गन-निरधार धनंतर कैँ सिर धारत॥ ३१ ॥

मृदुल-माधुरी-मोद कहन-हित हिय हुलसात।
कबहुँ सुकृत-बस सुधा-स्वाद चाख्यौ चित आवत॥
पै सोउ उपमा माहिँ नाहिँ पावत कहि तोलन।
अकथ गंग-जल-स्वाद देत अधरहिँ नहिँ खोलन॥ ३२ ॥

इमि गोचर-गुन गुनत उमगि उपमा निरधारत।
समता असम बिचारि सकल सुरसरि पर वारत॥
रसना रुचिर पखारि धारि प्रतिभा पर पानी।
तारन-परम-प्रभाव चहत बरनन बर बानी॥ ३३ ॥

चित चलाइ चढ़ि चाय लोक तीनहुँ परिसोधत।
पै न कोऊ उपमान ध्यान मैँ आनि प्रबोधत॥
तब सारद-पद-कंज-मंजु मधुकर-मन लावत।
सुमति-स्वच्छ-मकरंद लहत दुख-दंद नसावत॥ ३४ ॥

सुरसरि-सरि-हित बिसरि आन उपमान न आनत।
कहे-सुने चित गुने सकल अनुचित सो जानत॥
सुमिरि गंग कहि गंग गंग-संगति अभिलाषत।
भाषि गंग-सम गंग रंग कविता कौं राखत॥ ३५॥
सुमुखि-बृंद सानंद सुघर तन रतन सजाए।
बिहरत बलित-बिनोद ललित लहरत जल भाए॥
तारनि-सहित अमंद-चंद-प्रतिबिंब मनोहर।
मनु बहु बपु धरि फबत फलक-जुत फटिक सिला पर॥ ३६॥
गोरे गात सुहात स्वच्छ कलधौत छरी से।
तिन मैं चल चख चमचमात सुंदर सफरी से॥
मनु जग-जीतन-काज साज सब सबल बनावत।
मीनकेतु निज-केतु-मीन सुभ जल बिचरावत॥ ३७॥
तैरत बूड़त तिरत चलत चुभकी लै जल मैं।
चमकति चपला मनहु सरद-घन-बिमल-पटल मैं॥
तरल तरंगनि-बीच लसतिँ बहुरंगनि सारी।
मनहु सुधा-सरि-बाढ़ परी सुरपुर-फुलवारी॥ ३८॥
अंग-संग जल-धार धँसत जिनके मुकता-गन।
सो करि धरि बर बपुष जाइ बिहरत नंदनबन॥
जिन मृग के मद परत छूटि घट-तट तैँ पानी।
तिनकी करत सचोप चंद-बाहन अगवानी॥ ३९॥
इमि निकसि गंग गिरि-गेह तैँ गह्यौ पंथ महि-ओक कौ।
करि हरिद्वार कौँ अति सुगम द्वार अगम हरि-लोक कौ॥ ४०॥

निर्जन वन लहि सकल हेलि जल-केलि उमाहैं।
दुसह दुपहरी-दाह बिसरि सरि-सलिल सराहैं॥
मनु बन-सुषमा सुखम विषम ग्रीषम की जारी।
बिहरतिं गंग-प्रसंग देह धरि दिव्य सुढारी॥ ५॥

दीरघ-दाघ निदाघ माहिं पानी कौं तरसे।
सीतल धार अपार पाइ बनचर सुख सरसे॥
अति-अमंद-आनंद-मगन-मन उमगत डोलत।
सहज बैर बिसराइ आइ कल कूल कलोलत॥ ६॥

लखत कनखियनि चखत नीर मृग बाघ परसपर।
भाजत झपटत बनत पै न तजि नीर सुखद बर॥
नाचत मुदित मयूर मंजु मद-चूर अघाए।
अहि जुड़ात तिन पास पाइ सुख त्रास भुलाए॥ ७॥

कहुँ क्रीड़त करि-निकर तरंगनि मैं सुख सरसत।
मनु कलिंद के सिखर-बृंद सित-घन-बिच दरसत॥
कहुँ कपि लटकत नीर अटकि तट-बिलुलित डारनि।
बालखिल्य मनु लहत सु तप-संचित-सुख-सारनि॥ ८॥

कहुँ जल-बीचिनि बीच अड़े महिषाकर अरने।
जम-बाहन ह्वै व्यर्थ परे मनु सुरधुनि-धरने॥
सिमिटि ससा कहुँ तीर नीर छकि अधर हलावत।
ससि-मंडलहिं अखंड रखन की बिनय सुनावत॥ ९॥

सुरधुनि-स्वागत-काज साज बन-राज सजायौ।
सहित सहाय समाज न्यौति ऋतु-राज पठायौ॥
ठाम ठाम अभिराम सुखद सुखमा सौँ पागे।
नंदन-बन-आनंद मंद लागत जिहिँ आगे॥ १० ॥

बर बल्लिनि के कुंज-पुंज कुसमित कहुँ सोहैँ।
गुंजत मत्त मलिंद-बृंद तिन पर मन मोहैँ॥
मनौ सुहागिनि सजे अंग बहुरंग दुकूलनि।
गावतिँ मंगल मोद-भरीँ छाजे सिर फूलनि॥ ११ ॥

कहुँ तरुबर बहु भाँति पाँति के पाँति सुहाए।
नव-पल्लव-फल-फूल-भार सौँ डार झुकाए॥
मनहु धारि सुख-भरित हरित बाने बर माली।
अवसर अकथ अलेख लेखि साजीँ सुभ डाली॥ १२ ॥

कूजत बिबिध बिहंग संग अति आनँद-साने।
मानहु मंगल-पाठ पढ़त द्विज-गन उमगाने॥
कहुँ बिरदावलि बदत कीर-चारन मन-चारी।
सावधान-धुनि धुनत कहूँ परभृत-प्रतिहारी॥ १३ ॥

नाचत मंजुल मोर भौँर साजत सारंगी।
करति कोकिला गान तान तानति बहुरंगी॥
स्यामा सीटी देति चटक चुटकी चुटकावत।
घूमि झूमि झुकि कल कपोत तबला गुटकावत॥ १४ ॥

इमि राँचति रस-रंग गंग बन बाहिर आवति।
जलद-पटल बिलगाइ जोन्ह मनु छिन छबि छावति॥
चलति चपल त्रय-ताप पाप-तम-दाप निवारति।
कलित कृपा अभिराम सुभासुभ धाम पसारति॥ १५॥

कोउ पटपर पर कवहुँ पाट सोभा विस्तारति।
काटि कूल छिति छाँटि बाट निज सुघट सुधारति॥
ऊसर के सर भरति निरस महि रस सरसावति।
आस-पास के गाम सुभग सुख-धाम वनावति॥ १६॥

ग्राम-वधूटी जुरतिँ आनि तट गागरि लै-लै।
गावतिँ परम पुनीत गीत धुनि लावतिँ जै-जै॥
धारे सहज सिँगार गात गोरे गदकारे।
विहँसत गोल कपोल लोल लोचन कजरारे॥ १७॥

सुनकिरवा की आड़ ताड़ तरकी तरपीली।
ठाढ़े गाढ़े कुचनि चिहुँटनी-माल सजीली॥
रँगे चोल-रँग चीर लगे भोडर-नग चमकत।
गृह-स्रम संचित-स्वास्थ उमगि आनन पर दमकत॥ १८॥

कोउ पैठति जल हँसति धँसति एँड़ी कोउ तट पर।
कोउ मुख पानि पखारि बारि छिरकति निज पट पर॥
कोउ कर जोरि नवाइ सीस दृग मूँदि मनावति।
ऐपन घुघुरी रोट अर्पि कोउ दीप दिखावति॥ १९॥

कहुँ मिलि जुलि दस पाँच नाच-रँग रुचिर रचावतिँ ।
हूठौ दै इठलाइ झमकि झुकि लंक लचावतिँ ॥
कोउ गोरुनि जल प्याइ न्हाइ परखति पनघट पर ।
कोउ गागरि भरि चलति सीस धरि कोउ कटि-तट पर ॥ २० ॥

लखि मसान कहुँ गंग मान ताकौ छिति छापति ।
तहँ मिलान सुभ सरल स्वर्ग-पथ कौ थिर थापति ॥
हाड़ माँस तन-सार छार जिनके जल परसत ।
सो सुभ गति अति लहत जाहि जोगी-जन तरसत ॥ २१ ॥

तुरत गंग-गन धाइ मगन-मन जुरत जुहारत ।
जम-दूतनि सौं अटकि झटकि महि पटकि पछारत ॥
बरबस तिनहिँ छुड़ाइ बेगि बैठाइ बिमाननि ।
पहुँचावत सुर-लोक सोक के लाँघि सिवाननि ॥ २२ ॥

कोउ मग ही सौं मुरत कोऊ जमराज-सभा सौं ।
कोउ नरकनि कौ फारि द्वार परिपूरि प्रभा सौं ॥
चित्रगुप्त चितवत चरित्र यह चित्र भए से ।
जकित जोहि जमराज काज निज बिसरि गए से ॥ २३ ॥

कोउ पापिहिँ पंचत्व-प्राप्त सुनि जमगन धावत ।
बनि बनि बावन-बीर बढ़त चौचंद मचावत ॥
पै ताकी तकि लोथ त्रिपथगा के तट ल्यावत ।
नौ-द्वै ग्यारह होत तीन-पाँचहिँ बिसरावत ॥ २४ ॥

दंग होत सुर-राज गंग कौ रंग निहारत।
भरति भीर के सुख सुपास कौ ब्यौंत विचारत ॥
नव-पुर-न्यैाधन-हेत लेत बिधना सौं पट्टा।
सुचि रचना कौ करत बिस्वकर्मा सौं सट्टा ॥ २५ ॥

इहिँ विधि तरल-तरंग गंग महिमा उद्घाटति।
बसुधा सुधा-निवास करति बिबुधालय पाटति ॥
ठाम ठाम बहु धर्म-धाम अभिराम बनावति।
मुक्ति भुक्ति के अटल सदाव्रत-छेत्र चलावति ॥ २६ ॥

ब्रह्मावर्त पुनीत पुरी आई उमगाई।
करि सनमान प्रदान ताहि महिमा अधिकाई ॥
गंग-परस तैं पौन-गौन ह्वै सरस सुहावन।
करत रम्य आराम सरिस चहुँ दिसि उपवन बन ॥ २७ ॥

मुनि-गन-मन सुख भरत हरत आतप-तप-तापहिँ।
लै लै तूँबा चलत धाइ सब तजि जग-जापहिँ ॥
न्हाइ पाइ जल-स्वाद ब्रह्म-चरचा विस्तारत।
नेति-नेति निबटाइ ठाइ इति-इति-धुनि धारत ॥ २८ ॥

पुर-बासिनि की भीर तीर आवति उमगाई।
बिस्मय - संक - विनोद - मोद - स्रद्धा - सरसाई ॥
स्नान दान करि सकल पूजि सुरसरि सुख-साने।
करत बैठि जल-पान लोक परलोक भुलाने ॥ २९ ॥

भरि भरि गागरि चलतिँ नवल नागरि सुख-दैनी ।
ललकि लचावति लंक बंक चितवनि करि पैनी ॥
धरि कमला बहु बपुष सुधा-निधि सौँ मनु आई ।
सुधा निदरि भरि गंग-बारि ऐँड़ति छबि-छाई ॥ ३० ॥

चलि बिठौर सौँ ठौर ठौर आनँद उपजावति ।
दपटि दरेरति दुरित झपटि दुरभाग भजावति ॥
पहुँची आनि प्रयाग रम्य दुहुँ कूल बनावति ।
झाऊ-झाड़िनि माहिँ मुक्ति-मुक्ताफल लावति ॥ ३१ ॥

तहँ बिरजा गोलोक-कुंज की सखी सयानी ।
ह्वै जमुना उमगाइ आइ भेँटी सुखसानी ॥
हरि-हर-प्रिया-पुनीत-सुभग-संगम जगबंदित ।
बिधि-पतनीहूँ गुप्त मिली ह्वै द्रवित अनंदित ॥ ३२ ॥

सोभा अकथ अनूप लखत सुर चढ़े बिमाननि ।
गावत सारद-नारदादि अस्तुति तनि ताननि ॥
एक पार्स्व सौँ बढ़ति गंग उत्तंग तरंगति ।
इक तैँ जमुना आनि मिलति सुख-संग उमंगति ॥ ३३ ॥

मनहु सितासित चमर दुरत दुहुँ दिसि तैँ आवत ।
तीर्थराज पर हिलत मिलत सुखमा सरसावत ॥
उभय कछारनि बीच बिसद अच्छयबट राजै ।
मरकत मनि कौ अटल छत्र मानौ छबि छाजै ॥ ३४ ॥

चहुँ दिसि संख-मृदंग-झाँझ-भेरी-धुनि छाई।
मनहु मंजु राज्याभिषेक की बजति बधाई॥
जय जय हर हर तुमुल सब्द नभ-मंडल पूरत।
जिहिँ सुनि दुरित दुरूह दौरि दुरि दूरि बिसूरत॥ ३५॥

दोउ धारा टकराइ उछरि मुरि पुनि जुरि धावतिँ।
सेत-नील-घन-पाँति लरति नभ मैँ ज्यौँ भावतिँ॥
हलरति लहर दुरंग संग मिलि-जुलि मनभाई।
तरु-तर ज्यौँ चल-पत्र-बीच है परति जुन्हाई॥ ३६॥

सुकृति-बृंद सानंद जुरत जोहत संगम पर।
तिनके पुन्य-प्रभाव हँसत जोगी जंगम पर॥
कोउ अन्हात गहि तीर कोऊ मंचनि पर चढ़ि-चढ़ि।
कोउ तरनी तैँ उतरि मंझ-धारा मैँ बढ़ि-बढ़ि॥ ३७॥

आर-पार की माल कोऊ चढ़ि चाव चढ़ावत।
कोउ थाननि के थान तानि पियरी पहिरावत॥
कोऊ भरे चित भाव नाव चढ़ि खेलत नावर।
कोउ पट भूषन देत कोऊ बाँटत न्यौछावर॥ ३८॥

सुघर-सलोनी-जुवति-जूह गृह-काज बिसारे।
गंग-परस पर सरस काम-कीड़ा-सुख-वारे॥
बिबिध-बिभूषन-बसन-बलित बिहरत कहुँ तट पर।
दुहरी दीपति करति देह-दीपति परि पट पर॥ ३९॥

कोउ अन्हाति सकुचाति गात पट-ओट दुराए।
कोउ जल-बाहिर कढ़ति सु-उर-ऊरुनि कर लाए॥
कोउ ऐंड़ति इतराति उच्च-कुच-कोर उचावति।
लचकावति कोउ लंक बंक भृकुटी मचकावति॥ ४० ॥

मृग-मद चंदन-बंदनादि कोउ चायनि चरचति।
दधि अच्छत तंबूल फूल फल कोउ लै अरचति॥
चित्रित होति बिचित्र भाँति जल-पाँति सुहाई।
महि-बेनी पर मनहु चारु-चूनरि-छबि छाई॥ ४१ ॥

जीवन-मुक्त बिरक्त कहूँ बिचरत सुख-साने।
मुनि-मंडल कहुँ कहत सुनत इतिहास पुराने॥
कहुँ द्विज-गन सुर साधि बाँधि लय बेद उचारत।
कहुँ कवि-जन स्वच्छंद छंद-बंधहिँ बिस्तारत॥ ४२ ॥

इमि सब-तीरथ-मय देवधुनि धरि प्रयाग-गौरव गह्यौ।
मनु रुचिर राज्य-अभिषेक-हित सब-तीरथ-सुचि-जल लह्यौ॥४३॥

एकादश सर्ग

गंग जमुन लै असि दुधार ह्वै चली चमंकति।
काटति पातक-व्यूह विकट जम-जूह धमंकति॥
बिंध्य-छेत्र सौं होति करति चरनाद्रिहिँ नंदित।
बिंध्य-हिमाचल-मध्य-देस सुर-नर-मुनि-बंदित॥ १॥

अति उछाह सौं चाह-भरी आनँद-सरसाई।
उमगति तरल-तरंग-संग कासी नियराई॥
मिली तहाँ अगवानि मानि असि जाति-मिताई।
चली बतावति बाट जतावति निखिल निकाई॥ २॥

संभु-पुरी-सुखमा अपार सुरधार निहारत।
ताकी महिमा कौ महान महि मान बिचारत॥
चली मंद गति धारि धाम अभिरामहिँ देखति।
लघु बीचिनि करि गुन-अपार-लेखा उर लेखति॥ ३॥

सीँचि स्वाति जल मुक्ति-खेत-बल विपुल बढ़ावति।
भव-भय-भंजनि संभु-सक्ति पर पानि चढ़ावति॥
महा मसानहिँ परम-बाट कौ घाट बनावति।
चिर-इच्छित-फल-लाहु मुमुच्छुनि तुच्छ जनावति॥ ४॥

मनिकनिका लौं आइ निरखि सुखमा सुख-सानी ।
धँसी धाइ तिहिँ कुंड मुंडमाली-मनमानी ॥
स्वाति-घटा सुभ भव-निधि अच्छय सीप समाई ।
मुक्ति-पाँति धरि देह लगी बिथुरन मन-भाई ॥ ५ ॥

भूप भगीरथ उतरि तुरत रथ सौं सुख लीन्यौ ।
संध्यादिक करि चंदचूर कौ बंदन कीन्यौ ॥
सुखमा निरखि अनूप जानि सिव-रूप निवासी ।
सबनि नवायौ सीस बिबिध बर बिनय बिकासी ॥ ६ ॥

पुनि सोच्यौ सकुचाइ कहैँ किहिँ भाय कढ़न कौं ।
परम बंद्य स्वच्छंद गंग सौं बिनइ बढ़न कौं ॥
पर पातक पर समुझि सहज अमरष मन ताकैँ ।
भयौ बहुरि संतोष सपदि मन महि-भर्ता कैँ ॥ ७ ॥

जोरि पानि तब माँगि बिदा सुभ सिवसंकर सौं ।
करि प्रनाम अभिराम धाम कासिहुँ आदर सौं ॥
सगर-सुतनि के साप-ताप कौ दाप बखान्यौ ।
सुनत गंग स-उमंग चेति चलिबौ चित आन्यौ ॥ ८ ॥

कढ़ी भरत आतंक अंक दै मनिकनिका कौं ।
सिवहिँ बिलोकति बंक करति गत-संक सिवा कौं ॥
चली करति हुंकार धार-बिस्तार बढ़ावति ।
महि-महिमा की भरति गोद मन मोद मढ़ावति ॥ ९ ॥

भूपहु सपदि सम्हारि भए स्यंदन चढ़ि आगे।
जय-जय-धुनि नभ पूरि सुमन सुर बरसन लागे॥
पुरबासिनि की भरी भीर सुभ तीर सुहाई।
भय - विस्मय - सुविनोद - मोद - स्रद्धा - सरसाई॥ १० ॥

कोउ दूरहि तैं दबकि भूरि जल-पूर निहारत।
कोउ गहि बाहिँ उमाहि बहत-बालक कौं बारत॥
कोउ कहुँ ठठकि अवाइ लखत बिन पलक गिराए।
गंग-दरस तैं मनहु अंग देवनि के पाए॥ ११ ॥

ग्रीवा चरन उचाइ चाय सौं कोउ चल चाहत।
सुभ-सुखमा-सुख-लहन-काज औरनि आवाहत॥
जानु-पानि-जुग जोरि कोऊ जय-जय-धुनि लावत।
कहत सुनत गुन गुनत कोऊ पुलकत पुलकावत॥ १२ ॥

कोउ हर-हर करि कर पसारि जल-तल हलकोरत।
दोउ हाथनि मनु अति अमंद आनंद बटोरत॥
लै बुभकी ह्वै मगन मोद-बारिधि कोउ थाहत।
जीवन-मुक्ति-महान-लाहु लहि उमगि उमाहत॥ १३ ॥

कोउ अंजलि जल पूरि सूर-सनमुख ह्वै अरपत।
कोउ देवनि कौं देत अर्घ पितरनि कोउ तरपत॥
कोउ तट हटि पट सुघट साजि संध्या सुभ साधत।
जप-माला मन लाइ इष्ट-देवहिँ आराधत॥ १४ ॥

जहँ तहँ करत कलोल लोल-लोचनि-ललना-गन।
सुंदर सुघर सुजान रूप-गुन-मान-मुदित-मन॥
कोउ ऐंठति तन तोरि छोरि अँगिया कोउ बैठति।
कोऊ उमैठति भौंह सौंह करि कोउ जल पैठति॥ १५॥

कोउ काहू कौ पकरि पानि डगमग पग धारति।
कोउ चंचल करि चखनि बिचल अँचलहिँ सम्हारति॥
कोउ निबटति कटि-तट समेटि चट पट-गुफ्फरौटा।
हँसति धँसति जलधार कसति कोउ कलित कछौटा॥ १६॥

सीस सजल कर छाइ छपकि कोउ छीँट उछारति।
सुर-तरु-डारनि मथति सुधा सुख-सार निसारति॥
कर-पिचकी-जल-केलि करति कोउ आनँद धारे।
अरबिंदनि तैँ चलत मनहु मकरंद-फुहारे॥ १७॥

भूषन-जरित-जराय-कलित पैरति कोउ जल पर।
मनहु रतन उतरात छीर-सागर-बर-तल पर॥
न्हाइ-न्हाइ तट आइ सकल सुंदरि छबि छाजैँ।
मुकुर-धाम मनु काम-बाम-प्रतिबिंब बिराजैँ॥ १८॥

कोउ ऊरुनि बिच दाबि बसन गीले गहि गारति।
उसरत पट कटि उरसि संक-जुत बंक निहारति॥
कोउ लंकहिँ लचकाइ लचकि कच-भार निचोरति।
मर्कत-बल्लिनि मीड़ि मंजु मुकता-फल झोरति॥ १९॥

लै कर चंदन-बंदनादि कोउ सादर डारति।
मनु पराग अनुराग-सहित कंजनि सौं ढारति॥
कोउ अंजलि भरि सुमन सु-मन भरि भाव चढ़ावति।
सुमन-सुमन-मन महि-उपजन कौ चाव चढ़ावति॥ २० ॥

कोउ ढारति सिर छाइ छीर लीन्हे करवा कर।
सुर-धारा पर सुधा-धार मनु स्रवत सुधाधर॥
सजि बातिनि की पाँति उमगि कोउ करति आरती।
विधि-सरबस पर वारति मनि-गन मनहु भारती॥ २१ ॥

असन बसन बहु भाँति भेटि कोउ सानँद राजति।
मनहु परम-पथ-काज साज सुख के सब साजति॥
कोउ झुकि करति प्रनाम टेकि महि माथ मयंकहिँ।
मेटति मनहु बिसाल भाल के कठिन कु-अंकहिँ॥ २२ ॥

माँगति अचल सुहाग मंजु अंजलि कोउ धारे।
कलप-लता मनु चहति परम-फल पानि पसारे॥
इहिँ बिधि बिबिध बिधान ठानि बिधिवत सब पूजतिँ।
मंगल-गीत पुनीत प्रीति-संजुत कल कूजतिँ॥ २३ ॥

बहु रंगनि की चलतिँ धारि सुभ अंगनि सारी।
मनहु कलित कसमीर-तीर तैरति फुलवारी॥
लिए सकल जल-पात्र पसारतिँ रूप-उज्यारी।
निखिल-लोक-ससि मनहु सुधा भरि चलत सुखारी॥ २४ ॥

संन्यासिनि के झुंड लिए कर दंड कमंडल।
न्हाइ-न्हाइ कहुँ तीर करत हर-हर करि मंडल॥
मनहु जानि महि-अजिर महा मंगल कौ दंगल।
सुंदर संग बनाइ आइ राजत तहँ मंगल॥ २५॥

कहुँ बटु-गन मन-मुदित मज्जि बर बेद उचारैं।
बिबिध बिनोद प्रमोद करत भरि नीर सिधारैं॥
मथत पयोनिधि स्वच्छ सुधा भरि हिय हरषाए।
मानहु देव-कुमार चलत चित चाय उचाए॥ २६॥

तट-बासिनि मन गंग मोद मंगल इमि छावति।
बढ़ी बढ़ावति बेग नेग मैं मुक्ति लुटावति॥
पावन तरल तरंग देखि अति आनँद-पागी।
बरनत बिरद उतंग संग बरुना बर लागी॥ २७॥

बिस्वामित्र- पवित्र- धाम आई उमगाई।
सरजू परम पुनीत प्रीति-जुत भेटन आई॥
नृप-कुल-गुरु की मानि मंजु कल कीरति-कन्या।
लै उछंग तिहिँ गंग चली हलरावति धन्या॥ २८॥

दच्छिन दिसि तैं आनि भाग-अनुराग-लपेटी।
मगधदेस-मग धाइ सोन-धारा सुभ भेटी॥
मिलि हिमगिरि-बर-बिंध्य-बिसद-महिमा मनभाई।
प्रगट्यौ हरि-हर-पुन्य-छेत्र सुर-मुनि-सुखदाई॥ २९॥

बढ़ी बहुरि सुरधार धरा-दुख-दारिद मेटति।
कोसी आदि अनेक नदिनि निज संग समेटति॥
अंग बंग के दुरित भंग करि रंग रचावति।
जंगल-जंगल माहिँ महा मुद मंगल छावति॥ ३० ॥

सुंदरवन मैं भरति भूरि सुठि सुंदरताई।
सगर-सुतनि हित मानि आनि सागर समुहाई॥
जानि भगीरथ-बंस-भूरि-जस-भाजन भारी।
सहस-धार ह्वै चली भरन तिहिँ उमग-उभारी॥ ३१ ॥

सागर-तरल-तरंग-गंग-संगम देखन कौं।
तारन-प्रबल-प्रभाव-भाव उर अवरेखन कौं॥
भूप-भगीरथ-अमित-सुजस-लेखा लेखन कौं।
सगर-सुतनि की साप-औधि-रेखा रेखन कौं॥ ३२ ॥

दमकावत द्युति दिव्य भव्य भूषन चमकावत।
गमकावत सुर-सुमन बिसद बाहन हमकावत॥
जुरे उमगि सुख मानि आनि त्रिभुवन के बासी।
भरी नीर-निधि-तीर भीर नृप-पुन्य-प्रभा सी॥ ३३ ॥

कहुँ बिधि बिबुधनि संग बेद-धुनि मधुर उचारत।
रचि तांडव त्रिपुरारि कहूँ डमरू डमकारत॥
कहुँ हरि हरन कलेस बट्यौ स्रम गुनि गुन गावत।
कहुँ सुर-राज स्वराज बढ़त लखि मोद मचावत॥ ३४ ॥

जहँ-तहँ बिद्याधर बिचित्र कौतुक बिस्तारत।
सिद्धि बगारत सिद्ध सुजस चारन उच्चारत॥
गावत गुन गंधर्ब नचत किन्नर दै तारी।
उमगि भरत कल कच्छ यच्छ सुख संपति भारी॥ ३५॥

इक दिसि चढ़े बिमान भानु-कुल-भव्य-पितर-गन।
सिबि दधीचि हरिचंद आदि आनंद-मगन-मन॥
निज सपूत की अति अभूत करतूति निहारत।
साधु-बाद दै उमगि आँस-मुकता बर वारत॥ ३६॥

कहुँ मुनि-गन मन-मगन लगन सुरसरि की लाए।
चहुँ दिसि चितवत चाह-भरे भाजन खनियाए॥
नाग-कन्यकनि-संग कहूँ बिचरत बढ़ि तट पर।
सेस बासुकी आदि कान दीने आहट पर॥ ३७॥

बाहन बिबिध बिधान जुरे तहँ आनि सुहाए।
सगर-सुतनि के काज सकल सुख-साज-सजाए॥
कहुँ जाननि की सजी सुखद सुभ सुंदर स्रेनी।
सागर-तट तैं मनु सुरपुर लगि लगी निसेनी॥ ३८॥

कहुँ हंसनि के बिसद बंस काटत कल कावा।
कहूँ गरुड़-गन करत धरा-अंबर-बिच धावा॥
बलिबरदनि के बृंद कहूँ बिचरत तट घूमत।
कहुँ ऐरावत-झुंड सुंड फेरत झुकि झूमत॥ ३९॥

इक दिसि सजे सिँगार लसतिँ सुर-सदा-सुहागिनि ।
सगर-सुतनि वरि वेगि होन-हित अति बड़-भागिनि ॥
विचरत कौतुक-निरत देव-ऋषि विरति विसारे ।
गंग - सुजस - रस - लीन बीन काँधे पर धारे ॥ ४० ॥

इहिँ विधि ठाटे ठाट-बाट सब सानँद हेरत ।
ग्रीवा चरन उचाइ चपल चहुँघाँ चख फेरत ॥
हर-हर सब्द पुनीत उठ्यौ तब लौं बेला तैँ ।
इत जय-जय-धुनि धाइ भरी नभ लौँ मेला तैँ ॥ ४१ ॥

उमगति - अमित - तरंग - तुंग - बर - बाँह पसारे ।
फेन - फूल - सिंगार - हार - उपहार सुधारे ॥
बढ़्यौ बेगि बारीस सुखद सुरसरि भेटन कौं ।
सुधा-हीन ह्वै भयौ छीन सो दुख-मेटन कौं ॥ ४२ ॥

सहस-धार सुरधार मिली तिहिँ अति आदर सौं ।
बिज्जु-छटा मनु छहरि लहरि बिहरी बादर सौं ॥
किधौं नील-सत-सिखर परी ढरि बिखरि जुन्हाई ।
कै मरकत कैँ छत्र सेत चामर-छबि छाई ॥ ४३ ॥

मीन मकर सिसुमार उरग आदिक उतराने ।
लहत गंग - सुभ - परस - पान परमानँद - साने ॥
पाप-साप-बस विबस परे तिनके जे तन मैँ ।
ते धरि धरि बर बपुष बेगि बिहरत सुर-गन मैँ ॥ ४४ ॥

उतरि उतरि सुर-बृंद सकल सानंद कलोलत।
डामाडोल हिँडोल-सरिस लहरनि लगि डोलत ॥
बहु बिधि रचत बिनोद मोद चहुँ-कोद परस्पर।
ठमकत ठेलत डटत हटत हटकत झटकत कर ॥ ४५ ॥

पग जमाइ झुकि-झपट कोऊ लहरनि की झेलत।
कोउ घूँटुनि महि टेकि अटल औरनि अवहेलत ॥
कोउ भाजत भय-भभरि ताकि उत्तंग तरंगनि।
कोउ साहस करि बढ़त पढ़त अस्तुति बहु रंगनि ॥ ४६ ॥

इहि बिधि सकल अन्हाइ पाइ सुख सुकृत कमाए।
पूजि सहित सनमान गान निज जाननि आए ॥
सजि-सजि भूषन बसन लगे चितवन चित दीन्हे।
तारन - कौतुक - लखन - लालसा लोचन लीन्हे ॥ ४७ ॥

इमि गंगासागर धाम सुभ जगत-उजागर जस लह्यौ।
जउ सागर-रूप अनूप तउ भव-सागर-बोहित भयौ ॥ ४८ ॥

द्वादश सर्ग

कौतुक निरखि अनूप भूपहू निपट अनंदे।
पितरनि कियौ प्रनाम देव-बृंदनि-पद बंदे॥
पुनि सुर-धुनि-मन पाइ नाइ सिर जान बढ़ायौ।
पितरनि परम प्रसन्न जानि मन मोद मढ़ायौ॥ १॥

इत सुरसरि भरि सिंधु उभरि उर ओज बढ़ाए।
सगर सुतनि के साप-दाप पर चाप चढ़ाए॥
चली चपल अति सुमन-बृंद-मन आनँद पूरति।
फिरि-फिरि-लखत-ससंक भूप-चिंता चकचूरति॥ २॥

कपिल-धाम उत धाइ धूम सुरधुनि की धमकी।
सुभ-आगम की ओप उमगि दसहूँ दिसि दमकी॥
सगर-सुतनि-की-छार-छई छिति भूरि भयावनि।
लगी लगन ह्वै मोद-मगन अति सुभग-सुहावनि॥ ३॥

सगर-कुमारनि-संग जरे जे तरु-बल्ली-बन।
लगे बहुरि हरियान मनहु पाए नव जीवन॥
सरस्यो सुखद समीर कपिल पल पुलकि उघारे।
निरखि धाम अभिराम ताप जारन के टारे॥ ४॥

तब लौं सुरसरि अति अपार आवर्त बनाए।
महा गर्त मैं धँसी धाइ धुनि-धूम मचाए॥
कपिलदेव-अति-कठिन-साप-बल-बिजय बिचारति।
चक्रब्यूह रचि चली मनौ ललकति ललकारति॥ ५॥

अभिनंदत-सुर-बृन्द-सहित सानंद उमाही।
कपिल-धाम-ढिग आइ धाइ चहुँ ओर उमाही॥
दुख-दुर्मति-दुर्भाग्य-दुरित-रेखा हठि मेटीं।
साठ-सहस सब छार-रासि निज अंक समेटीं॥ ६॥

परसत गंग-तरंग रंग अद्भुत तहँ माच्यौ।
कौतुक निरखि महान मोद सुर-गन-मन राँच्यौ॥
लगे ललकि सब लखन चखनि अध ऊरध फेरन।
अद्भुत-रस-स्वामिहु सराहि बिस्मित-चित हेरन॥ ७॥

कढ़ि-कढ़ि सगर-कुमार छार-रासिनि सौं बढ़ि-बढ़ि।
मढ़ि-मढ़ि दमकति दिब्य देह चित-चायनि चढ़ि-चढ़ि॥
चमकत तमकत चले चपल मंडत नभ-मंडल।
गंगागम मैं मची मनहु पावक-क्रीड़ा कल॥ ८॥

इक दिसि बिसद बिमान होड़ करि दौड़ लगावत।
केतनि लै लै चलत हलत सोभा सरसावत॥
मनहु बिबिध-बर-बरन साँझ-जलधर धर धावत।
गंग-सुजस-रस पूरि भूरि छबि सौं नभ छावत॥ ९॥

हंस-बंस इक ओर पिलत निज अंस झुकाए।
केतनि पीठि चढ़ाइ चलत चहकत चटकाए॥
करि अधिकार अखंड मंडि महि-मंडल मानौ।
ब्रह्म-लोक-दिसि भूप-सुकृत-दल करत पयानौ॥ १० ॥

कहुँ केतनि लै ललकि गरुड़-गन मगन उमंडत।
उड़त जुड़त मँडरात मंजु नभ-मंडल मंडत॥
अस्वमेध-फल न्हाइ गंग धरि अंग सुहाए।
जात मनौ हरि-नगर सगर भेटन उमगाए॥ ११ ॥

धौरे धरम-धुरीन पीन पीठिनि लै केते।
बढ़त बाँधि सुभ ठाट बाट हर-गिरि की चेते॥
निज गुन-सागर-सार भार मुक्तनि के नीके।
मनहु गंग उपहार भौन भेजति भगिनी के॥ १२ ॥

उन्नत-बिसद-बितुंड-झुंड सुंडनि फटकारत।
केतनि लहि सुख पाइ धाइ सुर-सदन सिधारत॥
अखिल-लोक सुर-राज इंद्र मनु न्यौति पठाए।
गंगोत्सव लखि लौटि चलत गज-ब्यूह बढ़ाए॥ १३ ॥

उचकावति कुच पीन खीन लंकहिँ लचकावति।
अधर दबाइ हलाइ ग्रीव अंगनि मचकावति॥
सस्मित भृकुटि-बिलास करति करि त्रिकुटि तनेनी।
गावति मंगल चली संग सुर-सुंदरि-स्रेनी॥ १४ ॥

झूमि-झूमि झुकि लचत नचत किन्नर अनुरागे।
भानु-बंस-जस-गान करत चारन सँग लागे॥
हरषत बरषत सुमन सुमन बढ़ि बाट बतावत।
बादर धरि धुनि मधुर छत्र सादर सिर छावत॥ १५॥

बाजे बिबध बिधान ब्योम बाजे सुभ-साजे।
गाजे पुन्य-समूह जूह पातक के भाजे॥
पूरत परम प्रमोद चली चहुँ-कोद बधाई।
जय-जय की धुनि-धूम-धाम-धामनि मैं धाई॥ १६॥

भूप-भगीरथ-अति - उदार-अति-अद्भुत - करनी।
तारनि-तरल-तरंग-गंग- महिमा मन - हरनी॥
सुर किन्नर गंधर्व सर्ब लखि आनँद-पागे।
पुलकि अंग स-उमंग गंग-गुन गावन लागे॥ १७॥

करि अस्तुति बहु भाँति सकल मिलि माथ नवायौ॥
छोभ-समन सुभ साम-गान धरि ध्यान सुनायौ॥
स्वस्ति-पाठ पढ़ि चढ़यौ-गंग-चित-रोष निवार्यौ।
हरयो अमित उद्वेग सांति-सुख जग संचार्यो॥ १८॥

न्हाइ-न्हाइ चढ़ि जाय पूजि स्रद्धा सरसाए।
नंदनादि-बन-सुमन - हार - उपहार चढ़ाए॥
कपिलदेव सौं मिलि जुहारि स्रद्धा-सरसाए।
तोष-जनित-आमोद-ओप आनन पर छाए॥ १९॥

निज-निज-देव-समूह-संग जुरि जूह सँवारे ।
बिधि हरि हर हरषाइ हुलसि नृप-निकट पधारे ॥
पुलकित-सुभग-सरीर नीर नैननि अवगाहे ।
इक सुर सौं सब भूप-सुकृत-स्रम-सुजस-सराहे ॥ २० ॥

अभिनंदत सुर-बृंद देखि भूपति सकुचाने ।
धाइ पाय लपटाइ ललकि आनँद सरसाने ॥
बहुरि जुगल कर जोरि कोरि अस्तुति मन ठानी ।
पै भावनि की भीर चीरि निकसी नहिँ बानी ॥ २१ ॥

सावर-मंत्र-समान अमिल आखर कछु आए ।
जिहिँ प्रभाव सौं भूप-भाव सबकेँ मन छाए ॥
बढ़ि कृतज्ञता उमड़ि द्रवित ह्वै अजगुत कीन्यौ ।
रसना कौ कल काम सरस नैननि सौं लीन्यौ ॥ २२ ॥

भए देवहू मगन भूप की भक्ति निहारत ।
सके न कहि कछु उमहिँ मनहिँ मन रहे विचारत ॥
तब बिरंचि अगुवाइ उमगि बर बचन उचारे ।
प्रेम-पुलकि अवनीस-सीस कंपित कर धारे ॥ २३ ॥

धन्य भानु-कुल-भानु धन्य तप-तेज-तपाकर ।
जासौं लहत प्रकास सुकृत-सुख-सुजस-सुधाकर ॥
मात-पिता-दोउ-बंस उजागर तुम अति कीने ।
महि-बासिनि के सकल दोष-दुख-तम दरि दीने ॥ २४ ॥

अंसुमान की कठिन आन करि कानि उतारी।
कर्म-बीरता-सुभग-सीख त्रिभुवन संचारी ॥
मुरे न लखि घन बिघन ठान ठानी सो ठानी।
किए सुरासुर दंग गंग अवनी पर आनी ॥ २५ ॥

मृत्यु-लोक मैं धरयौ आनि सुभ स्रोत अमी कौ।
दै महिमा महि कियौ सारथक नाम मही कौ ॥
यह अति दुस्तर काज आज लौं अपर न साध्यौ।
जद्यपि सहि बहु कष्ट इष्ट-देवनि आराध्यौ ॥ २६ ॥

साठ सहस नृप-सगर-पूत करि पूत उधारे।
पुन्य सलिल सैं कपिल-साप के ताप निवारे ॥
जब लौं सुरधुनि-धवल-धार सागर मैं धसिहैं।
तब लौं ते गत-सोक दिब्य लोकनि मैं बसिहैं ॥२७ ॥

सगर हिये कौ पुत्र-बिरह-उद्वेग थिरायौ।
सुरपुरहूँ मैं देत ताप संताप सिरायौ ॥
कपिलदेवहूँ लह्यौ तोष लखि सुरसरि-करनी।
निज आस्रम की बढ़ी मानि महिमा मल-हरनी ॥ २८ ॥

तब पितरनि-हित लागि गंगहूँ अति हुलसाई।
बर मुकतिनि की रासि निछावरि माहिँ लुटाई ॥
थल-थल थापे पुन्य-छेत्र चारहु-फल-दाई।
दस दिगंगननि तब कीरति-सारी पहिराई ॥ २९ ॥

अब त्रिपंथगा गंग गरबि तव सुता कहैहैं।
भागीरथी पुनीत नाम सौं जग जस छैहैं॥
त्रेता जुग मुनि बालमीकि द्वापर पारासर।
कलि मैं यह सुचि चरित चारु गैहै रतनाकर॥ ३० ॥

देव पितर सब भए तृप्त जग जीवन भीन्यौ।
जीव जंतु सु-अघाइ पाइ जल अति सुख लीन्यौ॥
करि नहान जल-दान-क्रिया सब बेद-बखानी।
अब तुमहूँ तौ पियौ पूत चिल्लू-भर पानी॥ ३१ ॥

सकल-स्वर्ग-अपवर्ग-लाहु तुम तप-बल पायौ।
अब दै कहा उमंगि करैं हमहूँ मन-भायौ॥
सिख आसिख यह देत तदपि हित-हेत सुहाई।
सुख सौं भोगौ धर्म-सहित कल कर्म-कमाई॥ ३२ ॥

तब हरि हित करि हेरि हुलसि हँसि अति मृदु बानी।
बोले ललित-बिनोद कृपा-रस सौं सरसानी॥
दै सुरसरित स्वयंभु संभु सिर लै जस लीन्यौ।
इहिँ समाज हम लहत लाज कछु काज न कीन्यौ॥ ३३ ॥

यातैं यह बरदान मान-जुत दै सुख पावत।
तव जस जग थिर थापि आपनी सकुच सरावत॥
जब लौं सुरसरि-धार-हार बसुधा उर धारै।
तब लौं तन तव सुजस-छीर-सर-चीर सँवारै॥ ३४ ॥

गंग-अवतरन-चरित चारु जे सादर गावैं ।
पढ़ैं गुनैं मन लाइ सुनैं कै सरुचि सुनावैं ॥
संपति संतति मान ज्ञान गुन ते बहु पावैं ।
बिलसि बिलास अनंत अंत सुर-लोक सिधावैं ॥ ३५ ॥

औरहु जो बर चहहु लहहु सकुचहु जनि बोलौ ।
दरि दुराव चढ़ि चाव भाव अंतर कौ खोलौ ॥
हाँ हाँ सकुच बिहाइ कहौ इच्छा मनमानी ।
भुज उठाइ इमि उठे बोलि संकर दिन-दानी ॥ ३६ ॥

सबनि जोरि जुग हाथ कह्यौ नृप माथ नवाए ।
ह्वै सनाथ हम नाथ सकल इच्छित फल पाए ॥
तदपि यहै करि बिनय चहत अज्ञा-अनुगामी ।
भारत पर निज कृपादृष्टि राखहु नित स्वामी ॥ ३७ ॥

सदा होइ यह धर्म-धान्य-धन-धीरज-धारी ।
बिद्या बुद्धि बिबेक बीरता कौ अधिकारी ॥
याके पूत सपूत नित्य निज करतब साधैं ।
गंग गाय गोलोक-नाथ सादर आराधैं ॥ ३८ ॥

करैं प्रेम कौ नेम सकल मिलि छेम पसारैं ।
याकैं हित हठि प्रान पानि-तल पर सब धारैं ॥
जब जब बिपति-समुद्र याहि बोरन कौं कोपै ।
तब तब आप-प्रताप ताहि कुंभज ह्वै लोपै ॥ ३९ ॥

यह सुनि सकल सराहि नृपति निस्पृह कामनि कौं ।
"एवमस्तु" कहि चले मुदित निज निज धामनि कौं ॥
नभ तैं बरसे सुमन बजी आनंद-बधाई ।
उमग्यौ मोद अनंत दिगंतनि जय-धुनि छाई ॥ ४० ॥

इमि भूप-सुकृत-राकेस-द्युति गंग सकल कलमस हर्यौ ।
बर-बानी-बिमल-बिलास बढ़ि रतनाकर-उर संचर्यौ ॥ ४१ ॥



त्रयोदश सर्ग

भूप भगीरथ तब अन्हाइ अदभुत सुख लीन्यौ ।
संध्या-बंदन साधि देव-पितरनि जल दीन्यौ ॥
मन प्रमोद तन पुलक प्रेम-जल पलकनि छाए ।
गद्गद स्वर सौं करी गंग-अस्तुति उमगाए ॥ १ ॥

जय तांडव-द्रव-भूत-ब्रह्म-मूरति अति पावनि ।
प्रबल-प्रभाव-अमोघ सकल-अघ-ओघ-नसावनि ॥
चतुरानन-हरि-ईस-परम- पद - बिसद - बितरनी ।
दस-पातक-असुरारि-रूप दस इक-अवतरनी ॥ २ ॥

जय बिरंचि-कृत-बंक-अंक-निस्संक-पखारिनि ।
सुख-संपति-संतान-मान-बिस्तारिनि तारिनि ॥
जय हरि की स्रम-हरनि बाँटि तारन-कृति भारी ।
निज महिमा-बल-बिपुल बहुरि बहु रचि असुरारी ॥ ३ ॥

जय गिरीस-सुभ-सीस-सरस-सोभा-संचारिनि ।
हृत-त्रिलोक-त्रय-ताप-जनित-संताप-निवारिनि ॥
जय अमृतासन-बृंद-तोष-निज-बाढ़-बढ़ावनि ।
स्वल्प-सुधा-कृत-देव-दनुज-दल-द्रोह-बहावनि ॥ ४ ॥

जय विप्रनि हित परम ब्रह्म-विद्या की स्रेनी ।
तोष मोष विज्ञान मान इच्छित सब देनी ॥
जय क्षत्रिय-कुल-दुरित-दलन-संगर की संगिनि ।
चार-वर्ग-जय-हेत चमू चमकति चतुरंगिनि ॥ ५ ॥

जय बनिकनि के काज धनिक गाहक मति भोली ।
खोट-पोट लै देति खरी मुक्तिनि की झोली ॥
जय सूदनि हित अति उदार कोमल-चित स्वामिनि ।
सेवत सद्यः देति सौख्य-संपति सुरधामिनि ॥ ६ ॥

जय जोगिनि की परम-तत्त्व सुख-निधि भोगिनि की ।
सोगिनि की दुख-दरनि हरनि आरति रोगिनि की ॥
जय जग-जननि अनंत छोह संतति पर छावनि ।
मृतकहुँ लै निज गोद मोद सुख दै दुलरावनि ॥ ७ ॥

जय किल केहरि-माल कर्म-वन-गहन-सुचारिनि ।
पातक-कुंजर-पुंज गंजि बर-मुक्ति-पसारिनि ॥
दुख-दारिद-दुरभाग-दुरित-गिरि-गुहा-बिदारिनि ।
चिंता-भ्रम-उद्वेग-बेग-मृग-निखिल-निवारिनि ॥ ८ ॥

जय कलपद्रुम-कुसुम-मंजु-मकरंद-तरंगिनि ।
सुर-नर-मुनि-मन-मधुप-पुंज-सरबस-सुख-संगिनि ॥
जय बृंदारक-बृंद-बंद्य कल कामदुहा की ।
धवल धार सुख-सार जीवनाधार धरा की ॥ ९ ॥

जय आनंद-तरंग गंग गिरि-नायक-नंदिनि ।
जय जाह्नवी पुनीत ईति-भव-भीति-निकंदिनि ॥
जय दिनेस-कुल-सुभ्र-सुजस-त्रिभुवन-संचारिनि ।
भागीरथी कहाइ अमर-कल-कीरति-कारिनि ॥ १० ॥

जय सुचि-सुकृत-पयोधि-सुधा की धार सुधारी ।
चारु-चार-फल-देन - पुन्य-तरु - सींचनहारी ॥
जाकैं अर्घ अघात सुधा-भोगी बिबुधाकर ।
जिहिं नव-जीवन-पूरि भूरि उमगत रतनाकर ॥ ११ ॥

नृप-अस्तुति सुनि उठी गंग-उर कृपा-फुरहरी ।
जल-तल पर लहरान लगीं आनँद की लहरी ॥
यह धुनि मंजुल मधुर धार-कलकल तैं आई ।
धन्य भगीरथ भूप धन्य तव पुन्य-कमाई ॥ १२ ॥

यह तप-तेज प्रचंड सील की यह सियराई ।
पावक पाला लसत सुमिल तुम मैं इकठाई ॥
सब देवनि बर दिए दिब्य मन-मोद-मढ़ाए ।
अब हमहूँ सौं लहौ चहौ जो चाव-चढ़ाए ॥ १३ ॥

यह सुनि नृप कर जोरि निवेदन सादर कीन्यौ ।
सगर-कुमारनि तारि हमैं सब कछु तुम दीन्यौ ॥
दानी परम उदार पाइ पर तृषा न त्यागति ।
यातैं यह बरदान-लाहु-लालच जिय जागति ॥ १४ ॥

पापी पतित स्वजाति-त्यक्त सौं-सौं पीढ़िनि के।
धर्म-विरोधी कर्म-भ्रष्ट च्युत स्रुति-सीढ़िनि के॥
तव जल स्रद्धा-सहित न्हाइ हरि नाम उचारत।
है सब तन-मन-सुद्ध होहिं भारत के भारत॥ १५॥

यह सुनि पुनि धुनि भई धन्य तव नय-निपुनाई।
देस-भक्ति भरपूर जाति-अनुरक्ति सुहाई॥
सफल कामना होहिं सकल तव सुचि-रुचि-वारी।
भारत पर नित करैं कृपा हरि आरति-हारी॥ १६॥

सुरसरि-आसिख पाइ निपट नरपति आनंदे।
कपिलदेव अभिनंदि विविध पुनि सादर वंदे॥
धन दिलीप कौ लाल धन्य यह जस सिख-दानी।
साधि सकल निज कठिन काज पीयौ तव पानी॥ १७॥

करि प्रनाम तव पुलकि माँगि आयसु सुरधुनि सौं।
चढ़ि स्यंदन सानंद चले आसिष लहि मुनि सौं॥
लखत तुरंग तरंग गंग-गुन गुनत सुहाए।
पूरित अमित उमंग अंग बेला पर आए॥ १८॥

तहँ देखे निज बाट लखत सुभ ठाठ जमाए।
गंगागम सुधि पाइ धाइ उमगत चलि आए॥
मंत्री सेनप सखा दास मुखिया हित-भीने।
असन बसन सुख-साज-बाज नाना-विधि लीने॥ १९॥

उतरि तुरत नरनाह तहाँ दीन्यौ सुभ दरसन।
धाइ-धाइ सुख पाइ लगे सब पायनि परसन॥
पुलकित-तन नर-नाह सबनि भुज भरि-भरि भेट्यौ।
पूछि-पूछि कुसलात तोषि दारुन दुख मेट्यौ॥ २० ॥

तब सब हठ करि उबटि भूप सादर अन्हवाए।
बसन बिभूषन बिबिध-भाँति हिय हुलसि धराए॥
रसना-रंजन बहु प्रकार ब्यंजन सुचि परसे।
सबनि संग बैठाइ पाइ भूपति सुख-सरसे॥ २१ ॥

गिरिजा-नंदन बंदि चले चढ़ि चढ़ि सब स्यंदन।
भरत भूरि आनंद करत नरबर-अभिनंदन॥
जहँ-तहँ उतरि भुआल गंग-कुल-कीरति गावत।
मग के परम पुनीत धाम अभिराम लखावत॥ २२ ॥

इहिँ बिधि सुरसरि-तीर-तीर कासी लौं आए।
तहाँ पूजि पुनि माँगि बिदा लोचन जल छाए॥
बिस्वनाथ-पद बंदि बिबिध द्विज-गन सनमाने।
चले अवध-पुरि-ओर उमगि उर आनँद-साने॥ २३ ॥

नृप-आगम-सुभ-समाचार पुर-बासिनि पाए।
चौहट हाट बिराट बाट बहु ठाट सजाए॥
ध्वजा पताका प्रचुर चारु तोरन छबि-छाजी।
मंजुल मंगल-कलस रंभ-खंभनि की राजी॥ २४ ॥

पुरजन परिजन स्वजन चले उमगत अगवानी।
आगैं किए वसिष्ठ आदि द्विज-गन बिज्ञानी॥
पुर बाहिर ह्वै लगे लखन लोचन ललकाए।
तब लौं दृग-पथ आइ भगीरथ-रथ नियराए॥ २५॥

लखि वसिष्ठ कुल-इष्ट भूप स्यंदन तजि धाए।
पुलकि ढारि दृग बारि सपद पायनि लपटाए॥
कंपित कर बर पकरि माथ मुनि-नाथ उठायौ।
बरबस बिरति बिसारि प्रेम-कातर उर लायौ॥ २६॥

बार-बार कुसलात पूछि आनँद अवगाह्यौ।
कर्म-बीर-नर-नाह-साहसहिँ हुलसि सराह्यौ॥
तब नर-बर सब अपर बिप्र-बृंदनि-पद बंदे।
पुर-बासिनि सनमानि मानि सुख सबनि अनंदे॥ २७॥

ग्राम-देवतनि पूजि दान बहु भाँतिनि कीन्यौ।
नाइ ईस कौं सीस पाय पुर-अंतर दीन्यौ॥
चले सकल मिलि कहत सुनत नृप-सुजस-कहानी।
पुर-बासिनि की भीर दरस-हित अति उमगानी॥ २८॥

धरे बसन बहु-भाँति पाँति दुहुँ ओर लगाए।
जय-जय-धुनि सब करत महा मन मोद मनाए॥
साजे नव-सत सुमुखि-बृंद छातनि छबि छावत।
गावत मंगल गीत सुमन सादर बरसावत॥ २९॥

बालक बलित-बिनोद फिरत देखत सो मेला।
कोउ कछु कौतुक लखत कोऊ कहुँ करत झमेला॥
कोउ छेकत छैलात देखि कहुँ मंजु खिलौना।
कोउ ऐंठत इठलात मिठाइनि के लहि दौना॥ ३० ॥

सिंह-पौरि पर भई भीर सोभित अति भारी।
हय गय स्यंदन सुभग सजे बहु बाँधि पँत्यारी॥
सेनप-स्रेनी लसति अस्त्र-सस्त्रनि सौं साजी।
जहँ-तहँ राजति रुचिर राज-काजिनि की राजी॥ ३१ ॥

लै लै कंचन-कलस कहूँ सुभ सुघर सुआसिनि।
साजे मंगल-थार थिरकि गवनतिं मृदु-हासिनि॥
बंदी मागध सूत सुजस गावत सुख-कारी।
भीर सँभारत लिए पुरट-लकुटी प्रतिहारी॥ ३२ ॥

घंटा - संख - मृदंग - झाँझ - भेरी-धुनि छाई।
भूप-मंडली मंडि नगर तब लौं तहँ आई॥
लही सबनि सुख-मोट चोट धौंसनि पर धमकी।
मनहु अवध पर घेरि घटा आनंद की घमकी॥ ३३ ॥

बंदे बिप्र-समाज राज-कुल-जन नृप भेंटे।
पूछि कुसल हँसि हेरि प्रजा-परिजन-दुख मेटे॥
पुलकि पूजि कुल-देव दान दै अवसर-वारे।
मुनि-नाथहिं सिर नाइ पाय अंतःपुर धारे॥ ३४ ॥

चहल-पहल तहँ मची मंजु महिलनि की भारी।
वसन-विभूषन-वलित ललित अवसर-अनुरागी॥
कंचन-करवा वारि चलतिँ ढरकावन चेरी।
राई-लोन उतारि उमगि वलि जातिँ जठेरी॥ ३५॥

विप्र-वधू कुल-मान्य देतिँ आसिष सुख-सानी।
परसतिँ पाय नवाइ सीस सरसत-दृग रानी॥
पुरट-पाट-पट पारि पाँवड़े मृदुल मनोहर।
सादर चलीँ लिवाइ ललकि गावति सुभ सोहर॥ ३६॥

मनि-मंदिर बैठाइ पाय सानंद पखारे।
सजि-सजि कंचन-थार आरते उमगि उतारे॥
लगीँ निछावर होन सोन-मुक्ता-मनि-ढेरी।
भरि-भरि कोँछनि चलीँ भाट-नट-नारि कमेरी॥ ३७॥

इहिँ विधि परमानंद होन नृप-मंदिर लागे।
परिजन-प्रजा-समूह सकल सुख लहि अनुरागे॥
घर घर ब्यापी भूप-सुकृत-सुभ-कथा सुहाई।
कहत सुनत चहुँ कोद मोद-मढ़ि लोग लुगाई॥ ३८॥

गुरु बसिष्ठ तब सोधि सुदिन दीन्यौ अनुसासन।
सभा-भौन सजि बिसद बन्यौ दूजौ इंद्रासन॥
द्विज-गन परम पुनीत प्रीति-जुत न्योति पठाए।
सचिव सूर सामंत स्वजन परिजन जुरि आए॥ ३९॥

सभाधिकारिनि सबनि जथोचित आसन दीने ।
पुरबासिनि बर ब्यूह-बद्ध चहुँ दिसि थित कीने ॥
बंदी मागध सूत बाँधि स्रेनी सजि सोहत ।
नृप-आगम की बाट सबै प्रमुदित-चित जोहत ॥४०॥

इत नृप न्हाइ सिँचाइ मुनिनि अभिमंत्रित जल सौँ ।
साजि अंग स-उमंग बिभूषण बसन बिमल सौँ ॥
पंच-देव कुल-देव नवग्रह पूजि जथाबिधि ।
गुरुदेवहिँ सिर नाइ चले उमड़्यौ आनँद-निधि ॥४१॥

सुभ सबच्छ गो लच्छ पैारि पर मोद मढ़ाए ।
सोपस्कर करि दान सभा-मंदिर मैँ आए ॥
तहँ बसिष्ठ पढ़ि बेद-मंत्र दीन्यौ अनुसासन ।
करि प्रनाम तब कियौ भूप भूषित सिंहासन ॥४२॥

स्वस्ति-पाठ अरु जय-जय की धुनि-धूम सुहाई ।
सभा-भौन तैँ उमड़ि घुमड़ि चारहुँ दिसि छाई ॥
बहु प्रकार के दान मान महि-देवनि पाए ।
जाचक भए अजाच प्रजा परिजन मुद-छाए ॥४३॥

प्रीति नीति सौँ पागि प्रजा पालन नृप लागे ।
सुख संपति भरि भूरि भाग बसुधा के जागे ॥
बिरदावलिहिँ बढ़ाइ लगे चारन उच्चारन ।
स्वस्ति श्री तप-तरनि तरनि-तारनि-अवतारन ॥४४॥

लहि श्रीजगदंब-निदेस बर गंग-गिरा-गननाथ-वर।
यह रतनाकर कीन्यौ अमर गंग-चरित सुभ सौख्यकर ॥४५॥

समाप्ति-संवत्

संवत् उनइस सै असी गुरु-पूनौ भृगु-वार।
गंग-अवतरन काव्य यह पूरन भयौ उदार॥

आवै इठलात नंद - महर - लड़तौ लखि,
पग-पग भाइ-भीर अटकति आवै है।
रूप-रस-माती चारु चपल चितौनि कुल,
गैल गहिबे कौं हठि हटकति आवै है॥
अवनि-अकास-मध्य पूरि दिग-छोरनि लौं,
छहरि छबीली छटा छटकति आवै है।
मटकत आवै मंजु मोर कौ मुकुट माथैं,
बदन सलोनी लट लटकति आवै है॥ १॥

आए अवधेस के कुमार सुकुमार चारु,
मंजु मिथिला की दिव्य देखन निकाई हैं।
सुनि रमनी - गन रसीली चहुँ ओरनि तैं,
झौरनि की झौर दौरि दौरि उमगाई हैं॥
तिनके अनोखे-अनिमेष-दृग पाँतिनि पै,
उपमा तिहूँ पुर की ललकि लुभाई हैं।
उन्नत अटारिनि पै खिरकी-दुवारिनि पै,
मानौ कंज-पुंजनि की तोरन तनाई हैं॥ २॥

अब न हमारौ मन मानत मनाएँ नैकुँ,
टेक करि बापुरौ बिबेक नखि लेन देहु।
कहै रतनाकर सुधाकर-सुधा कौं धाइ,
तृषित चकोरनि अघाइ चखि लेन देहु॥
संक गुरु लोगनि के बंक तकिबे की तजि,
अंक भरि सिगरौ कलंक सखि लेन देहु।
लाज कुल-कानि के समाज पर गाज गेरि,
आज ब्रजराज की लुनाई लखि लेन देहु॥ ३॥

सो तौ करै कलित प्रकास कला सोरस लौं,
यामैं बास ललित कलानि चौगुनी कौ है।
कहै रतनाकर सुधाकर कहावै वह,
याहि लखैं लगत सुधा कौ स्वाद फीकौ है॥

समता सुधारि औ बिसमता बिचारि नीकैं,
ताहि उर धारि जो बिसद ब्रज-टीकौ है।
चारु चाँदनी कौ नीकौ नायक निहारि कहौ,
चाँदनी कौ नीकौ कै हमारौ चाँद नीकौ है ॥ ४ ॥

पाती लै चितैाति चहुँ ओरनि निहोरनि सौं,
आई बन बाल ज्यौं तरंग छवि-बारी की।
कहै रतनाकर पिछानि पर पैठत ही,
बिसद बताई कुंज मालती निवारी की ॥
सौंहैं लखि अधर दबाए मुसुकानि मंद,
मोरति मदन-मन-मोहिनी बिहारी की।
लोचन लचाइ रही सोचनि सकी सी चकि,
सूरति सुरति करि पठवन हारी की ॥ ५ ॥

चंचल चारु सलोनी तिया इक, राधिका कैं ढिग आइ अजानी।
दै कर कागद एक कह्यौ बस, रीझिबौ मोल है याकौ सयानी ॥
चित्र तैं दीठि चितेरिनि ओर, चितेरिनि तैं पुनि चित्र पै आनी।
चित्र समेत चितेरिनि मोल लै, आपु चितेरिनि-हाथ बिकानी ॥ ६ ॥

आजु हौं गई ती नंदलाल बृषभानु-भौन,
सुधि ना तहाँ की बुधि नैंकुँ बहरति है।
कहै रतनाकर बिलोकि राधिका कौ रूप,
सुखमा रती की ना रतीकु ठहरति है ॥

मंद मुसुकानि के अमंद दुति-दामनि की,
छिति लौं अटा सौं छटा छूटि छहरति है।
पवन-प्रसंग अंग-रंग की तरंगनि सौं,
आबी चीर चटकि गुलाबी लहरति है॥ ७॥

आँगन मैं अंगना अन्हाइ अनगाति लट,
लटपट लौटे पट पटल खवा परे।
सौहैं लखि औचक हँसौं हैं नंदनंदन कौं,
झझकि सकुची मुरि मंजु मुरवा परे॥
कूलनि पै अमल अमोल कनमूलनि के,
लोल कनफूलनि के झहरि झवा परे।
कंधनि पै ढहरि सहरि पुनि पीठि केस,
लहरि लचीली लंक छहरि छवा परे॥ ८॥

आवत निहारे हौं गुपाल एक बाल जाकी,
लाग्यौ उपमा मैं कबि कोबिद समाज है।
तरुन दिनेस दिब्य अरुन अमोल पाय,
छीन कटि केहरि औ गति गजराज है॥
संभु कुच मुख पदमाकर दिमाक देव,
तापै घनआनँद घनेरौ कच-साज है।
छबि की तरंग रतनाकर है अंग मुस-
कानि रस-खानि बानि आलम निवाज है॥ ९॥

फूलनि की सेज तैं सुगंध सुखमा सी उठी,
प्रात अँगिरात गात आरस-गहर है।
कहै रतनाकर बिभावरी बिलासनि की,
सुधि सौं सलोने अंग-अंग थरहर हैं॥
सुघर सराटे परे पट पचतोरिया पै,
उमगति फूटि छबि-फाब की फहर है।
कसनि सुरंग संग मोतिनि की स्रेनी खुली,
बेनी पर तरल त्रिबेनी की लहर है॥ १० ॥

छीर-फेन कैसी फबी अमल अटारी पर,
आई सुकुमारी प्रान-प्यारी नँद-नंद की।
मानौ रतनाकर-तरंग-तुंग-शृंग पर,
सुखमा सुहाई लसै कमला सुछंद की॥
जैसैं दीप-दीपति पै दीप मनि-दीपति है,
दीपमनि पै ज्यौं दुति दामिनि अमंद की।
निखिल नछत्रनि पै चंद की प्रभा है जिमि,
चंद की प्रभा पै त्यौं प्रभा है मुख-चंद की ॥११॥

सोभा-सुख-पुंज वा निकुंज उमड़्यौ सौ आज
ग्वाल गयौ कोऊ इमि कहत कहानी सी।
सो सुनि ललकि जाइ ज्यौं उत बिलोकी एक,
बाल मनमथ-मन-मथन-मथानी सी॥

ख्याल परी ग्वाल की सुढाल मृदु मूरति सो,
रस - रतनाकर - तरंग उमगानी सी।
बिहँसि बिलोकि लाल लोल ललचाने घुरि,
मुरि मुसकाइ सो सकोच-सरसानी सी ॥१२॥

जगर मगर ज्योति जागति जवाहिर की,
पाइ प्रतिबिंब-ओप आनन-उजारी की।
छबि रतनाकर की तरल तरंगनि पै,
मानैा जगाजोति होति स्वच्छ सुधाधारी की॥
संग मैं सखी-गन के जोबन-उमंग-भरी,
निरखति सोभा हाट बाट की तयारी की।
जित जित जाति बृषभानु की दुलारी फबी,
तित तित जाति दबी दीपति दिवारी की ॥१३॥

जरद चमेली चारु चंपक पै ओप देति,
डोलति नबेली हुती सदन-बगीची मैं।
कहै रतनाकर सुदुति सुखमा की जाकी,
दमकि रही है दिब्य पूरब प्रतीची मैं॥
भुज भरि लीनी रसदानि आनि औचक हीं,
लरजि लरजि परी बाम खीचा खीची मैं।
हिरकि रही है स्याम अंक मैं ससंक मनैा,
थिरकि रही है बिज्जु बादर-दरीची मैं ॥१४॥

आज उहिँ बाग कौ न भाग है सराह्यौ जात,
हाँसलौ हिरात ह्वै हजार-जीह-धारी कौ ।
हौं तौ गई औचक ही भौचक बिलोकि भई,
बानक अनूप रंग रूप रुचिकारी कौ ॥
संग ना सहेली जासौं बूझूँ कछु जान्यौ जाइ,
भाग भर्‌यौ भारी नाम गाम सुकुमारी कौ ।
जाकी बृषभानु-सुता प्रगट प्रभाव पेखि,
मंद करै चंदहिँ अमंद मुख प्यारी कौ ॥१५॥

सोई सुख-भोई केलि-मंदिर-अटारी बाल,
छबि की छटारी छिति छूटि छहरति है ।
साँसनि प्रसंग सौं उमंगि अंग आनन पै,
रूप-रतनाकर-तरंग लहरति है ॥
भाप के लगे तैँ सियराइ रंग औरैं पाइ,
चारु मुख-चंद यौं बुलाक फहरति है ।
पिय-परिरंभ पाइ रोहिनि रसीली मनौ,
पुलकि पसीजि रस-भीजि थहरति है ॥१६॥

मानिक-मंदिर मोतिनि की चिकैं, ठाढ़ी तहाँ गुन रूप की खानी ।
लाल की माल उठाइ उरोज तैं, है सरुझावन मैं अरुझानी ॥
साम्हुहैं होतही जाके जबान पै, आवति यौं उपमा उमगानी ।
× × + उतारत संभु पै आरति बानी ॥ १७ ॥

ज्यौं तरवा - तरनी - किरनावली, सोभा-छपाकर मैँ छबि छावै
त्यौँ रतनाकर रावरी लौनी, लुनाई सबै सुठि स्वाद मैँ ल्यावै
जाति कही मुख की सुखमा नहीँ, माधुरी सौँ अधरानि अघावै
रावरी ठोड़ी के कूप अनूप सौँ, रूप त्रिलोक कौ पानिप पावै ॥ १

अमल अनूप रूपपानिप - तरंगनि मैँ,
जगमग ज्योति आनि सान सौँ बसति है।
कहै रतनाकर उभार भए अंग माहिँ,
रंचक सी कंचुकी अदेख उकसति है॥
रसिक-सिरोमनि सुजान मनमोहन की,
लाख-अभिलाष-भौंर-भीर हुलसति है।
अभिनव जोबन-प्रभाकर-प्रभा सौँ बाल,
अरुन उदै की कंज कली सी लसति है ॥ १९ ।

सरसन लाग्यौ रस रंग अंग-अंगनि मैँ,
पानिप तरंगनि मैँ बाल बिलसति है।
कहै रतनाकर अनंग कौ प्रसंग पैान,
पाइ कंपि जाइ काँति दूनी दरसति है॥
रति-रस लंपट मलिंद मन भावन कैँ,
उर अभिलाष लाख भाँति की बसति है।
परम पुनीत बैस-संधि कौ प्रभात पाइ,
अरुन उदै की कंज कली सी लसति है ॥ २० ।

धरे पाइ अन्हाइबे कौं जल मैं, अँग अंग फुरैरिनि सौं थहरैं।
रतनाकर धूर-कपूर निचोल पै, लोल छटा तन की फहरैं॥
कच मेचक नीठि सँभारत हूँ, छुटि पीठि पैं यौं छवि सौं छहरैं।
मनु गंग की मंद तरंगनि पै, लहरैं जमुना-जल की लहरैं॥ २१॥

अँजन बिनाहूँ मन-रंजन निहारि इन्हैं,
गंजन है खंजन-गुमान लटे जात हैं।
कहै रतनाकर बिलोकि इनकी त्यौं नोक,
पंचवान वाननि के पानी घटे जात हैं॥
स्वच्छ सुखमा की समता की हम तासौं खिले,
बिविध सरोजनि सौं हौज पटे जात हैं।
रंग है री रंग तेरे नैननि सुरंग देखि,
भूलि भूलि चौकड़ी कुरंग करे जात हैं॥ २२॥

बैठे भंग छानत अनंग-अरि रंग रमे,
अंग-अंग आनँद-तरंग छवि छावै है।
कहै रतनाकर कछूक रंग ढंग औरै,
एकाएक मत्त है भुजंग दरसावै है॥
तूँबा तोरि साफी छोरि मुख विजया सौं मोरि,
जैसैं कंज-गंध पै मलिंद मंजु धावै है।
बैल पै बिराजि संग सैल-तनया लै वेगि,
कहत चले यौं कान्ह बाँसुरी बजावै है॥ २३॥

जाके सुर-प्रबल-प्रवाह कौ झकोर-तोर,
सुर-मुनि-बृंद-धीर-कुधर ढहावै है।
कहै रतनाकर पतिब्रत-परायन की,
लाज कुल-कानि कौ करार बिनसावै है॥
कर गहि चिबुक कपोल कल चूमि चाहि,
मृदु मुसकाइ जो मयंकहिँ लजावै है।
ग्वालिनि गुपाल सौँ कहति इठलाइ कान्ह,
ऐसी भला कोऊ कहूँ बाँसुरी बजावै है॥ २४॥

निकसत नैंकु हीँ अनेक मन-मोहन कौ,
करषन-मंत्र मँज्यौ बाँसुरी-बदन तैँ।
कहै रतनाकर रसीले सुर-ग्रामनि तैँ,
रागिनी रँगीली दाबि आँगुरी रदन तैँ॥
गेहनि तैँ गोपिका सची त्यौँ मुनि मेहनि तैँ,
नेहनि तैँ नाधीँ नाग-कन्यका छदन तैँ।
अंबर तैँ किन्नरी कुरंगी कल कानन तैँ,
निकसतिँ पन्नगी पिनाकी के सदन तैँ॥२५॥

कानि की सौति गुमान की बैरिनि, स्वैरिनि लौँ गलगाजि रही है।
जीवन दै जड़ कौँ रतनाकर, जीवित कौँ जड़ साजि रही है॥
जोगिनि कौ हिय-नादहूँ बाद कै, आपनौ बाद हीँ छाजि रही है।
लाज समाज पै गाज गिरै ब्रज-राज की बाँसुरी बाजि रही है॥२६॥

काहू मिस आजु नंद-मंदिर गुविंद आगैं,
लेतहि तिहारौ नाम धाम रस-पूर कौ।
सुनि सकुचाइ लगे जदपि सराहन से,
देखि कला करत कपोत अति दूर कौ॥
मृगमद-बिंदु तऊ चटक दुचंद भयौ,
मंद भयौ खौर हरिचंदन कपूर कौ।
थहरन लागे कल कुंडल कपोलनि पै,
छहरन लाग्यौ सीस मुकुट मयूर कौ॥२७॥

जासौं तप्यौ जीवन जुड़ात सियरात नैन,
चैन परे जैसैं चारु चंदन चहल मैं।
कहै रतनाकर गुपाल हौं बिलोकी हाल,
ऐसी बाल होत सुख जाकी है टहल मैं॥
करत कहा हौ बैठि बट के बितान बीच,
बेगि चलौ धाइ तौ दिखाऊँ हौं सहल मैं।
ग्रीषम की भीति मनौ सीतलता आनि दुरी,
धरि कै सरीर वा उसीर के महल मैं॥२८॥

गूजरी गँवारी बसि गोकुल गुमान करै,
कान करै क्यौं न बानि मेरी चित लाइ कै।
कहै रतनाकर न रंचक रहैगौ यह,
बेगही बहैगौ बतरैबौ सतराइ कै॥

चाह भरे चाहन की चरचा चलावै कौन,
सेसहू न पावै कहि एतौ मुख पाइ कै।
गरब रितै है जब चेटक-निधान कान्ह,
तो तन चितैहैं नैकुँ मुरि मुसकाइ कै ॥२९॥

बाल बन-केलि लाल देखन चली जू दौरि,
औरै और ना तौ सुख-लाँक लुने लेत हैँ।
कहै रतनाकर रुचिर-रस-रंग देखि,
भृंग भाँवरे दै भूरि भाग गुने लेत हैँ॥
भूलि भूलि कलित कुलंग जुरि दंग भए,
बानी-बीन बिसद कुरंग सुने लेत हैँ।
स्रम-जल-बिंद मुख-चंद कौ अमंद पेखि,
लेखि सुधा-सीकर चकोर चुने लेत हैँ ॥३०॥

प्रान पूरि गहब गलीचा-बनी मूरति हूँ,
पाइ कौ परस पाइ छरकन लागै है।
कहै रतनाकर चकोर चित्रहू कौ चाहि,
आनन-अमंद-चंद फरकन लागै है॥
तन की सुबास फरिया के फबै फूलनि सौं,
पदुम-सुगंध-रासि ढरकन लागै है।
अधर सुधा सौं सनी बात कौ प्रसंग पाइ,
बेसरि-मयूर-मंजु थरकन लागै है ॥३१॥

जस-रस मधुर लुनाई रतनाकर कौ,
कानन मैं बरसि घटा लौं ननदी चली।
बहि तृन पात लौं सकल कुलकानि गई,
गुरु गिरि रोक-टोक ह्वै जिमि रदी चली ॥
लाख अभिलाष-भौंर भ्रमन गँभीर लगौं,
उमगि उमंग-बाढ़ करनि बढ़ी चली।
धीरज-करार फोरि लज्जा-द्रुम तोरि बोरि,
नोकदार नैननि तैं निकसि नदी चली ॥३२॥

औचक अकेले मिले कुंज रस पुंज दोऊ,
भौंचक भए औ सुधि बुधि सब ख्वै गईं।
कहै रतनाकर त्यौं बानक बिचित्र बन्यौ,
चित्र की सी पलकैं सुभौंहनि मैं घ्वै गईं ॥
नैननि मैं नैननि के बिंब प्रतिबिंबनि सौं,
दोऊ ओर नैननि की पाँति बँधि ह्वै गईं।
दोउनि कौं दोउनि के रूप लखिबे कौं मनौ,
चार आँख होत हीं हजार आँख ह्वै गईं ॥३३॥

लाख अभिलाषनि कौ होत ही कुलाहल है,
मोकलौ न पावैं मग नैंकु निबुकाइ दै।
कहै रतनाकर झरोखनि के मोखे करि,
कूदि काढ़िबे कौ तिन्हैं बानक बनाइ दै ॥

निडर निसंक बंक भौंहनि कमान तानि,
नैननि के बान द्वैक औरहूँ चलाइ दै।
तलफत त्यागि जात जुलम न ऐसौ करि,
हा हा हँसि हेरि घूमि घायनि अघाइ दै ॥३४॥

न चली कछू लालची लोचन सौं, हठ-मोचन कै चहनोई पर्‌यौ।
रतनाकर बंक-बिलोकन-बान, सहाए बिना सहनोई पर्‌यौ॥
उततैं वह गात छुवाइ चले, तब तौ मन कौं ढहनोई पर्‌यौ।
भरि आह कराह 'सुनौ जू सुनौ,' नँदलाल सौं यौं कहनोई पर्‌यौ ॥३५॥

जोबन उमंग सौं चलायौ चख जो बन मैं,
सो बनि अनंग कौ निषंग सालि सालि उठै।
कहै रतनाकर सघन बरुनी की पाँति,
भाँति भाँति साँति की सनाह चालि चालि उठै॥
हाँस-भरे हुलसि निहारत निहारि उन्हैं,
घूँघट कियौ सो घट घूमि घालि घालि उठै।
बंक लखि लौटनि मैं लंक की अनोखी अति,
एरी वह लचक हिये मैं हालि हालि उठै ॥३६॥

उन्नत ललाट नैन लोलनि कपोलनि पै,
अधर अमोलनि पै ललकि लुभान्यौ जात।
ग्रीवा कल कंध भुजा उरज उतंगनि पै,
रोमराजी रंगनि पै लखि ललचान्यौ जात॥

त्रिवली तरंगनि के परत झकोर माहिँ,
भौंर माहि नाभी के निरंतर भुलान्यौ जात।
कटि-तट जाइ पै न पाइ कछु दाइ तहाँ,
हेरत ही हेरत सु मो मन हिरान्यौ जात ॥३७॥

संग मैं सहेलिनि के जोवन-उमंग-रली,
बाल अलबेली चली जमुना अन्हाइ कै।
कहै रतनाकर चलाई कान्ह काँकर त्यौं,
ठठकि सुजान सखियानि सौं पछाइ कै॥
दाएँ कर गागरि सँभारि झुकि बाईं ओर,
बाएँ कर-कंज नैकु घूँघट उठाइ कै।
दै गई हिये मैं हाय दुसह उदेग दाग,
लै गई लडैती मन मुरि मुसुकाइ कै ॥३८॥

नागरी नवेली अरबिंद-मुखी चोप-चढ़ी,
कढ़ी जमुना सौं जल बाहिर अन्हाइ कै।
झीनौ नीर भीनौ चीर लपट्यौ सरीर माहिँ,
परत न पेखि तन-पानिप समाइ कै॥
लाल ललचौंहैं तहाँ सौंहैं आनि ठाढ़े भए,
हेरत हँसौंहैं अंग अंगनि लुभाइ कै।
कर उर ऊरुनि दै झुकि सकुचाइ फेरि,
धाइ जमुना मैं धँसी मुरि मुसुकाइ कै ॥३९॥

चाँदनी बिलोकन कौँ चौहरे अटा पै चढ़ी,
चंद के करेजैँ भयौ कठिन कराकौ है।
कहै रतनाकर हँसौँ हैँ ब्रजचंद हेरि,
फेरि मुख कीन्यौ बाल बीच अचरा कौ है॥
संग की सहेली कह्यौ हेली! मन टोहि कछू,
जोहि कुम्हिलात रूप रुचिर हरा कौ है।
अधर-सुधाधर कौँ देखति कहा हौ उतै,
देखौ यह सुधर सुधाधर धरा कौ है॥४०॥

होरी खेलिबे कौँ कढ़ी केसरि कमोरी घोरि,
उमगति आनँद की तरल तरंग मैँ।
कहै रतनाकर महर कौ लड़ैतौ छैल,
रोकी गैल आनि हुरिहारनि के संग मैँ॥
मो तन निहारि धारि पिचकी-अधार अंक,
मारी मुसुकाइ धाइ उरज उतंग मैँ।
सोई पिचकारी रँगी सारी लाल रंग माहिँ,
सोई रँगीँ अँखियाँ हमारी स्याम-रंग मैँ॥४१॥

देखि स्याम सुंदर कौँ देखत लगाए दीठि,
पीठि फेरि प्रथम कछूक अनखाति है।
कहै रतनाकर बहुरि मुरि चाहि बंक,
संकित मृगी लौँ चकि छरकि छपाति है॥

बूझति न रंच पंचसर के प्रपंच बाल,
लाल की ललक लखिबे कौं लुरियाति है।
इत उत दाव देखिबे कौं हिरकीयै रहै,
आनि खिरकी लौं फिरकी लौं फिरि जाति है ॥४२॥

सूनौ निहारि बिलोकि इतै उत, रोकि लियौ मग कुंजगली कौं।
आँगुरी चूमि चितै चटकाइ, बलाइ लै भाइ बिहाइ छली कौं॥
ठोडी ठगी ठसकीली दिए कर-कंज किए अनुहार कली कौं।
चूमि कपोल बिकाइ बिलोकत, आनन श्रीबृषभानु-लली कौं॥४३॥

मंजुल मोर पखा छहरैं छबि, सौं जब ग्रीव कछू मटकावत।
नूपुर की झनकारनि पै झुकि, ग्वारनि गोधन-गीति गवावत॥
आनँद - चंद - मरीचिनि सौं, रतनाकर आनँद कौ उमगावत।
देखि सखी वह मैन लजावत, साँवरौ बेनु बजावत आवत ॥४४॥

ऐंडत औ इठलात फिरौ करि, फेर कछू मग बेर लगावत।
चारिहूँ ओर चितै रतनाकर, बेनु बजावत सैन बुझावत॥
मोहिनी यौं मनमोहन सौं, इठलाइ कहै लखि नैन नवावत।
बात कछू हमहूँ तौ सुनैं इत कौं, नित कौन कौं देखन आवत ॥४५॥

मान ठानि बैठ्यौ इत परम सुजान कान्ह,
भौंहैं तानि बानक बनाइ गरवीली कौ।
कहै रतनाकर बिसद उत बाँकौ बन्यौ,
बिपिन-बिहारी-बेष बानक लड़ीली कौ॥

लखि सखि आज की अनूप सुखमा कौ रूप,
रोपै रस रुचिर मिठास लौन-सीली कौ ।
ललकि लचैबौ लोल लोचन लला कौ इत,
मचलि मनैबौ उत राधिका रसीली कौ ॥४६॥

बीति जाति बातनि मैं सुखद सँजोग-राति,
अंतर थिरात नाहिँ साँझ औ सबेरे मैं ।
कहै रतनाकर कुलिस-हिय-धारी भारी,
करत अकाज आप नास हू है हेरे मैं ॥
मिलि घनस्याम सौं तमकि जो बियोग महिँ,
चमकि चमक उपजाई उर मेरे मैं ।
ताके बदले कौ दुख दुसह बिचारि आज,
गरक गई है मनौ बीजुरी अँधेरे मैं ॥४७॥

आज बड़े भागनि मिलैंगे ब्रजराज आइ,
साज सुख-संपति के सिगरे सजाइ दै ।
कहै रतनाकर हमारे अभिलाष लाख,
रजनी रँचक ताहि सजनी बढ़ाइ दै ॥
ढूँढ़ि कै अगस्त कौं बिनै करि बुलाइ बेगि,
कैसैं हूँ बुझाइ ऐसौ बानक बनाइ दै ।
बिंध्याचल अचल परचौ है चलि जातैं जाइ,
ओटि उदयाचल कौं मचल मचाइ दै ॥४८॥

मान कियौ मोहन मनीसी मन मौज मानि,
पानि जोरि हारीँ जब सखियाँ मन्यौ नहीँ ।
तब बरजोरी करि नवल किसोरी भेस,
ल्याईँ केलि-भौन नैकु टेकहिँ गन्यौ नहीँ ॥
प्यारी बनि प्रीतम भुजनि भरि लीन्यौ उन,
कल छल कीन्यौ बहु जात सु भन्यौ नहीँ ।
प्रथम समागम सौ सबही बन्यौ पै एक,
अंक तैँ छटकि छूटि भाजत बन्यौ नहीँ ॥४९॥

दीप-मनि-दिब्य-दीप-दाम-दुति-दीपति सौँ,
दीसत न दावँ देह दीठि सौँ दुरनि की ।
कहै रतनाकर अनंग-रंग मंदिर कौ,
रंग लखि दंग होतिँ अंगना सुरनि की ॥
केलि-सुख-संपति कौँ दंपति सकेलि रहे,
आपै अंग आतुरी उमंग की घुरनि की ।
लाजनि लजनि लाड़िली के लोल लोचन की,
बाजनि बजनिये अनूप नूपुरनि की ॥५०॥

करत कलोल केलि-मंदिर अखंड दोऊ,
सुखमा सकेलि ब्रहमंड के पुरनि की ।
कहै रतनाकर मसूसै मैनका कौँ मैन,
सुनि धुनि धीमी घूँघुरुनि के घुरनि की ॥

सोर सिसिकीनि की सुनत सकुचाइ जाइ,
सुरति सिराइ मंजुघोषा कौं सुरनि की।
गंजति गुमान किन्नरी की किन्नरी कौ अरी,
बाजनि बजनि ये अनूप नूपुरनि की ॥५१॥

दीठि तुम्हैं छ्वै छली पलट्यौ रँग, दीसत साँवरौ साज सबै है।
कहै रतनाकर रावरे अंगनि, चेटक पेखि प्रतच्छ परै है॥
देति हैं गोरस ठाढ़े रहौ उत, रार करैं कछु हाथ न ऐहै।
साँवरे छैल छुवौगे जो मोहिँ तौ, गातनि मेरे गुराई न रैहै ॥५२॥

आवन भयौ है पिय प्यारे मन-भावन कौ, सुख-सरसावन कौ जेठ की जहल मैं।
कहै रतनाकर पुताइ राख्यौ प्यारी गेह, घोरि घनसार घनौ चंदन-चहल मैं॥
बिरह बिथानि की कथानि के बखानन कौ, ध्यान हूँ भुलाइ हिय-हौंस की हहल मैं।
मेटत मनोज-पीर भेंटत अधीर दोऊ, नीर सिंचे सुखद उसीर के महल मैं ॥५३॥

ननद जिठानी सास सखिनि सयानी मध्य,
बैठी हुती बाल अलबेली जहाँ आइ कै।
कहै रतनाकर सुजान मनमोहन हूँ,
आए ललचाइ तहाँ कछु मिस ठाइ कै॥
चहत बनै न भरि लोचन दुहूँ सौं अरु,
रहत बनै न नार नैं सुक नवाइ कै।
दुरि दुरि औरनि सौं जुरि जुरि तौरनि सौं,
घुरि घुरि जात नैन मुरि मुसकाइ कै ॥५४॥

गूँथन गुपाल बैठे बेनी बनिता की आप,
हरित लतानि कुंज माहिँ सुख पाइ कै।
कहै रतनाकर सँवारि निरवारि बार,
बार बार बिबस बिलोकत बिकाइ कै॥
लाइ उर लेत कबौँ फेरि गहि छोर लखैँ,
ऐसे रही ख्यालनि मैँ लालन लुभाइ कै।
कान्ह-गति जानि कै सुजान मन मोद मानि,
करत कहा हौ कह्यौ मुरि मुसुकाइ कै ॥५५॥

मुख-चंद की चारु मरीचिनि सौँ, दृग दोउनि के सियराने रहैँ।
रतनाकर त्यौँ मुसकानि लजानि के, हाथनि दोऊ बिकाने रहैँ॥
इनकैँ रँग वै उनकैँ रँग ये, रुचि सौँ दिन रैनि रँगाने रहैँ।
पुलकाने रहैँ मुलकाने रहैँ, सुख साने रहैँ हरियाने रहैँ ॥५६॥

बैठी बनि स्याम बाम मंजुल निकुंज-धाम,
काम हू पै तैसी........................।
कहै रतनाकर कै लाल कौँ अनूप बाल
जाकौ बिधि हूँ पै रूप ढारत बनै नहीँ॥
ल्याईँ तहाँ सुघर सहेली चहुँ फेर घेरि,
बिकस्यौ बिनोद सो उचारत बनै नहीँ।
उत तौ बनै न अंक भरत निसंक चाहि,
बाहिँ इत ढीली हू निवारत बनै नहीँ ॥५७॥

नाक कैँ चढ़ावत पिनाक भौँह ढीली परैँ,
　　　　चढ़त पिनाक भौँह नाक मुसकाइ दै ।
कहै रतनाकर त्यौँ ग्रीवहूँ नवाइ लिऐँ,
　　　　मुख तैँ टरैँ न नैन गौरव गवाइ दै ॥
अनख बढ़ावत अनंग की तरंग बढ़ै,
　　　　धीरज-धरा तैँ मन-पायहिँ उठाइ दै ।
रहति हियैँ ही हौँस हिय की हमारे हाय,
　　　　पैयाँ परौँ नैँक मान करिबौ सिखाइ दै ॥५८॥

जानि इकंत भरी भुज कंत भयौ, तबहीँ तहाँ आइबौ तेरौ ।
ताउन लागे रिसाने से ह्वै कछु, देखत भौँह चढ़ाइबौ तेरौ ॥
छाँड़ि दई 'सब जानतीँ जान द्यौ', यौँ सुनि कै सतराइबौ तेरौ ।
मारिबौ पी कौ न सालत है अब, सालत सौति छुड़ाइबौ तेरौ ॥५९॥

सोई फूल सूल से भए हैँ सुख-मूल अबै,
　　　　ताप-प्रद चंदन अनंग-कदंही भयौ ।
कहै रतनाकर जो फनि-फुतकार हुतौ,
　　　　सब-सुखसार मलयानिल वही भयौ ॥
छरकि हमारे बाम अंग की फरक ही सौँ,
　　　　बाम सौँ सुदच्छिन प्रभाव सबही भयौ ।
कालिह ही भयौ हो बीर बिषम बिषाकर कौ,
　　　　आज सो सुधाकर सुधाकर सही भयौ ॥६०॥

मान ठानि बैठी जितै सुंदरी तितै ह्वै कढ़ी,
बाम एक श्यामल सघन बन खोरी कौं।
कहै रतनाकर दिखाई दै दुरति चलि,
मुरति ठगोरी देति ठठकि किसोरी कौं॥
सो लखि अनख नखि बिलखि दवाए पाइ,
आई केलि-कुंज गहिवे कौं कान्ह चोरी कौं।
इत उत जौ लौं वह हेरन ससंक लगी,
तौ लौं अंक साँवरी निसंक भरी गोरी कौं॥६१॥

रति बिपरीति रची प्यारी मनमोहन सौं,
करि कै कलोल केलि कसक मिटाए लेति।
हिय हलकोरनि सौं झमकि झकोरनि सौं,
किंकिनी के सोरनि सौं उर उमगाए लेति॥
उच्च कुच-कोरनि सौं जुग-जंघ-जोरनि सौं,
मैन के मरोरनि सौं दुमुचि दवाए लेति।
अंग-अंग अमित अनंग की तरंग भरी,
प्रथम समागम कौ बदलौ चुकाए लेति॥६२॥

प्यारे परबीन कौं बनायौ नवला नवीन,
नायक प्रबीन बनि आप उर लाए लेति।
छल कै छबीलौ ज्यौं ज्यौं भरन न देत अंक,
त्यौंहीं त्यौं निसंक भुज भरि लपटाए लेति॥

झूमि झूमि लेति सुख चूमि चूमि लेति मुख,
दूमि दूमि ऊरुनि तैँ उर तैँ दबाए लेति ।
पूरन प्रभाव बिपरीति कौ प्रकासि प्यारी,
प्रथम समागम कौ बदलौ चुकाए लेति ॥६३॥

मान ठानि सुघर सुजान सखियानि बीच,
बैठी जहाँ भीचि भाइ आनँद उमंग के ।
कहै रतनाकर पधारे घनस्याम तहाँ,
सुखमा-समूह धारे कोटिक अनंग के ॥
चलि चलि जात तितै रोकत रुकैँ न नैन,
तब छै छबी छल राखन कौँ रंग के ।
दै दियौ हँसौँहैँ हेरि घेर पट घूँघट कौ,
कै दियौ कुरंग कैद मुख मैँ तुरंग के ॥६४॥

चोप चाक चढ़ि चख नोकनि खरादे गए,
बिरह-बिषाद-खाद-खचित लखात हैँ ।
लाख-अभिलाष-अनुराग-राग-रंजित है,
कहै रतनाकर सनेह सरसात हैँ ॥
कान्ह ही से पीर-हीन पीर कैँ परे हैँ पानि,
चलि चकडोर लौँ अधीर अकुलात हैँ ।
आस-गुन-ऐचनि सौँ बिबस बिचारे प्रान,
आनि अधरानि फेरि फिरि फिरि जात हैँ ॥६५॥

मारै मन मारै पै न सैन मृगनैनिनि पै,
घूँटैं विष घूँटैं ना सुधाऽधर पियाली मैं ।
चोप ना चढ़ावै भौंह-बाढ़ पै उतारि देहि,
घाट के असी पै बरु नारहिँ उताली मैं ॥
बिषधर काली की फनाली मैं परै तौ परै,
भूलि हूँ परै न कहूँ भूलि अलकाली मैं ।
देहि मुख-चंदैं अनुराग मैं न मन देहि,
सादर मयंकैं बरु बादर गुलाली मैं ॥६६॥

जोबन की माँगति जगाति इठलाति जाति,
अलख जगावति अनंग-प्रभुताई की ।
कहै रतनाकर गुसाइनि निराली एक,
आली धरे अंगनि बिभूति सुघराई की ॥
भोर ही तैं हेरि फेरि पैरि पै रही है रमि,
टेरि टेरि याही धुनि आसिष सुहाई की ।
चारु मुख-चंद की अमंद छबि गाढ़ी रहै,
बाढ़ी रहै अंग अंग लहर लुनाई की ॥६७॥

बैठी रहौ कीने कुलकानि की कहानी कान,
कोऊ अभिमानी मान गौरव बृथा ही कौ ।
कोऊ पुरजन कैं कलंक ओट कोऊ करि,
गुरुजन-संकहिँ निसंक चिलता ही कौ ॥

कोऊ बेद-बिहित बिधाननि बनाइ ग्रान,
कोऊ मिस ग्रान ठानि बानक सिला ही कौ ।
जादूगर छैल की अचूक चितवनि-सेल,
झेलिबे कौँ चाहियै करेजौ राधिका ही कौ ॥६८॥

हारीँ हाथ जोरि मानि मन्नत करोर हारीँ,
तोरि हारीँ तृन कै कछू सौ दया भीजियै ।
जासौँ मन-भावन कौँ सुख-सरसावन कौँ,
जीवन जुड़ावन कौँ अंक भरि लीजियै ॥
आपने अठान की रह्यो है राखि रूई कान,
करत न कानि कछू याही दुख छीजियै ।
बिधना सुनत काहू बिधि ना हमारी हाय,
बिधि ना बनति कोऊ राम कहा कीजियै ॥६९॥

जब तैँ बिलोक्यौ बाल लाल बन-कुंजनि मैँ,
तब तैँ अनंग की तरंग उमगति है।
कहै रतनाकर न जागति न सोवति है,
जागत औ सोवत मैँ सोवति जगति है ॥
डूबी दिन रैन रहै कान्ह-ध्यान-बारिधि मैँ,
तौहूँ बिरहागिनि की दाह सौँ दगति है ।
धूरि परौ एरी इहिँ नेह दईमारे पर,
जाकी लाग पाइ आग पानी मैँ लगति है ॥७०॥

टेरैँ हूँ न हेरै दृग फेरैं हूँ न फेरैं दृग,
बैकल सी वा गुन उधेरति बुनति है।
कहै रतनाकर मगन मन हीँ मन मँ,
जानै कहा आनि मन गौर कै गुनति है।
होति थिर कबहूँ छनेक फिरि एकाएक,
भाँतिनि अनेक सीस कबहूँ धुनति है।
घालि गयौ जब तैँ कन्हैया नेह काननि मैँ,
तब तैँ न नैकुँ कछू काहू की सुनति है॥७१॥

हारीँ करि जतन अनेक संगवारी सबै,
छन-छन अंग सोई रंग गहरत है।
कहै रतनाकर न ताती बात हू कैँ घात,
छाई चिकनाई कौ प्रभाव प्रहरत है॥
आँस-मिस नैननि तैँ रस-मिस बैननि तैँ,
अंगनि तैँ स्वेद-कन ह्वै कै ढहरत है।
भीन्यौ घट जब तैँ सनेह नटनागर कौ,
तब तैँ न वीर धीर-नीर ठहरत है॥७२॥

मोहन-रूप लुनाई की खानि मैँ, हौँ नख तैँ सिखलौँ इमि सानी।
ह्वै रही लौनमई रतनाकर, सो न मिटै अब कोटि कहानी॥
सील की बात चलाइ चलाइ, कहा किए डारति हौ हमैँ पानी।
जानि परै मम जीवन सौँ हठि, हाथ ही धोइबे की अब ठानी॥७३॥

पीर सौं धीर धरात न बीर, कटाच्छ हूँ कुंतल सेल नहीं है।
ज्वाल न याकी मिटै रतनाकर, नेह कछू तिल-तेल नहीं है॥
जानत अंग जो झेलत है यह, रंग गुलाल की झेल नहीं है।
थाम्हैं थमैं न बहैं अँसुवा यह, रोइबौ है हँसी-खेल नहीं है॥७४॥

चातक चहत ज्यौं रहत स्वातिबुंद ही कौं,
मानसर हू कौ मन मान ना धरत है।
कहै रतनाकर मलिंद मकरंद त्यागि,
कंद-रस हू सौं न अनंद उधरत है॥
भीषम पितामह की अमित अनोखी प्यास,
जैसैं बीर पारथ कौ तीर ही हरत है।
जाहि पर्यौ चसकौ कटाच्छ-असि-पानिप कौ,
त्यौं हीं सो सुधाहू कौ सवाद निदरत है॥७५॥

जमुना सनान कैं सुजान रस-खानि चली,
अंग-रंग बसन सुरंग चालि चालि उठै।
कहै रतनाकर उठाइ पट घूँघट कौ,
चितई चपल सो चितौनि सालि सालि उठै॥
साँप लै खिलौने कौ खिलंदरी सहेली एक,
औचक दिखायौ फन जाकौ फालि फालि उठै।
उझकि झपाक झुकि झझकि हटी सो बाल,
एरी वह लचक हिये मैं हालि हालि उठै॥७६॥

सबही बिधि रावरौ होइ चुक्यौ, तऊ चूर न कीजै परेखन हीँ ।
रतनाकर रावरे ही हित की, कहैँ स्वारथ कौ चित लेस नहीँ ॥
लिए दर्पन ज्यौँ कर माहिँ रहै, कोऊ आप रहै पुनि दर्पन हीँ ।
निज रूप लुभाने सदा तुम यौँ, मन लै हू रहे पै बसौ मन हीँ ॥७७॥

धन धारत चोरी कौ चोर चुराई कै, त्रासनि राखत पास नहीँ ।
रतनाकर पै यह रीति महा, बिपरीत ढिठाई कौ भाजन हीँ ॥
कहौ कौन के आगैँ पुकार करैँ, जब न्यावहूँ रावरैँ आनन हीँ ।
यह चोरी नहीँ बरजोरी हहा, मन लै हूँ रहौ पै बसौ मन हीँ ॥७८॥

ज्वालनि के जाल है बगारत चहूँघाँ हठि,
जारत जो जीव हाय बिरह-दुखारी कौ ।
कहै रतनाकर न धीर उर आन्यौ जात,
भेद न बखान्यौ जात वेदन हमारी कौ ॥
ऐसौ कछु बानक बनाइ बिनती कै जाइ,
जासौँ सियराइ आप दाप ताप-कारी कौ ।
सरस अनंद छाइ सब दुख-दंद हरै,
मंद करै चंदहिँ अमंद मुख प्यारी कौ ॥७९॥

खेलौ हँसौ जाइ कै सहेली तुम कुंजनि मैँ,
हाँसी खेल खोइ भौन-कौन अभिलाष्यौ है ।
कहै रतनाकर रुचै सौ कहौ जाइ उतै,
प्रेम कौ पियालौ माष राख करि चाख्यौ है ॥

जानति नहीँ हौ उर आनति नहीँ है पीर,
मानति नहीँ है बीर लाख बार भाष्यौ है।
बात-बल सौँ ना जाइ ध्यान-पट टूटि हाय,
सोर ना करौ री चित-चोर मूँदि राष्यौ है ॥८०॥

दीन बिरहीनि की दुसह दुखहाई दसा,
दीसति अनोखी अति जाति न कछू भनी।
कहै रतनाकर न रंचक हूँ चैन परै,
मैन परै पैँडैँ लिए पंचबान की अनी॥
राति हूँ न चंद-ब्रती-मन-मुरझानि जाति,
दिन हूँ दिखाति ठिठुरानि हिय मैँ ठनी।
घाम सुधा-धाम कुमुदिनि पै बगारत औ,
मानौ रबि कंजनि पै डारत है चाँदनी ॥८१॥

आइ अठखेलिनि सौँ अमित उमंग भरैँ,
जिनके प्रसंग सौँ तरुनि अंग थहरैँ।
जीवन जुड़ावैँ रस-धाम रतनाकर कौ,
मानस मैँ जिनसौँ तरंग मंजु ढहरैँ॥
अंग लागि मेरैँ बिन बाधक सुखेन सोई,
ऐसी कब भाग-पुंज हौहिँ कुंज डहरैँ।
दंद हरैँ हीतल कौ, कौन नँद-नंद ? नाहिँ,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैँ ॥८२॥

तपि बिरहा सौं रसिक रसीली रही,
कहत बनै न दसा हेरि हेरि हहरैं ।
सीरी साँस प्यारे तव नाम सौं रही जो बसि,
सिथिलित आइ कै हिये मैं जब सहरैं ॥
तब कछु जीवन जुड़ाइ हरि जाइ ताप,
ढंग होत औरै बलि अंग अंग थहरैं ।
जैसैं भानु-तपित मही-तल कौ दंद हरैं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं ॥८३॥

आई भुजमूल दिए सुघर सहेलिनि पै,
बाग मैं अजान जानि प्रान कछू बहरैं ।
कहै रतनाकर पै औरहूँ बिषाद बढ़्यौ,
याद परैं सुखद सँजोग की दुपहरैं ।
धीरज जर्‌यौ औ जिय ज्वाल अधिकानी लखि,
नीरज-निकेत स्वेत-नीर-भरी नहरैं ।
दंद-मई दुसह दुचंद भईं हीतल कौं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं ॥८४॥

नींद लै हमारी हूँ दुनींदे है सुनींदे सोए,
सुनत पुकार नाहिं परी हौं चहल मैं ।
कहै रतनाकर न ऐसो परतीति हुती,
प्रीति-रीति हाय हियैं जानी ही सहल मैं ॥

देखत हीँ आपने दृगनि हितहानी करी,
अब पछिताति परी ताहि की दहल मैँ।
बीर मैँ अजान बलबीरहिँ निवास दियौ,
नीर-सिँचे बरनी-उसीर के महल मैँ ॥८५॥

गुंजित मलिंद-पुंज सघन निकुंज जहाँ,
लूक लगै हीतल कौँ सीतल सुहाई है।
कहै रतनाकर तहाँ हीँ फूल लेत तोहिँ,
जोहि रही कान्ह कैँ अमान बिकलाई है॥
आवत उतै तैँ अबै नैँसुक निहारि दसा,
उर मैँ हमारे तौ कसक अति आई है।
बैठे आँस ढारत सँभारत न साँस एरी,
तेरी मधुराई लगी लोचन लुनाई है ॥८६॥

दृग देखत सोई दसौ दिसि मैँ, रहौँ वाही तरंग मैँ दंग परी।
रतनाकर त्यौँ रसना उहिँ नाम की, माधुरी कैँ रस-रंग परी॥
मुरली धुनि ही कौ सनाकौ सुनैँ, यह काननि बानि कुढंग परी।
जब तैँ हिय कूप मैँ आनि अनूप, सखी हरि-रूप की भंग परी ॥८७

टारि पट घूँघट कौ जबतैँ निहारि धूमि,
घायल किए तैँ कान्ह कालिँदी कैँ कूल हैँ।
कहै रतनाकर कपूर चंद चंदन हूँ,
देत ताप तब तैँ अँगारनि के तूल हैँ॥

तेरी गली छाँड़ि कै न जात बन-बागनि मैं,
सुखद निकुंज भए भूरि-दुख-मूल हैं ।
रंग रूप रुचिर बिलोकि तव आनन कौ,
सूल लगे लागन गुलाबनि के फूल हैं ॥८८॥

बैठे बन बिकल बिसूरत गुपाल जहाँ,
औचक तहाँई बाल-जोगी इक आइगे ।
कह्यौ रतनाकर उपाय हम ठानैं कछु,
जानैं जदि कापै आप एतिक लुभाइगे ॥
ताही छन छाइगे छलक इत आँस नैन,
बैन उत आवत गरे लौं बिरुझाइगे ।
पाइगे न जानैं कहा मरम दुहूँ के दुहूँ,
हँसि सकुचाइ धाइ हिय लपटाइगे ॥८९॥

तब तो हजार मनुहार कै रिझाईं पर,
अब उपचार के बिचार सब ख्वै गए ।
कहै रतनाकर ललकि उर लैबौ कहा,
पाइ हूँ अनेकनि उपाइ सौं न छ्वै गए ॥
देखत तौ वैसेई लगत पर साँची सुनौ,
सरस सनेह के सुगंध-गुन ग्वै गए ।
पैठत ही प्यारे मन मुकुर हमारे हाय,
सारे रुख दाहिने तिहारे बाम ह्वै गए ॥९०॥

देति हमैं सीख सिखि आईं सो कहाँ सौं कहौ,
सीखी सुनी नीति की प्रतीति नहिं पेखैं हम।
कहै रतनाकर रतन रूप औषध कौ,
जानत प्रभाव जो न तासौं कहा रेखैं हम ॥
प्रानहूँ तैं प्यारी तौ प्रमानैं कुलकानि पर,
वह मुसकानि कानि हूँ तैं प्रिय लेखैं हम।
देखी जिन नाहिं तिन्हैं देखत दिखावैं कहा,
देखि कै न देखैं फेरि नैकु तिन्हैं देखैं हम ॥९१॥

आइ समुझावति तू हाय हमकौं है कहा,
ल्याइ कै मिलाइ किन नंद-दुलरा दै तू।
कहै रतनाकर चहति आँस रोकन तौ,
वाही पद-पंकज की रज कजरा दै तू ॥
नाइनि तिहारे गुन गायन करौंगी नित,
पाइ परौं अंक बल-भायहिं भरा दै तू।
सोचन लगी है कहा मरति सकोचनि तौ,
हरि के हमारे एक लोचन करा दै तू ॥९२॥

देखत हमारी हूँ दसा न इठिलानि माहिं,
आपनी तौ बानि ना बिलोकत अठानि मैं।
कहै रतनाकर उपाइ ना बसाइ कछू,
जासौं लखौ भाइ-भेद उभय दिसानि मैं ॥

पावतौ कहूँ जौ कोऊ चतुर चितेरौ तौ,
दिखावतौ सुभाव सोधि कलित कलानि मैं।
रिझवन-आतुरी हमारी अँखियानि माहिँ,
खिझवनि चातुरी तिहारी मुसकानि मैं ॥९३॥

हा हा खाइ हाय कै दुखी ह्वै दूरिहीँ सौँ देखि,
सैननि मैँ मंजु मूक बैन जे उचारे हैँ।
कहै रतनाकर न रंच तिनकी है सुधि,
बिकल हिये के भाय सकल बिसारे हैँ॥
हौँ तौ रही दंग देखि निपट निरालौ ढंग,
भाव उलटे ही सब अब तुम धारे हैँ।
पावत ही धाम मन-मुकुर हमारैँ स्याम,
दच्छिन तैँ बाम भए तेवर तिहारे हैँ ॥९४॥

कीजै कहा हाय तासौँ चलत उपाइ नाहिँ,
पाइ पीरहूँ जो पर-पीर उर आनै ना।
कहै रतनाकर रहै ही मुख मौन गेह,
कहे सुने भाव के प्रभाव भेद मानै ना॥
सकल कथा कौँ सुनि पूछत ब्यथा जो पुनि,
जानिहूँ जथारथ बृथा जो गुनि जानै ना।
मानै ना अजान तौ सुजान के मनैयै ताहि,
कैसैँ समझैयै जो सुजान बनि मानै ना ॥९५॥

आँखि दिखावति मूँड़ चढ़ी, मटकावति चंद्रिका चाव सौं पागी।
त्यौं रतनाकर गुंज की माल, लगी छतिया हुलसै रँग-रागी॥
कंदुक हू उमगै कर पाइ, सखी हमहीं सब भाँति अभागी।
रोकति साँसुरी पाँसुरी मैं, यह बाँसुरी मोहन कैं मुख लागी॥९६॥

देख्यौ तुम्हैं देखत सुदेखै ताहि देखनि सौं,
इत उत देखि करै सैन रिझवार सी।
कहै रतनाकर बिलोकि पुनि बिंब माहिं,
सोई भाव बाढ़ै चाव-चटक अपार सी॥
मोहैं नारि नारि कैं न रूप जो सुनी है सो तौ,
ताकी दसा देखि बात लगति असार सी।
जब तैं बसे हैं आनि नैननि तिहारे नैन,
रैनि द्यौस तब तैं बिलोक्यौ करै आरसी॥९७॥

प्रेम-रस-पान पाइ अमर भए जो जग,
सो सुठि सुधा कौं कहि अंमृत बखानैं ना।
कहै रतनाकर त्यौं बिरह ब्यथा कौं झेलि,
हेलि हिय मीच कौ जनम जग जानैं ना॥
हम ब्रज-चंद मंद-हास पै रही हैं कटि,
तीखे चंद-हास सौं हरास उर आनैं ना।
समरस स्याम के बिलोचन बिलोकि बीर,
काम कौ बिसम-सर नाम मन मानैं ना॥९८॥

हाय हाय करत बिहाइ दिन रैनि जात,
फटिबौ सुहात सदा सैननि सिरोही सौं ।
कहै रतनाकर उदासी मुख छाइ जाति,
हाँसी बिनसाइ जाति आनन बिछोही सौं ॥
भूख प्यास बूझतिँ झँवात झहरात गात,
छार ह्वै बिलात सुख-साज सब रोही सौं ।
हाय अति औपटी उदेग-आगि जागि जाति,
जब मन लागि जात काहू निरमोही सौं ॥९९॥

जाहि लपटाइ ताहि लेति लपटाइ जोई,
जाइ लपटाइ सोई जानै गति याकी है ।
नैकुँ मुरझाइ नाहिँ नित उरझाइ सुर-
झाइ पिय बिन ऐसी छाती कहौ काकी है ॥
ज्वालनि की जारी तऊ पैयै हरियारी ऐसी,
प्रेम रस-वारी मतवारी ममता की है ।
काम की लगाई अनुराग की जगाई बीर,
खेल मति जानौ यह बेल बिरहा की है ॥१००॥

भरि जीवन गागरी मैँ इठलाइ कै, नागरी चेटक पारि गई ।
रतनाकर आहट पाइ कछू, मुरि घूँघट टारि निहारि गई ॥
करि वार कटाच्छ कटारिनि सौं, मुसकानि मरीचि पसारि गई ।
भए घाय हिये मैँ अघाय घने, तिनपै पुनि चाँदनी मारि गई ॥१०१॥

बीस बिसैँ मानतीँ कहानी काम जारन की,
आनि बिरहीनि सौँ न अब अरुझात्यौ जौ।
कहै रतनाकर जुन्हाई ज्वाल होती सही,
तासौँ और हिय कौ न घाव हरियात्यौ जौ॥
जानतीँ भुजंगम कौ साँस मलयानिल कौँ,
मुरछि परैँ न फेरि चेत सरसात्यौ जौ।
बिष कौँ बखानतीँ सुधाकर कौ साँचौ बंधु,
माँगैँ हूँ कहूँ सौँ रंच आज मिलि जात्यौ जौ॥१०६॥

लागत न नैकुँ हाय औषध उपाय कोऊ,
झूठी झार फूँक हू फकीरी परी जाति है।
कहै रतनाकर न बैरी हू बिलोकि सकैँ,
ऐसी दसा माँहिँ सो अहीरी परी जाति है॥
रावरौ हू नाम लिएँ नैननि उघारै नाहिँ,
आह औ कराह सबै धीरी परो जाति है।
पीरी परी जाति है बियोग-आगि हू तौ अब,
बिकल बिहाल बाल सीरी परी जाति है॥१०७॥

मंद भईँ साँसैँ औ उसासैँ बढ़ि बंद भईँ,
दुख सुख रीति की प्रतीति दहि गई है।
कहै रतनाकर न आँस रह्यौ नैननि मैँ,
ताही संग आस-बासना हू बहि गई है॥

अब तौ उपाय कछू तुमहीँ बनै तौ करौ,
चातुरी हमारी तौ सकल ढहि गई है।
लीन्हैँ नाम रावरौ कछूक चौंकि चेतति ही,
सोऊ समुझन की न चेत रहि गई है ॥१०८॥

धीर धरनीस के बियोग-दुखहू मैँ देखि,
सोभा सुभ वैसियै सुधाकर बदन की।
सेनप बसंत के प्रबीन परिचारक जे,
पिक परिपाटी पढ़े नेह निगदन की॥
....
.... ।
....
.... ॥१०९॥

हौँ तौ हुती मगन लगन-लौ लगाए हाय,
लाए उर सुरति सुजान प्रान-प्यारे की।
कहै रतनाकर पै सबद सुनाइ टेरि,
फेरि सुधि दीनी धाइ बिरह बिसारे की॥
कामिनी कौ नातौ मानि दामिनी दया कै नैँकु,
कसक मिटाइ देती मानस हमारे की।
पारि देती आज वा कलापी के गरे पै गाज,
जारि देती जीहा वा पपीहा बजमारे की ॥११०॥

निकस्यौ कहूँ हौं ब्रज-गाम है सुनौ हो स्याम,
धाम धाम देखौं बाम बाम ही प्रनाली पै।
कहै रतनाकर न हौं तौ भेद पायौ कछू,
तुमहू चकैहौ चित कठिन कुचाली पै॥
कीन्हे रहैं दीठि कौं कृसानु-नीठि नादन पै,
दीन्हे रहैं पीठि चारु चंद्र-चंद्रिकाली पै।
माने रहैं बायस कौं पायस-पियाली देन,
ताने रहैं तुपक दुनाली काकपाली पै॥१११॥

अंतक लौं बिरही जन कौं पुनि वायु बसंत की दागन लागी।
कागनि के हित काग की पाली नए षटरागनि रागन लागी॥
कुंजनि गुंज मधुब्रत की बिष के रस की रुचि-पागन लागी।
फूले पलास की आगनि सौं बनबाग दवाग सी लागन लागी॥११२॥

भूरि-सुगंध-भरे दिग-छोरनि कोकिल जागि सुरंग सी दागी।
बैरी बसंत बन्यौ बिन कंत कहा करिहैं अब अंत अभागी।
हेरि हरे भरे कानन मैं अति आगि पलास की रासि सौं लागी।
छीर सी चाँदनी मैं सजनी अलि-भीर हलाहल घोरन लागी॥११३॥

हाल बाल परी है बिहाल नँदलाल प्यारे,
ज्वाल सी जगी है अंग देखैं दीठि जारे देति।
प्रेम लोकलाज मिलि बिरह त्रिदोष भयौ,
कहै रतनाकर सु नैन नीर ढारे देति॥

सत्तर धनत्तर से हारि रहे आनि मुख,
चंद्रोदय आखिरी इलाज है पुकारे देति ।
झाँवरी भई है दुति बावरी भई है मति,
और की कहा है सुधि रावरी बिसारे देति ॥११४॥

दुख कौ अहार रह्यौ बारि रह्यौ आँसनि कौ,
साँसनि कौ सब्द मूरछा कौ नींद कल तैं
कहै रतनाकर पिछानै ना पिछानी जाति,
सेज मैं समानी जाति कृसता कहल तैं ॥
जौ पै तुम्हैं बहम जियति कैसैं ऐसैं तोब,
कान दै सुनौ जू हौं बतावति सरल तैं
मान कौं सकत अधरान लौं न आवन की,
अबला जियति लाल निर्बलता-बल तैं ॥११५॥

कान्ह के प्रेम-व्यथा की कथा तुम ऊधौ जथाबिधि भाषि सुनाई ।
त्यौं रतनाकर आँसनि की अरु साँसनि की सब बात बताई ॥
एतियै और कहौ करुना करि जातैं मिटै चित की दुचिताई ।
जोग-सनेस बखानत मैं मुसकानि हूँ आनन पै कछु आई ॥११६॥

हौं ही रच्यौ वैसैं हीं सुरुचि-अनुकूल चुनि,
सोई फूल फूलत जो कुंज कल केली के ।
दोस बिन हाहा रोस हम पै न कीजै बलि,
रोकी बन गैल छैल आवत अकेली के ॥

नाम सुनि रावरौ बिलोकन लगेई हठि,
हुलसि सराहि भूरि भाग बन-बेली के ।
लागत हीँ हाथ ब्रजनाथ के नवेली यह,
हार कुम्हिलाने चारु चटक चमेली के ॥११७॥

मान कै न मानति हौ जानि कै न जानति हौ,
तुम बिन प्यारे मनमोहन दुखारे हैँ ।
कहै रतनाकर न जानैँ कहा ठाने मन,
बृंदाबन बीथिनि बिसूरत सिधारे हैँ ॥
बाल दिखराइ कै मसाल के मिसाल दुति,
लीजियै बचाइ ठाढ़े कुंज मैँ बिचारे हैँ ।
उमड़ि घुमड़ि मढ़ि आए चहुँघाँ तैँ घेरि,
मेघ मनमथ के मतंग मतवारे हैँ ॥११८॥

सुलह न मानति हौ रारि बृथा ठानति हौ,
जानति हौ हाल छल-बल के निधान कौ ।
कहै रतनाकर अनंग के तुरंग चढ्यौ,
संग छबि-कटक बिजै-कर जहान कौ ॥
आनि बलबीर धीर तीर बरसैहै जब,
अधर-कमान तानि बिनै-बखान कौ ।
छूटि जैहै हुमक सुभट हठहू कौ सबै,
टूटि जैहै बीर टूटि जैहै गढ़ मान कौ ॥११९॥

देख्यौ बन-गैल आज छैल छरकीलौ एक,
लोटत धरा मैं परयौ धीरज न धारै है।
कहै रतनाकर लकुट बनमाल कहूँ,
मुकट सुढाल कहूँ लुठित धुरारै है ॥
काकौ कौन नैकुँ निरवारत न नीकैं बोलि,
खोलि कछु बेदन कौ भेद न उघारै है।
आँस भरि आधौ नाम राम कौ उचारै पुनि,
साँस भरि आधैं बैन धेनु कौं पुकारै है ॥१२०॥

चसकौ परै ना मान-रस कौ कहूँधौं वाहि,
लीजै बात रंचक बिचारि हित हानि की।
कहै रतनाकर तिहारे सुबरन पर,
दमक दुलारी देति तमक तवानि की ॥
रोष की रुखाई रुख आवत सुसीली होति,
मंद मुसकानि लै रसीली अँखियानि की।
होत मृदु मीठे सीठे बचन तिहारे पाइ,
कंठ कोमलाई मधुराई अधरानि की ॥१२१॥

जानति न जानि कहा मान ठानि बैठी बीर,
बानि यह एरी सब भाँतिनि अनीठी है।
कहै रतनाकर प्रभाकर-उदोत होत,
तौहूँ रस-राँचति न ऐसी भई सीठी है ॥

ब्यापति तिन्हैं न मान मिरच तिताई नैंकु,
पावति सवाद-सुख ऐसौ कछु दीठी है।
स्याम-सहतूत लौं सलूनी रस-रासि भरी,
सूधी तैं सहस्र गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है ॥१२२॥

बिलग न मानियै बिहारी वर बारी बैस,
कहा भयौ जोपै अनखौंहीं करी दीठी है।
तुम रतनाकर सुजान रस-खानि वह,
निपट अयानि वासौं ठानी क्यौं अनीठी है॥
सरस सु रोचक मैं आकृति बिचार कहा,
कैसैंहूँ बिगारौ नाहिँ होनहार सीठी है।
टेढ़ी तैं सहस्र गुनी सूधी भौंह मीठी अरु,
सूधी तैं सहस्र गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है ॥१२३॥

एरी ब्रज-जीवन की जीवन अधार बेगि,
सहज सिँगार सौं पधारि सरवर पैं।
कहै रतनाकर न बात कहिबे कौ समै,
ठसक उठाइ ताइ दीजै सिकहर पैं॥
लाग अनुराग की रही है इमि लागि सही,
जाति बिरहागि ना दवागि-पान-कर पैं।
प्रबल बियोग-रोग निबल कियौ है इमि,
धीरज धर्‌यौ न जात लाल गिरिधर पैं ॥१२४॥

बिनती बखानी अनगिनती न मानति हौ,
किनती सिखायौ मान करिबौ कुँवर पै ।
कहै रतनाकर रिझाएँ नाहिँ रीझति हौ,
खीझति हौ उलटी कपोल दिए कर पै ॥
पलटि प्रभाव परचौ पाँचही घरी मैं यह,
आवत अचंभौ जाति आँगुरी अधर पै ।
एरी अबला तू गुरु मान इत धारै उत,
धीरज धरचौ न जात लाल गिरिधर पै ॥१२५॥

हा हा खात द्वार पै दुखी है द्वारपालनि की,
नाइनि औ मालिनि की बिनती महा करै ।
कहै रतनाकर कहै तौ बोलि ल्याऊँ उन्हैँ
बहुत भई री अब सुंदरि छमा करै ॥
सुनि सखि बानी सतराइ मुसकानी बाल,
ताकि छबि ताकि कौन कबि कबिता करै ।
अनख अनोखी ललचानि रस-पोषी बीच,
प्रान परे साँकरैँ न हाँ करै न ना करै ॥१२६॥

प्यार-पगे पिय प्यारे सौँ प्यारी कहा इमि कीजति मान-मरोर है ।
है रतनाकर पै निसि बासर तौ छबि-पानिप कौँ तरस्यौ रहै ॥
है मनमोहन मोह्यौ पै तोपर है घनस्याम पै तेरौ तौ मोर है ।
है जगनायक चेरौ पै तेरौ है है ब्रज-चंद पै तेरौ चकोर है ॥१२७॥

अति अभिराम रस-धाम घनस्याम आनि,
घूमत चहूँघाँ रहैँ नैकुँहूँ न कल मैँ ।
कहै रतनाकर प्रतच्छ अच्छ औरै प्रभा,
जिनके प्रभाव सौँ पगी है थल थल मैँ ॥
ऐसैँ सुभ औसर न सुहात मानि मेरी बात,
ताप मिटि जैहै सब एक ही विपल मैँ ।
चलि कै निकुंज माहिँ लहि सुख-पुंज बीर,
बैठी कहा करति उसीर के महल मैँ ॥१२८॥

ललित त्रिभंग जाके अंग कौ बनाव नीकौ,
रति के धनी कौ रंग फीकौ दरसाए देत ।
कहै रतनाकर कछूक बाँसुरी जो फूँकि,
तान बनितानि हेत नावक बनाए देत ॥
सोई बैठि विकल विसूरत निकुंज माहिँ,
तोहिँ रूप जोबन अनूप गरबाए देत ।
अचल न रैहै यह मचल तिहारी बीर,
चल चख ताके चल अचल चलाए देत ॥१२९॥

पाइ रासमंडलहरास जो उदास भयौ,
ताके दाव पावन की आन चढ़ि जाति है ।
कहै रतनाकर न तातैँ कछु भाषैं आन,
तोहिँ सुनि और हूँ अठान चढ़ि जाति है ॥

एरी बृषभानुजा तिहारे दृग-बाननि पै,
ज्यौंहीं सुरमे सौं सुठि सान चढ़ि जाति है।
रूप-गुन-गरब-मथैया मनमोहन पै,
त्यौं हीं मनमथ की कमान चढ़ि जाति है ॥१३०॥

तुम तौ बिगारि बैठीं बेष हौ खिझावन कौं,
मेरी जान सो तौ ताहि अधिक रिझावैगौ।
कहै रतनाकर न ध्यान यह आनति हौ,
मान यह औरहूँ अठान ठनवावैगौ ॥
दैहै हास-औसर अनौसर परोसिनि कौं,
सौतिनि कौं चेत्यौ चित बानक बनावैगौ।
भावैगो कहूँ जो यह रूप रसिया कौं तोपै,
रूसिबौ ही रूसिबौ तिहारैं बाँट आवैगौ ॥१३१॥

आए तहाँ औचक कछूक अतुराए कान्ह,
चुनति हुती हौं जहाँ सुमन सुबेली के।
कहै रतनाकर चपल चहुँ ओर चाहि,
पैठत ही मंजुल निकुंज कल केली के ॥
गात मुरझाने उर हार कुम्हिलाने कल,
पल्लव सुखाने बर बल्लरी नवेली के।
आई माल गूँथन गुपाल-हेत ह्याँ हौं सुनि,
हँसत तिहारे फूल झरत चमेली के ॥१३२॥

ठनगन ठानति कहा हौ ठकुरानी यह,
ठसक तिहारी सब भाँतिहिँ अनीठी है।
कहै रतनाकर रुचै न रसिया कौं कहूँ,
फेरि पछितैहौ परी बानि यह ढीठी है॥
हौँ तौ हित मानौँ हित बातहि बखानौँ तुम,
तापै अनुमानौ यह करति बसीठी है।
बंद करि दीन्यौ मुख नंद के लला कौ बीर,
सूधी तैँ सहस्र गुनी टेढ़ी भौंह मीठी है॥१३३॥

आई नंद-मंदिर मैँ सुंदरी सलोनी बाल,
बेष किए सुघर गुसाइनि गुनीली कौ।
कहै रतनाकर गुपाल कौ हवाल हेरि,
नैन भरि आए रुँध्यौ बैन गरबीली कौ॥
अधर दबाइ भाइ हिय कौ दुराइ बैठि,
बरबस बानक बनाइ अनसीली कौ।
लीन्यौ जस पुंज नयौ प्रान पारि माननि मैँ,
काननि मैँ फूँकि नाम राधिका रसीली कौ॥१३४॥

प्यारे मनमोहन मनाई समुझाई तुहूँ,
हौं न चित लाई ताकौ सोच निसरा दै तू।
अब पछितात अकुलात प्रान जात बीर,
कछु करि जाइ ल्याई पाइनि परा दै तू॥

राखि लै री बात मेरी, तेरी सौंह, आज निज,
चातुरी कौ ऊनौ सौ नमूनौ दिखरा दै तू।
फिर न करौंगी मान प्रान हूँ गए पै बीर,
अब कैं हमारौ मान-मोचन करा दै तू ॥१३५॥

कुंजनि मैं गुंजत मलिंद मतवारे फिरैं,
बिरही बिचारे दुखधारे मन-मन मैं।
कहै रतनाकर रसीले घनस्याम अंक,
चाय-भरी चपला चमकैं छन-छन मैं॥
ऐसैं समै प्रीतम-बियोग-भावना हूँ भएँ,
रहत न धीर पीर पूरि तन-तन मैं।
मान कौं न मेली करि अब अलबेली देखि,
हेली लगी फूलन चमेली बन-बन मैं ॥१३६॥

कत अटवी मैं जाइ अटत अठान ठानि,
परत न जानि कौन कौतुक बिचारे हैं।
कहै रतनाकर कमलदल हू सौं मंजु,
मृदुल अनूपम चरन रतनारे हैं॥
धारे उर अंतर निरंतर लड़ावैं हम,
गावैं गुन बिबिध बिनोद मोद वारे हैं।
लागत जो कंटक तिहारे पाय प्यारे हाय,
आइ पहिलैं सो हिय बेधत हमारे हैं ॥१३७॥

देखि वह होन काम-बंधु कौ उदोत बीर,
इत उत किरन कलाप छिटकावैं हैं।
कहै रतनाकर चलनि किन कुंज अबै,
यों तौ सबही कौं हटि हटकि हटावैं हैं॥
सुनि सुभ सीख चढ़ी रथ पै मनोरथ के,
खूँद मन-मचला-तुरंग पै मचावैं हैं।
तानैं इत मान की मरोर निज ओर उत,
बेगि चलिबे कौं चंद चाबुक चलावैं हैं ॥१३८॥

उठि आए कहाँ तैं कहौ तौ सही अँखियानि मैं नींद घलाघल है।
रतनाकर त्यौं अलकैं बिथुरीं औ कपोलनि पीक-झलाझल है॥
मधुरे अधरा लखि अंजन-लीकहिं मान कौ होति चलाचल है।
उन हाय बिसासिनि कीनी दगा धरि कंठ मैं भेज्यौ हलाहल है ॥१३९॥

आए प्रभात प्रभा भरे अंगनि जीति मनौ रस-रंग-अखारौ।
बैन कह्यौ इमि भावती सैन सौं दाग बतावति कज्जल वारौ॥
कीजत क्यौं न परैं पट सौं बलि है यह भौंर भयानक कारौ।
बैठत तौ अधरा पर रावरे पै हिय बेधत हाय हमारौ ॥१४०॥

जानति हौं जैसे तुम छलके निधान कान्ह,
ताहू पर मोहिं प्रेम-पूरन-पगे लगौ।
कहै रतनाकर कपोलनि लै पीक-लीक,
मोकौं तुम मेरे अनुरागहिं रँगे लगौ॥

जैसैं दरपन मैं दिखात उलटौई सब,
सूधौ पर जानि जात जब लखिबे लगौ।
मेरे मन मुकुर अमल स्वच्छ माहिं त्यौंहीं,
कपट किऐं हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥१४१॥

अंजन अधर औ कपोल पीक-लीक लसै,
रसिक बिहारी बेस बानिक बने लगौ।
कहै रतनाकर धरत डगमग पग,
तातैं मोहिं मेरे ही बियोग मैं जगे लगौ ॥
जानत जगत सब तैसौही दिखात ताकौं,
जैसौ चसमौ है जब जाके चष मैं लगौ।
नेह की निकाई छाई नैननि हमारैं तातैं,
कपट किऐं हूँ प्यारे निपट भले लगौ ॥१४२॥

आए उठि प्रात गोल गात अलसात मुख,
आवति न बात भाल भावत कसीस है।
कहै रतनाकर सुधाकर मुखी सो लखि,
बिलखि न बोली रही नीचैं करि सीस है ॥
कर कुच-कोर ओर बढ़त पिया कौ पेखि,
भावती चढ़ाई भौंह भाव यह दीस है।
जानि पंचबान की चढ़ाई ईस-सीस मानौ,
रीस करि तानत कमान रजनीस है ॥१४३॥

एरी मीच नीच ना मचाइ इमि खाँचा खाँच,
जाइ उहाँ कैसैं बीच सौ गुनौं सहैंगी हम ।
कहै रतनाकर उठे है उर औरे अब,
अबलौं भई सो भई अब ना डहैंगी हम ॥
भरि भुज भेंटि जौं न पैहैं तौ न पैहैं भलैं,
लाहु इन नैननि कै ललकि लहैंगी हम ।
गरब गुमान सब भेट करि तेरी एरी,
सौतिनि हूँ की चेरी औ कमेरी है रहैंगी हम ॥१४४॥

डारे कहूँ शृंगी भृंगी-गन गुनि टारे कहूँ,
बरद बिचारे कौं बिसारे बिचरन मैं ।
आनँद-अपार-पारावार के हलोरनि मैं,
दौरि डगमग पग धारत लगन मैं ॥
पुलक गँभीर प्रेम-विह्वल सरीर हुए,
नीर अधखुले अनिमेष दृग-तन मैं ।
चूमि चटकाइ अँगुरीनि रस-घूमि झूमि,
झाँकी लेत ललकि पिनाकी मधुवन मैं ॥१४५॥

लाल की ललक रंग रेलन की रुलि गई,
भूलि गई हिम्मत हुमक लखि बाल की ।
बाल की मिसाल हूँ न हाथ इत उत हल्यौ,
पिचकी उबी की उबी रहिगी रसाल की ॥

लाल की न नैननि की नैंकु हूँ सँभाल भई,
लागी टकटकी दसा ह्वै गई बिहाल की।
हाल की कहै को जब आधे पल पेखि राधे,
मूठि सी चलाई मूठी भरि कै गुलाल की ॥१४६॥

मौज भरी साजन मनोज-सेज भौन लागीं,
आतुर तुराई की तुलाई होन लागी है।
कहै रतनाकर रँगीन चीर चोलनि की,
परदे अमोलनि की चोप चित पागी है॥
आवत हिमंत दूरि चंदन कपूर भए,
केसर कुरंग-सार माहिँ रुचि रागी है।
सुमिरि अनंद केलि मंदिर कौ सुंदरीनि,
अमित अनंग की तरंग अंग जागी है ॥१४७॥

बरसत पाला पौन लागत कसाला होत,
गाला होत हिम कौ दुसाला सियरान सौं।
कहै रतनाकर प्रभाकर निकाम होत,
काम होत नैंकहूँ न तपता कृसान सौं॥
ऐसे समय मान करिबे मैं अपमान होत,
प्रान होत बावरी बिकल कलकान सौं।
घर घर घैर होत सौतिनि कैं सैर होति,
बैर होत प्रबल प्रपंची पंचबान सौं ॥१४८॥

कैधौं अति दुसह दवागि की दपेट कैधौं,
बाड़व की विषम झपेट-झर-झार है।
कहै रतनाकर दहकि दाह दारुन सौं,
उगिलत आगि कैधौं पावक-पहार है॥
रुद्र-दृग तीसरे की कैधौं विकराल ज्वाल,
फेकत फुलिंग कै फनिंद फुफुकार है।
कैधौं ऋतुराज-काज अवनि उसास लेति,
कैधौं यह ग्रीषम की भीषम लुआर है॥१४९॥

जोहि प्रतिबिंब मोहि मोहन न मोहै कहूँ,
यह मनमोहिनी करति चित चेन है।
कौन तुम सुंदरी सकारैं हीं पधारी भौन,
कहति चितौनि सौं जनाइ हिम-हेत है॥
अति सुकुमारी भूरि-भूषन-सँवारी तुम,
कित धौं पधारीं इत हरि कौ निकेत है।
बरबस नारिनि कौ सरबस बानिक सौ,
हेरि मन-मानिक समेत हरि लेत है॥१५०॥

होरी खेलिबे कौं रंग रुचिर कमोरी घोरि,
गोपी-ग्वाल-मंडल अखंड उमगान्यौ है।
कहै रतनाकर बजावत मृदंग चंग,
गावत धमार मार अंग सरसान्यौ है॥

छाई छिति धारनि अपार पिचकारिनि की,
जोहि नर-नारिनि बिमोहि अनुमान्यौ है।
फाग-सुख-हाँस रोकि राखन की आस आज,
जाल अनुराग कौ बिसाल ब्रज तान्यौ है ॥१५१॥

अंबर मैं बादल गुलाल कौ रह्यौ जो छाइ,
सोई है पितंबर कौ रंग करसत है।
कहै रतनाकर मुकेस बूका धूरि हू तैं,
पूरि चहुँ कोद रस-मोद बरसत है॥
अब कैं अनंग-रंगकार की कृपा सौं कछू,
परम अनोखौ यह ढंग दरसत है।
परसत जोई लाल रंग इन अंगनि मैं,
सोई स्याम रंग है करेजैं सरसत है ॥१५२॥

आए चहुँ ओर तैं घुमंडि घनघोर घेरि,
टक्करनि लेत ज्यौं मतंग मतवारे हैं।
कहै रतनाकर धराधर अकास धरा,
एकमेक ह्वै कै धूमधार-रंग धारे हैं॥
कत्तड़ान वड़ान घ्ड़ान घेड़ेन्न घेड़ेन्न घेन्नडान,
धधकतान धधकतान धधकतान वारे हैं।
मनसा-महान-बिस्व-बिजय-बिधान आनि,
बाजत ये मदन-महीप के नगारे हैं ॥१५३॥

बरसन लागे मेघ मूसर-समान धार,
ब्रज पै प्रहार की अपार अनया चली।
कहै रतनाकर अखंडल के तापन कौं,
लै लै ग्वाल मंडली प्रचुर पनया चली॥
हाथ जोरि हारे मानि मन्नत करोर हारे,
तोरि हारे तृन पै न नैंकु मनया चली।
भानु-तनया को ठहरान करि ध्यान लिए,
मुरली लुकाई वृषभानु-तनया चली॥१५४॥

रूपक कै कुच कौं कह्यौ है संभु प्राचीननि,
सोई धुनि आधुनिक धुनत हनोज हैं।
कहै रतनाकर पै कैसैं ये महेस भए
मनसिज-मीत ताकी पावत न खोज हैं॥
नेह-न्याय-नीर मन-मानस मैं जाकै,
ताकैं मंजु मुख मंडित ये बचन सरोज हैं।
ज्यौं जुग नकार प्रकृतारथ दृढ़ावत त्यौं,
जुगल उरोज-संभु ज्यावत मनोज हैं॥१५५॥

परम-प्रमोद-प्रभा-पुंज प्रतिबिंबनि तैं,
ब्रज रसधाम दाम दीपति कौ है गयौ।
कहै रतनाकर त्यौं दुख-तप-ताप-तपे,
जीवन कौ दंद छुव्यौ छेम छगुनौ छयौ॥

गोपी-ग्वाल-गैयनि के गौरव गुमान बढ़े,
सुजस सुगंध कौ सुश्रौसर ठयौ नयौ।
नंदराय-मंदिर अमंद उदयाचल तैँ,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदय भयौ ॥१५६॥

पाप-पंकजात जातुधान मुरझान लगे,
प्रफुलित गोपी-गोप-गैयनि कौँ कै दयौ।
कहै रतनाकर अनन्य ब्रतधारिनि कौ,
सब दुख दंद दूरि देखत हीँ है गयौ॥
दूषन बिहीन सीस-भूषन दिगंबर कौ,
जासौँ छिति अंबर कौ आनँद महा छयौ।
नंद-पुन्य-पूरब-अपूरब पयोनिधि सौँ,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयौ ॥१५७॥

जोहत अटारी पुर-द्वारी सब नारी नर,
जानि मनभावन कौ आवन-समै भयौ।
कहै रतनाकर उचाइ पग चाय चढ़े,
चपल चितौत चोप चित अति सै भयौ॥
ताही बीच मोद की मरीचि आई आनन पै,
चारौँ ओर सोर यह सानँद सलै भयौ।
गोरज-समूह-घन-पटल उघारि वह,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयौ ॥१५८॥

धुंधरित धूम-धार-धुरवा निवारि वह,
तपित-त्रिताप-ही-हिमाकर उदै भयौ।
कहै रतनाकर त्यौं जड़ता बिदारि वह,
सुरस-सुसीलता-सुधाकर उदै भयौ॥
बिरह-बिषाद-तम-तोम निरवारि वह,
चखनि-चकोर-चंद्रिकाकर उदै भयौ।
गोरज-समूह-घन-पटल उघारि वह,
गोप-कुल-कुमुद-निसाकर उदै भयौ॥१५९॥

तीर जमुना कैं स्याम-सुंदर सुजान कहा,
आनद निधान बीर बाँसुरी बजावै है।
कहै रतनाकर स्वरूप सुखमा पै नैन,
नाम-रस-रोचक पै रसना रचावै है॥
नासा मृदु बास पै सुतान-माधुरी पै कान,
परस उमंग मृदु अंग पै लुभावै है।
मानौ मन-मंदिर-प्रबेस-कामना सौं काम,
पाँचौ पौरिया कौं आस-आसव छकावै है॥१६०॥

देखन न पैयत अघाइ ब्रज-भूप रूप,
मन की मजूसैं मन ही मैं रुलि जाति हैं।
कहै रतनाकर मिलै जौ कहूँ औसर हूँ,
तौ पै ये अनौसर अनीत तुलि जाति हैं॥

ठानति जितौ हौँ ठान भरि दृग देखन कौ,
सौँहैं होत ते सब डगरि ढुलि जाति हैं।
ढुलि ढुलि जाति हैं सँकोचनि प्रतच्छ पेखि,
देखैं सपने मैं ये निमेषैं खुलि जाति हैं ॥१६१॥

जिनके चरित्र तैं बखानि रसखानि आनि,
चित्रहूँ दिखायौ जैसी और चित्रकारी ना।
कहै रतनाकर लख्यौ सो सपने मैं सखी,
वैसौ कहूँ साँच ही स्वरूप रुचिकारी ना ॥
लागी उर लागन ललाइ त्यौंहीं जागी हाय,
लागी तबही तैं पल पलक हमारी ना।
ऐसे समै घात कै सिधारी जो नकारी नींद,
तातैं दईमारी फेरि पलट सिधारी ना ॥१६२॥

मोहैं मनमोहन अमोही नैंकु जोहैं जाहि,
द्रवि दृग ढारैं बारि भए मतवारे हैं।
कहै रतनाकर भँवात मुरझाए जात,
उठत अमाप तन ताप के तँवारे हैं ॥
पावत न जोग उपयोग उनकौं है कछू,
पारे मुरचात ते निषंग मैं बिचारे हैं।
सान सुरमे की चढ़ि लोचन तिहारे जुग,
पाँचौ बान काम के निकाम करि डारे हैं ॥१६३॥

कैतौ उहिँ रूप मैँ अनूपम प्रभा है कछू,
पावत प्रवेस लेसहू जौ निकरै नहीँ।
कहै रतनाकर कै मुकुरहि ऐसौ यह,
जामैँ परयौ पुनि प्रतिबिंब उबरै नहीँ॥
दोउनि कैँ जोग कै संजोग यह आनि बन्यौ,
पूरब कौ भोग कै निबेरैँ निबरै नहीँ।
नैँकु समुहाइ पैठि जाइ उर मैँ पै फेरि,
मूरति टरैँहूँ स्याम सूरति टरै नहीँ॥१६४॥

सूधैँहूँ सुभाइ नैँकु देखत अघाइ धाइ,
घूमत गुपाल सो निरेखत बनै नहीँ।
कहै रतनाकर न देखैँ दृग-दाह होत,
सोऊ दुख दुसह उपेखत बनै नहीँ॥
दोऊ भाँति बात बनी ऐसी है अनैसी कछु,
जाहि चाहि कछुक उलेखत बनै नहीँ।
लेखत बनै नहीँ प्रपंच पंचसायक कौ,
देखत बनै नहीँ न देखत बनै नहीँ॥१६५॥

सुनि मुरली की धुनि धाइ धाम धामनि सौँ,
आनि जुरीँ बाल रैन रेती की निकाई मैँ।
कहै रतनाकर मचाइ स्याम संग रंग,
लागीँ रास करन उमंग-अधिकाई मैँ॥

झलमल अंगनि की बमन सुरंगनि की,
झलकन लागीं झुकि झूमि झमकाई मैं ।
आई तरु-रंध्रनि सौं मानहु जुन्हाई इनि,
आनन जुन्हाई लसी सरद जुन्हाई मैं ॥१६६॥

तुम तौ न जानैं कौन छैल कैं छकी हौ रंग,
डोलति हौ ताही की उमंग अंग गाँसी है ।
कहै रतनाकर मुकुट बनमाल धरे,
मृगमद-लेप करे ताकी प्रतिमा सी है ॥
दरपन मैं सो स्वाँग देखन हमारैं धाम,
आवतिं सुरैं हाय कबहूँ बिनासी है ।
कोऊ जौ अदेखी देखिहै तौ लेखि है धौं कहा,
हाँसी परि जाइगी हमारे गरैं फाँसी है ॥१६७॥

काम-दाह अंतर निरंतर जगीयै रहै,
आठौं जाम जीभ नाम रटत सुखाई है ।
कहै रतनाकर रह्यौ जो घट जीवन सो,
सोखे लेति उघटि उसास-अधिकाई है ॥
तलफत सो तौ लखि तोहिं रस-आस लाइ,
तेरैं तन तनक न दीसति द्रवाई है ।
मंजु मुकता लौं तन पानिप भयौ तौ कहा,
जौ पै रंच कान्ह की तृषा न सियराई है ॥१६८॥

गंगा-लहरी

मंगलाचरण

कहत बिधाता सौं बिलखि जमराज भयौ,
अखिल अकाज है हमारी राजधानी कौ।
सुरसरि दीनी ढारि भूप के भुलावे माहिँ,
कीन्यो नाहिँ नैँकुहूँ बिचार हित-हानी कौ॥
निज मरजाद पै कछू तौ ध्यान दीजै नाथ,
कीजै इमि प्रगट प्रभाव बर बानी कौ।
पावैँ नर नारकी न रंचक उचारि क्यौंहूँ,
गंगा कौ गकार औ चकार चक्रपानी कौ॥१॥

जद्यपि हमारे पाप-पुंज अति घाती तऊ,
जनम जनम के सँघाती निरधारै तू।
कहै रतनाकर ममात इमि मात गंग,
तातैं तिन्हैं नासन के ढंग ना बिचारै तू॥
काक करै कोकिल बलाक कलहंस करै,
आक ढाक जैसैं सुरतरु कै सँवारै तू।
त्यौंहीं पलटाइ काय तिन पै लगाइ छाप,
पुन्यनि के कलित कलाप करि डारै तू॥२॥

साजि फेरि बसन बिभूषन अदूषन कौं,
चारु स्रक चंदन सुगंध सरसैहैं हम।
हुलसि हिये मैं गुनि कहति गिरा यौं पुनि,
बीना-धुनि-संग राग रंग भरयौ गैहैं हम॥
कीन्ही करतूत जो कपूतनि अपूत ताकौ,
प्राच्छित कै धूत ह्वै बहुरि छबि छैहैं हम।
बैठि कै रसीली रसना पै रतनाकर की,
पैठि कै उमगि गंग-धार मैं नहैहैं हम॥३॥

बोधि बुधि बिधि के कमंडल उठावतहीं,
धाक सुरधुनि की धँसी यौं घट-घट मैं।
कहै रतनाकर सुरासुर ससंक सबै,
बिबस बिलोकत लिखे से चित्र-पट मैं॥

लोकपाल दौरन दसौं दिसि हहरि लागे,
हरि लागे हेरन सुपात बर बट मैं।
खसन गिरीस लागे त्रसन नदीस लागे,
ईस लागे कसन फनीस कटि-तट मैं ॥४॥

बिधि के कमंडल तैं निकसि उमंडि धाइ,
आइ कै खमंडल मैं खलबल डारै है।
कहै रतनाकर पुरंदरपुरी मैं पुनि,
अति उद्वेग बेग-धमक पसारै है।
तमकि त्रिलोक के त्रितापहिँ बहाइ बेगि,
बाड़व बनाइ बरुनालय मैं पारै है।
ताही की उतंग ज्वाल-मालनि सौं गंग फेरि,
पातक अपार के अगार जारि डारै है ॥५॥

उड़त फुहारन कौ तारन-प्रभाव पेखि,
जम हिय हारे मनौ मारे करकनि के।
चित्र से चकित चित्रगुप्त चपि चाहि रहे,
बेधे जात मंडल अखंड अरकनि के॥
गंग-छीँट छटकि परै न कहूँ आनि इतै,
दूत इमि तानत बितान तरकनि के।
भागे जित तित तैं अभागे भीति-पागे सबै,
लागे दौरि दौरि देन द्वार नरकनि के ॥६॥

फबति फुही जो फैलि छवति अकास माहिँ,
तिनके बिलास कौ बिकास इमि भावै है।
कहै रतनाकर रतन सब ही कौ संग,
तिनके प्रसंग मैँ सुढंग छबि छावै है॥
मानौ हरि राग गंग निखिल नहैयनि के,
रंग रंग रेलि मंजु मिसिल लगावै है।
पुनि सखि जमुना-पिता कौं उपहार-रूप,
करि मनुहार मनि-हार पहिरावै है॥७॥

संभु की जटा तैँ कढ़ि चंद की छटा सी फैलि,
हिम के पटा पै प्रभा-पुंजनि पसारै है।
कहै रतनाकर सिमिट चहुँघा तैँ पुनि,
छोटे-बड़े सोतनि के गोत ह्वै ढरारै है॥
मिलि मिलि सोतनि तैँ नारे बहु बेगि बनै,
धार ह्वै अपार पुनि घोर रोर पारै है।
सगर-कुमारनि के तारन कौं धावा किए,
मानहु भगीरथ कौ पुन्य ललकारै है॥८॥

अस्तुति-बिधान गान करत बिमान-चढ़े,
देवनि की दिव्य छटा छहराति आवै है।
कहै रतनाकर त्यौँ दूरि दूरि ही तैँ दुरी,
जम की जमाति हेरि हहराति आवै है॥

फहरति आवै कंदरप की पताका-रासि,
पारस-पखान-खानि ढहरति आवै है।
आगैं चले आवत भगीरथ भगाए रथ,
गंग की तरंग पाछैं लहरति आवै है ॥९॥

बिधि बरदायक की सुकृति-समृद्धि-वृद्धि,
संभु सुर-नायक की सिद्धि की सुनाका है।
कहै रतनाकर त्रिलोक-सोक नासन कौं,
अतुल त्रिबिक्रम के बिक्रम की साका है॥
जम-भय-भारी-तम-तोम निरवारन कौं,
गंग यह रावरी तरंग तुंग राका है।
सगर-कुमारनि के तारन की सेनी सुभ,
भूपति भगीरथ के पुन्य की पताका है॥ १० ॥

दुरित दरीनि कंदरीनि कौं बिदारि बेगि,
चारौं ओर-छोर सोर आपनौ भराए देति।
कहै रतनाकर त्यौं पाप-खानि-खाड़ी आनि,
द्रोह दुरमति कलि कलुष ढहाए देति॥
करम करारे दुख-दारिद दिना द्रुम,
देखत दरारे करि काटि भहराए देति।
पुन्य-सील सलिल सुकृत-बर-बारी सींचि,
सुरसरि-धार फल चारिहूँ फराए देति ॥११॥

दोऊ ओर राजी हैं बिसद बनराजी बर,
नंदन की सोभा सुभ जिनमैं बिराजी हैं ।
कहै रतनाकर सुपाँति पसु-पच्छिनि की,
भाँति-भाँति रमति सुहाति सुख-साजी हैं ॥
गंग-जल पाइ कै अघाइ बिसराइ बैर,
बिहरत महिष मतंग बाघ बाजी हैं ।
नाचत मयूर मंजु फनि फुत्कारनि पै,
डारनि पै बाज औ बटेर बदैं बाजी हैं ॥१२॥

परसत नीर तीर बंजुल निकुंज कहूँ,
और फल-फूल की न सूल उर ल्यावैं हैं ।
कहै रतनाकर पसारे कर गंग ओर,
सुरपुर-पंथ कहूँ तरु बिखरावैं हैं ॥
मृग कलहंस बली बरद मयूर सबै,
पाइ जल ग्रीवहि उचाइ मटकावैं हैं ।
चंद, चतुरानन, पचानन, षड़ानन के,
याननि के हेरि हँसि आनन बिरावैं हैं ॥१३॥

करम-पहार-हार-मरम बिदारति औ,
कूट-कलि कलुषनि कंडति चलति है ।
कहै रतनाकर उमंडति उछारि आप,
ताप पै बरुन अस्त्र छंडति चलति है ॥

दारिद-दुरूह-ब्यूह कठिन करारनि औ,
दुख-द्रुम-भारनि बिहंडति चलति है।
खंडति अखंड दोष-दाप-झार खंडनि कौं,
मंजु महि-मंडल कौं मंडति चलति है ॥१४॥

देवधुनि न्हाइ न्हाइ चंद-मुखी-बृंद-चारु,
देखि जिन्हैं मान मैनका के मले जात हैं।
कहै रतनाकर विभूषन बसन धारि,
झारिनि मैं मंजुल सुवारि रले जात हैं॥
पेखि पाकसासन-पुरी मैं गंग-मासन सौं,
भूरि अमृतासन नवीन ढ्लै जात हैं।
मानौ लोक लोक के सुधाकर के आकर ये,
लै लै सुधा-धार बसुधा सौं चले जात हैं ॥१५॥

तेरी लहरी के कल गान सुनिबे कौं ठानि,
बीनापानि सौंहैं रहैं नित चित चाइ कै।
गुन गन तेरौ उर जानि रतनाकर कैं,
चंचला चलै ना ताहि तनक बिहाइ कै॥
हंस की कहै को परम्हंस आइ सेवैं तोहिं,
छीर-नीर-न्याय मानसानँद बिहाइ कै।
जूटी रहैं अखिल सुधासन-बधूटी तट,
तब जल-मासन कौं आसन लगाइ कै ॥१६॥

आवत हीँ ध्यान मैँ बिधान तिहिँ धावन कौ,
अटस अपावन कौ कटत करारा है।
कहै रतनाकर सु ताके सिकता मैँ चारु,
चमकत दीन पातकीन कौ सितारा है॥
बाढ़ै दिन दूनौ राति चौगुनौ प्रताप ताकौ,
जाकौ बीचि-ब्यूह चलै पढ़त पहारा है।
आरा है अनूप काटिबे कौँ पाप-डारा अरु,
गंग-धुनि-धारा जम-धार कौँ दुधारा है॥१७॥

कलुष बहाइ कै महान महिमंडल कौ,
अरक-लला के सब नरक पटाए देति।
कहै रतनाकर त्यौँ करम-बगीची-बीच,
पुन्य-जल सीँचि फल चारिहूँ फराए देति॥
जमपुर-पंथिनि के पातक पथेय पोत,
गंग निज तरल तरंगनि डुबाए देति।
हरि हरि तीछन त्रिताप तिहुँ लोकनि के,
बागर लौँ बेगि भवसागर सुखाए देति॥१८॥

कैधौँ संभु नैन तीसरे की सदा सन्निधि सौँ,
सार-स्रोति स्रवति सुधाकर-सुधा की है।
कहै रतनाकर कै लीक पुन्य पद्धति की,
कैधौँ माँग मोतिनि सौँ पूरित धरा की है॥

जग-जन-लाज-काज सारी कै सतोगुन की,
　　　सुघर सँवारी सुभ सुकृत-कला की है।
कैधौं हरि-पद-अरबिंद-मकरंद मंजु,
　　　महिमा अपार धार सुर-सरिता की है ॥१९॥

बिधि हरि हर की न जाती असुहाती बिधि,
　　　दीन बितहीन पापलीन तरसैबे की।
कहै रतनाकर त्यौं सुकृति-समाज लखैं,
　　　टरती न देवराज-टेव अरसैबे की ॥
सुरधुनि-धार जौ न धावती धरा पै धारि,
　　　धुनि सुख सुखमा अपार सरसैबे की।
पावते कहाँ तौ सत्व-स्वाति-परजन्य अन्य,
　　　त्रिभुवन-धन्य जुक्ति मुक्ति बरसैबे की ॥२०॥

पानी कौ सुढार किधौं पावक की झार लसै,
　　　धार कै तिहारी सार समुझि न आवै है।
कहै रतनाकर सुभाव लच्छ लच्छनि कौ,
　　　रावरौ प्रभाव लै बिलच्छन बनावै है ॥
सुकृत फरावै झरसावै झार दुःकृत कौ,
　　　ताप सियरावै जन-पापहिं जरावै है।
गंग तव नोखौ ढंग जगत उजागर है,
　　　सागर भरावै भवसागर सुखावै है ॥२१॥

धारे लेति लीन करि पातक-पहार पीन,
जारे देति कुमति कुबास छत-छानी है।
कहै रतनाकर ज्यौं धूरि उधिराए देति,
चूर करि भूरि दोष-दारिद-गलानी है ॥
ठाए देति अटल समाधि आधि ब्याधिनि कौं,
सपदि बहाए देति बिपति निसानी है।
गंग यह रावरी तरंग परमालय है,
पावक है पौन है पृथी है किधौं पानी है ॥२२॥

संकर की सिद्धि औ समृद्धि चतुरानन की,
हरि-महिमा की बृद्धि सुखमा सुधा की है।
कहै रतनाकर सुरूप-रुचिराई धरे,
अगुन सगुन ब्रह्म ब्यापक दुधा की है ॥
कहत बिचारि लाख बातनि की बात एक,
जामैं संक नैं कहूँ बिडंबना मुधा की है।
बेद औ पुराननि कौ सार निरधार यहै,
गंग-धार जीवन-अधार बसुधा की है ॥२३॥

मानत न नैंकु निरबान पदवी कौ मान,
तेरी सुख-साजी बनराजी मैं धँसत जो।
कहै रतनाकर सुधाकर सुधा न चहैं,
तेरौ जल पाइ कै अघाइ हुलसत जो ॥

बंक विधि-लेख की न रेख रहि जात तासु,
दिव्य सिकता लै भव्य भाल मैं घसत जो ।
हँसत हुलास सौं विलास पर देवनि के,
तेरैं तीर परन-कुटीर मैं बसत जो ॥२४॥

दुख-द्रुम-झाड़ काटै धाड़ काटै दोषनि की,
पातक पहाड़ काटै सब जग जानी है ।
कहै रतनाकर त्यौं जम के निगड़ काटै,
करम-कुलिस-पाट काटि ना किरानी है ॥
ऐसी साल नाहिँ नख माहिँ नर-केहरि के,
ऐसी बिकराल कालहू की ना कृपानी है ।
दंग होति धारना न होति निरधार नैंकु,
गंग तव धार मैं धर्यौ धौं कौन पानी है ॥२५॥

टेरि-टेरि कोकिल करति गुन-गान ताकौ,
हेरि-हेरि ताहि हंस-अवली सिहाति है ।
कहै रतनाकर बिसद बिरुदाली तासु,
बायस-भुसुंडी सौं उचारी ना सिराति है ॥
ताकी सुनि काकली बिहाइ पाप-राति जाति,
जोहि-जोहि जम की जमाति डरपाति है ।
बैठत जो काक गंग-तीर-आक-ढाकनि पै,
ताकी धाक नाक-नगरी मैं बँधि जाति है ॥२६॥

लोटि-लोटि लेत सुख कलित कछारनि कौ,
सुर-तरु डारनि कौ गौरव गहै नहीं ।
कहै रतनाकर त्यौं काँकर औ साँक चुनि,
चारु मुकता फल पै नैंकु उमहै नहीं ॥
हेम हंस होन की न राखत हिये मैं हाँस,
नंदन के कोकिल कौं कलित कहै नहीं ।
गंग-जल तोषि दोषि सुकृत सुधासन कौ,
काक पाकसासन कौ आसन चहै नहीं ॥२७॥

जाइ जमराज सौं पुकारे जमदूत सुनौ,
साहिबी तिहारी अब लाजतै रहति है ।
पापिनि की मंडली उमंडि मोद मंडित,
अखंडल के मंडल लौं राजतै रहति है ॥
सापी परतापी औ सुरापी हू न आवैं हाथ,
तिनहूँ पै छेम-छत्र छाजतै रहति है ।
दंगा करैं हमसौं हमेस हठि भृंगी-गन,
गंगा संभु-सोस-चढ़ी गाजतै रहति है ॥२८॥

ऐसे राज-काज प्रभुता सौं बस आए बाज,
आजलौं भई सो भई हम ना भुरैहैं अब ।
कहै रतनाकर-बिहारी सौं पुकारे जम,
हर-गन गब्बर सौं नाहिं अरुझैहैं अब ॥

खाते खीस होत लिखे निखिल नहैयनि के,
खोजैं कहाँ तिनकौं त्रिलोक माहिं पैहैं अब ।
देखि रंग-ढंग ये अनोखे बस दंग भए,
तंग भए भूरि गंग हमहूँ नहैहैं अब ॥२९॥

जाइ पाकसासन पुकारै कमलासन सौं,
अब मन सासन मढ़ावत मढ़ै नहीं ।
तुम तौ गनत रतनाकर तरंग बैठि,
मेरी बिनै चित पै चढ़ावत चढ़ै नहीं ॥
आवत चल्यौ जो इत गंग कौ पठायौ नित,
ऐसौ थित होत सो कढ़ावत कढ़ै नहीं ।
थोक उनकी तौ जाति बाढ़ति अरोक सदा,
सीमा सुरलोक की बढ़ावत बढ़ै नहीं ॥३०॥

रवनी रुचिर गज-गवनी महीपनि की,
दीपनि की जिनकी जगाजग जगी रहै ।
कहै रतनाकर अन्हातिं जब तो मैं मात,
चाहि चाहि कौतुक चकात सुनासीर है ॥
ज्यौं हीं जल-केलि मैं कलोलत नवेलिनि के,
गजमुकता कैं हार हलकत नीर है ।
त्यौं हीं दिव्य याननि पधारि बपु भव्य धारि,
नंदन मैं भरति गयंदन की भीर है ॥३१॥

नातरु निपट उकताइ ताइ तापनि सौं,
ताही दिसि ताहू कौं परैगौ पग पारिवौ।
धारिवौ उधारिवौ हुतौ जौ निज हाथ नाथ,
तौ ना गंग-धार कौं धरा पै हुतौ धारिवौ ॥३४॥

धारत ही पाइ सेससाइ पद पायौ पर,
फनि फुतकारनि मैं सनत बनै नहीं ।
पीयत ही बारि रतनाकर उदार भए,
भय मथिबे कौ पर भनत बनै नहीं ॥
भरत कमंडल बिरंचि है बिराजे पर,
रचना-प्रपंच रंच तनत बनै नहीं ।
मूड़ पै चढ़ी हौ जाके ताही के बिराजी रहौ,
गंगा अब न्हाइ नंगा बनत बनै नहीं ॥३५॥

लीने हरि करम सुभासुभ अटंब सबै,
छाँड़्यौ अब संवल औ बनिज वितानौ ना ।
कहै रतनाकर मनोरथ के नासे रथ,
गथ की कहै को पास पथ-परवानौ ना ॥
बात बसिबे की व्यवसाय की बतावै कौन,
आवागौन हू कौ बनि आवत बहानौ ना ।
ए हो गंग जाहिँ लै कहा धौँ अब काहू ओक,
तीनौँ लोक माहिँ रह्यौ ठहर ठिकानौ ना ॥३६॥

फेरै तब सेतता सियाही लेख जातक कैं,
स्नातक कैं अंग राग-रंग ह्वै जगति है।
कहै रतनाकर तिहारी मधुराई कलि-
दाँतनि की पाँतिनि खटाई ह्वै खगति है॥
सीतल सुखारौ जन-हीतल सदाई करै,
रावरे प्रताप की अमाप गूढ़ गति है।
सीत सौं तिहारे ताप-भीत जम-दूत रहैं,
आप सौं अनोखी आगि पाप मैं लगति है॥३७॥

न्हाइ गंगधार पाइ आनँद अपार जब,
करत बिचार महा महिमा बखानी कौं।
कहै रतनाकर उठति अवसेरि यहै,
बेर बेर पैयै क्यौं जनमि इहिं पानी कौं॥
पंच की कहा है करैं पातक प्रपंच सबै,
रंच हूँ डरैं न जम-जातना कहानी कौं।
सुरसरि-पंथ ओर पारत ही तौहूँ पाय,
आवति चलायै हाय मुक्ति अगवानी कौं॥३८॥

पारे दूरि ताप जे अमाप महि-मंडल के,
मारतंड है सो नभ-पंथ परसत हैं।
कहै रतनाकर गिरीस सीस सन्निधि तौ,
पाई रजनीस सुधाधीस सरसत हैं॥

रावरे प्रभाव कौ प्रकास चहुँ पास गंग,
हेरि हिय सहित हुलास हरसत हैं।
बेधि बेधि व्योम जो सिधारे तव तारे सोई,
बेध ब्रह्म जोति लै सितारे दरसत हैं॥३९॥

ईसहू बनायौ सीस-भूषन प्रसंसि ताहि,
मानस-बिहारी परम्हंस घिरके रहत।
धारन कौं सादर उदार रतनाकर के,
अंग अंग सहित उमंग थिरके रहत॥
मानि भाग-वैभव सुहाग-माँग पूरन कौं,
सरग-बधूटिनि के जूट भिरके रहत।
सुरधुनि-धार निरधारि मुकता कौ हार,
मुकति अपार के प्रकार घिरके रहत॥४०॥

मंदर कौ भार भरते ना सुकुमार हरि,
बासुकी की बरत बनाइ बरते नहीं।
कहै रतनाकर सुरासुर प्रसिद्ध सबै,
होन कौं अमर कै समर मरते नहीं॥
इहि जग जटिल अनैसे माहिं जीवन कौं,
पीवन कौं ताहि नर हौंस भरते नहीं।
जौ ना निरधारते सुधा तौ-धार सोदर तौ,
सीस पै सुधाधर गिरीस धरते नहीं॥४१॥

धोइ देतीँ खातौ ही हमारौ जौ न सारौ आप,
चित्रगुप्त कहा कौ कहा धौँ करि देत्यौ तौ।
कहै रतनाकर न पाप नासतीँ जौ इतौ,
भानहू कौ भौन तम-तोम भरि देत्यौ तौ॥
तारतीँ अपार जग-जीव जौ न मात गंग,
रचना प्रपंच कौँ बिरंचि धरि देत्यौ तौ।
मिलतीँ त्रिलोक कौ त्रिताप हरि जौ ना आप,
सिंधु-आप बाड़व कौ ताप दरि देत्यौ तौ॥४२॥

जोगी जती तापस बिलोकि सुरलोक माँहिँ,
हिय सुख-साजन के धरकन लागैँ हैँ।
कहै रतनाकर न मान निज जानि कछू,
गौरब गुमान सबै सरकन लागैँ हैँ॥
गंग के पठाए लोल लंपट निहारैँ फेरि,
उमगि उछाह-छटा छहरन लागैँ हैँ।
थरकन लागैँ सुर-तरु सुर-धेनु आदि,
सुर-तरुनीनि अंग फरकन लागैँ हैँ॥४३॥

पापी तन-तापी मैँ न भेद कछु राखति है,
पार भवसागर कैँ सबहीँ उतारे देति।
कहै रतनाकर बिरंचि रचना सौँ बेगि,
पंच-तत्त्व त्यागि सत्व सकल निकारे देति॥

त्रिगुन त्रिलोक के गुननि पर पानी फेरि,
एक गुन आपनौ अनूपम बगारे देति।
रंग जमराज कौ रहै न सुरराज ही कौ,
दोऊ पुर गंग एक संग ही उजारे देति ॥४४॥

मृग कौं मृगांक मृग मंजुल रचावै अरु,
सिंहवाहिनी कौ सिंह सिंहहिँ सजावै है।
ताल कौं उताल रतनाकर बिसाल करै,
देव-करि करि करि-निकर पठावै है॥
नंदीगन निपट अनंदी करै बैलनि कौं,
न्हाइ कढ़े छैलनि कौं वाहन बँटावै है।
मानुष कौ संकर करत असंग कहा,
गंग गिरि-कंकर कौं संकर बनावै है॥४५॥

बासुकी बरेत गिरि मंदर मथानी करि,
ठानी इमि जाती रतनाकर मथाई क्यौं।
होत्यौ राहु बंचक क्यौं रंचक से लाहु काज,
होती आज लौं यौं चंद सूर की गहाई क्यौं॥
सुरसरि-धार पहिलैं हीं जौ पधारती तौ,
पारती सुरासुर मैं लालच लराई क्यौं।
पीते चित-चीते सबै आनँद अघाइ धाइ,
रहती सुधा की बसुधा मैं कृपनाई क्यौं॥४६॥

संतत सुजान बिधि बेद-गान-आनँद मैं,
лагन लगाए यौं मगन रहते नहीं ।
कहै रतनाकर सदासिव सदा ही इमि,
भंग की तरंग मैं उमंग गहते नहीं ॥
आठौं जाम रहते रमेश काम ही मैं लगे,
सेस पै निमेष बिसराम लहते नहीं ।
पतित-उधारन के दोष-दुख-टारन के,
जो पै गंग-धार मैं अधार चहते नहीं ॥४७॥

बसि बसि जात जे परोस मैं तिहारे मात,
बात तिनकी तौ कछु बनत उचारैं ना ।
कहै रतनाकर कहै को पास आवन की,
ते पुनि पलटि पुहुमी पै पग धारैं ना ॥
सकपक ह्वै कै सब चकपक चाहि रहे,
ऐसी दसा देखि कै निमेष सुर पारैं ना।
फेरि जग आवन कौ करि कै बिचार भयौ,
कोऊ अवतार गंग-धार के किनारैं ना ॥४८॥

सुरधुनि-धार के उजागर भए तैं भूमि,
आई भवसागर मैं भूरि भरुवाई है ।
गुन गरुवाई और भुवन त्रयोदस की,
आनि याके पानिप मैं सिमिटि समाई है ॥

पारद-प्रभाव रतनाकर भयौ सो यह,
जामैं परि बूड़न की बात ही बिलाई है।
नेम ब्रत संजम की कठिन कमाई करि,
अब तौ परैं न इहाँ देन उतराई है ॥४९॥

सगर-कुमारनि कौ उमगि उबारन कै,
अमर अगारनि कौ बिचल बसावतौ।
मुक्ति-प्रद-पानिप-प्रभाव-प्रभा आगर सौं,
सागर कौं कौन रतनाकर बनावतौ ॥
ब्याली गज-खाली औ कपाली भूतनाथ कहौ,
माथ धरि काकौं सिव संकर कहावतौ।
होतौ जौ न नातौ गंग-धार कौ अधार तौ पै,
जड़ जल्ल कैसैं पद जीवन कौ पावतौ ॥५०॥

जोरि जोरि पातक-बिधान सब कोरि कोरि,
भेंट कौ तिहारी फेंट भूरि भरि धारे हम।
कहै रतनाकर अपार बटपारे पर,
पाछैं परे ज्यौं ही तव मग पग पारे हम ॥
बिकट पहाड़िनि मैं खाड़िनि मैं झाड़िनि मैं,
साधन अनेक कै कछूक जो उबारे हम।
सोऊ बचे पहुँचि किनारे ना तिहारे गंग,
तातैं हाथ झारे आनि तुम सौं जुहारे हम ॥५१॥

तारे साठ सहस कुमार जे सगरवारे,

तिन अपराधनि की गनना न भारी है।

कहै रतनाकर उधारे जन जेते और,

तिनमैं न कोऊ ऐसौ बिदित बिकारी है॥

याही हेत देत हैं चिताए गंग चेत धरौ,

धसकि न जाइ धरा धाक जो तिहारी है।

लीजै करि सँभरि तयारी मनवारी सबै,

पारी अबकैं तौ अति बिकट हमारी है॥५२॥

श्रीविष्णु-लहरी

पारैं और भाव ना प्रभाव मन माहिँ नैंकु,
एक तव भावना स्वभाव लौं सगी रहै।
और धारनाहूँ की विधूसरित धारा माहिँ,
रस-रतनाकर-तरंग उमगी रहै॥
आवै बात रंभा-अधरानि औ सुधाहू की न,
ऐसी मुख स्याम-नाम-माधुरी पगी रहै।
प्रेम-रस रसत सदाई रहैं कोयनि सौं,
रावरी लुनाई इमि लोयनि लगी रहै॥

जाउँ जम-गाउँ जौ समेत अपराधनि के,
तौ पै तिहिँ ठाउँ ना समाउँ उबर्‌यौ रहौं।
कहै रतनाकर पठावौ अघ-नासि जु पै,
तौ पै तहाँ जाइबे की जोगता हर्‌यौ रहौं॥
सुकृत बिना तौ सुर-पुर मैं प्रवेस नाहिँ,
पर तिन तैं तौ नित दूर ही टर्‌यौ रहौं।
तातैं नयौ जौ लौं ना निवास निरमान होइ,
तौ लौं तव द्वार पै अमानत पर्‌यौ रहौं॥

देखत मतंग ज्यौँ कुरंग-पति फारै दौरि,
काहू के निहोरनि की बाट ना निहारै है।
कहै रतनाकर प्रभाकर प्रभा ज्यौँ ब्यौम,
बिन बिनती हीँ तम-तोम नासि डारै है॥
पावक स्वभावक हीँ माने बिन द्रोह मोह,
निपट निवारतहूँ दारुदोह जारै है।
त्यौँहीँ कृपा रावरी उतावरी-समेत धाइ,
बिनहीँ गुहारैँ बेगि बिपति बिदारै है॥ ३॥

हाहाकार होत्यौ यौँ अपार भवसागर मैँ,
रहती न कान अनाकानि है इथेरी सी।
कहै रतनाकर बिधाता के बिधानहूँ सौँ,
जाती न निबेरी एती आपद घनेरी सी॥
पदमा प्रबीन कैँ पलोटतहूँ पाइ धाइ,
ऋद्धि सिद्धिहूँ के किएँ जुगति घनेरी सी।
आवती न ऐसी सुख-नीँद सेसहूँ पै नाथ,
होती जौ न चेरी कृपा कुसल कमेरी सी॥ ४॥

टेरन न पावैँ तुम्हैँ टेरिबौ बिचारत ही,
आरत है धाइ कृपा दुख दरि देति है।
कहै रतनाकर अघाए घाय जीवन पै,
आनँद सजीवन की मूरि धरि देति है॥

एक एक पूरि अभिलाष लाख भाँतिनि सौं,
ऋद्धि सिद्धि पाँति सौं भौन भरि देति है।
ताकी चूक कूक पै न कान ना निहारैं कहूँ,
जानि यह क्लेस कौं निमेस करि देति है ॥५॥

एक तौ तिहारौ पद-पाथ नाथ प्रानिनि कौं,
देत बिन रोक तिहुँ लोक तैं निहारौ है।
कहै रतनाकर बहुरि गुन-गान ध्यान,
भेजे देत जानैं कहाँ जंगम अखारौ है॥
आदि ही सौं रचना बिरंचि बिसतारि हारयौ,
पारयौ पै न क्यौंहूँ पूर पारन बिचारौ है।
छवि उमगाइ तौ अनंत ह्वै हिये सौं धाइ,
सकति न पाइ कृपा पूरन पसारौ है॥६॥

सब कछु कीन्यौ हम निज बस ही सौं महा,
कौन तुमहीं कौं फेरि परबसताई है।
कहै रतनाकर फलाफल रचे जो अरु,
करम सुभासुभ मैं भिन्नता भराई है॥
निज रचना के उपजोग की तुम्हैं जो चाह,
तौ न निरवाह मैं हमैंहूँ कठिनाई है।
मान्यौ मरजाद सबै आपनी रचाई पर,
यह तौ बतावौ कृपा कौन की बनाई है॥ ७॥

निज बल प्रबल-प्रभाव कौ भरोसौ थापि,
और सब भावनि कौं निदरि भजावै है।
कहै रतनाकर तिहारे न्याव हू कौ ध्यान,
ताके अभय-दान-आगैं आवन न पावै है॥
तापै हमहीं कौ तुम दोषिल बतावत हौ,
तातैं बिलखात यह बात कढ़ि आवै है।
राखौ रोकि आपनी कृपा जौ कह्यौ मानै नीठि,
ढीठ हमकौं जो करि अकर करावै है॥ ८॥

कहत सिहाइ केते प्रतिभा-प्रभाइ पेखि,
साँचौ यह सुघर सपूत सारदा कौ है।
केते कहैं मोहि जोहि जागत प्रताप ताकौ,
अरि-उर-सात यह लाल गिरिजा कौ है॥
सब-सुख-साधन की सिद्धि मनमानी सदा,
केते लखि लेखत लड़ैतौ कमला कौ है।
एहो ब्रजराज इमि सकल समाज माहिँ,
रंग रतनाकर पै रावरी कृपा कौ है॥ ९॥

रावरे भरोसे के सिँहासन बिराजे रहैं,
नाम मंजु मंत्री हित-चिंतन करयौ करै।
कहै रतनाकर त्यौं संतत प्रधान ध्यान,
आनँद निधान उर अंतर भरयौ करै॥

बिसद ब्रह्मंड पै अखंड अधिकार रहै,
प्रेम-नेम-सासन दुरासनि दर्यौ करै।
माथ पै हमारे नित नाथ-हाथ छत्र रहै,
कलित कृपा कौ चारु चँवर ढर्यौ करै ॥१०॥

ऐते बड़े नाथहूँ न हाथ करि पावैं जाहि,
ताकौ वार हाय हमवार किमि आड़ैंगे।
कहै रतनाकर न हम हनता मैं आइ,
ऐसे मन प्रबल-प्रभाइ सौं बिगाड़ैंगे ॥
निज करनी-फल के बिफल सहारे कहा,
रावरौ भरोसौ-तरु कामद उजाड़ैंगे।
छाड़ैंगे न कान्ह आप जबलौं कृपा की कानि,
तौ लौं बानि हमहूँ कुठानि की न छाड़ैंगे ॥११॥

हारि बैठिबौ हो जो उधारन के खेल माहिं,
तौपै रेलि पेलि एती ऊधम मचाइ क्यौं।
कहै रतनाकर सगाई जौ हुती ना हियैं,
तौ पै तन मन ऐती लगन लगाई क्यौं ॥
भाग अरु कर्म ही कौ धर्म राखिबौ जौ हुतौ,
तौपै धरी सीस कहौ सर्व-सक्तिताई क्यौं।
जौपै नाथ रावरी कृपा मैं ना समाई हुती,
ऐती ठकुराई ठानि ठसक बढ़ाई क्यौं ॥१२॥

कौन की बिनै पै जग जनम दियौ है नाथ,
कौन की बिनै पै पुनि मानुष बनायौ है।
कहै रतनाकर त्यौं कौन के कहे पै कहौ,
चित सुख-चाव कौ सुभाव उपजायौ है ॥
ऐतौ सब कीन्यौ आपनी ही मनसा सौं आप,
काहू कैं अलाप औ न चाप उकसायौ है।
अब क्यौं कृपाल कृपा-ढार ढरिबे की बार,
चाहत कछूक हाय हमसौं कहायौ है ॥१३॥

उदर बिदारयौ हरिनाकुस कौ केहरि ह्वै,
जन पहलाद परयौ पेखि कठिनाई मैं।
कहै रतनाकर रिषीस दुरबासा सीस,
बिपति ढहाई अंबरीष की हिताई मैं ॥
बिग्रह बिलोकि ग्राह निग्रह कियौ है धाइ,
गहरु न लाइ गज-उग्रह-कराई मैं।
भाई तुम्हैं भक्तनि की एती पच्छताई तौ पै,
नाथ ना रहाई अब तब ठकुराई मैं ॥१४॥

साजे रहै साज-बाज सब मनमाने सदा,
हरि के हिये सौं होति रंचहू सु न्यारी ना।
कहै रतनाकर बिमुख-मुखहूँ पै रंच,
झलकन झाईं देति सौति सुधिवारी ना ॥

राखैं रुंधि बैन सबके निज माधुरी मौं,
जामैं कहैं कोऊ बात ताकी घानवारी ना ।
ऐसो जग सजग कृपा की रखवारी लहैं,
आवन की पारी लहैं करुना बिचारी ना ॥१५॥

फिकिर नहीं है कछु आपनी बिसेष हमैं,
प्रकृति हमारी अहमान चहनी नहीं ।
कहैं रतनाकर पै रावरे कहावत हैं,
तातैं यह हेटना तिहारी सहनी नहीं ॥
यातैं करि साहस पुकारि कै चिताए देत,
रावरी कृपा जौं नाथ हाथ गहती नहीं ।
तौपै करुना-निधान सान सोम-बंसिनि की,
आन भानु-बंसिनि की आज रहनी नहीं ॥१६॥

बड़े बड़े आनि उपमान तव नैननि के,
करत बखान जिन्हैं मान प्रतिभा को है ।
कहै रतनाकर हमैं तौ पै न जानि परै,
इनकी बड़ाई मैं बिधान समता को है ॥
एतियै लखाति औ इतीयै कहि जाति बात,
पलकनि बीच बिस्व-छितिज छमा को है ।
एक एक कोर करुना को बरुनालय है,
एक एक पारावार पूरित कृपा को है ॥१७॥

मीँजि मन मारे फिरैँ कब लौँ तिहारे दास,

आस बिन पोषैँ हाय कब लौँ पुषी रहैँ

कहै रतनाकर रचाए बिना रंचक हूँ,

तोष की कहाँ लौँ पढ़ी पद्धति घुषी रहैँ ॥

रावरे रुचिर करुनानँद सकेलन कौँ,

तुमही बिचारौ जन कब लौँ दुखी रहैँ ।

तातैँ बिना कारन कृपा के उदगारनि मैँ,

तुमहूँ अनंद लहौ हमहूँ सुखी रहैँ ॥१८॥

माँगत छमा जो नाहिँ बूझत हमारी बात,

आनन सहज मुसक्यानि भरयौ रहै ।

कहै रतनाकर त्यौँ नैननि तैँ बैननि तैँ,

सैननि तँ अमित अनुग्रह ढरयौ रहै ॥

ह्वै है किमि गिनती हमारी बिनती की हाय,

याही ग्लानि मानि मन गुदरि गरयौ रहै ।

धसन न पावै ध्यान भान अपराधनि कौ,

करुना-निधान कौ पिधान यौँ परयौ रहै ॥१९॥

अनुचित उचित बिचार चित सौँ कै दूरि,

रावरी कृपा कौ भूरि लाहु लहते सही ।

कहै रतनाकर रुचिर मुखचंद चारु,

देखत अनंद सौँ घरीक रहते सही ॥

रोकिबौ रिसैबौ भौंह बिकट चढ़ैबौ नाथ,
हाथ झटकैबौ रोपि माथ सहते सही ।
धीर बहि जात्यौ नैन-नीर मैं तिहारैं जौ न,
तौपै चीर पकरि कछूक कहते सही ॥२०॥

ऐसे कछू मायामयी सौतुक निहारे नैन,
जिनकौ न कौतुक कछूक कहि जात है ।
करुना अपार रतनाकर तरंगनि मैं,
तिनके संजोग कौ सुजोग लहि जात है ॥
गुन-तृन तिनसौं सुमेरु गरुवाई गहै,
दोष-मेरु तृन सौ तुरत हरुवात है ।
एक लहियाइ कै हिये मैं ठहि जात बेगि,
एक फहियाइ कै बहकि बहि जात है ॥२१॥

देखत हमारी दसा दारुन तिहारैं नैन,
बूँद करुना की लौटि फेरि इमि छाई है ।
कहै रतनाकर न जातैं गुन दोष मान,
परत प्रमान सौ जथारथ दिखाई है ॥
याही अवसेरि फेरि नीकैं जनि हेरौ कहूँ,
अब तौ हमारी सब भाँति बनि आई है ।
राई सौ सुगुन गिरिराई है लखात तुम्हैं,
दोष गिरिराई सौ लखात पुनि राई है ॥२२॥

सेद-कन सारत सँभारत उसास हू न,
बास हू बदलि पट नील कँधियाए हौ।
कहै रतनाकर पछाए पच्छि-नायक कौ,
बढ़त पुकार हू कैं पार अगुवाए हौ॥
बाएँ पंचजन्य जात बाजत बजाएँ बिना,
दाऐं चकरात चक्र बेग यौं बढ़ाए हौ।
कौन जन कातर गुहार लगिबे कैं काज,
आज इमि आतुर गुपाल उठि धाए हौ ॥२३॥

कोऊ देव टेरते कहौ धौं मुहँ लाइ कौन,
साधन तौ काहू कौ अराधन न कीन्यौ है।
कहै रतनाकर गुनाकर बनेई रहे,
ऐसौ बल बुद्धि के गुमान मन भीन्यौ है॥
काम के परै पै कौन नाम लै पुकारैं अब,
याही कैं मलोल मुखखोलन न दीन्यौ है।
हम तौ गुहार्यो ना अनाथ अपने कौं ठाइ,
धाइ पर नाथ तौ सनाथ करि लीन्यौ है ॥२४॥

जानत हूँ तुमकौं अजान बनि टेर्यौ हाय,
अब सो अजानता की ग्लानि गरिबौ पर्यौ।
कहै रतनाकर हराँस के हरैया रंच,
आँस औ उसास हूँ सँभारि भरिबौ पर्यौ॥

पाई आप पीर जो अधीरता हमारी हरि,
देखि कै अधीर तुम्हैं धीर धरिबौ पर्‌यौ ।
आप तौ हमारे मनुहार कौं पधारे पर,
उलटौ हमैं ही मनुहार करिबौ पर्‌यौ ॥२५॥

नारि गीध गनिका उधारि पहलाद आदि,
बानि जो बनाई सो न कानि गहि जाइगी ।
कहै रतनाकर जो द्रौपदी गजेंद्र हित,
धाइ श्रम साध्यौ सोऊ साख ढहि जाइगी ॥
औसर परे पै अब रंचहू कृपाल सुनौ,
चूक जौ परी तौ हियैं हूक रहि जाइगी ।
आयौ कहूँ नीर जो अधीर इन नैननि तौ,
एतौ सब साधना वृथा ही बहि जाइगी ॥२६॥

है है दसा दारुन हमारी कहा कौन भाँति,
इन परपंचनि सौं रंच मन गारौ ना ।
कहै रतनाकर न आतुर ह्वै धीर तजौ,
नीर भरे नैननि सौं कातर निहारौ ना ॥
ऐसी प्रेम-परख-प्रभा सौं हम चाहैं छमा,
कसक करेजैं आनि कछुक उचारौ ना ।
सारौ ना मधुर मुसकानि मंजु आनन तैं,
नाथ नैंकु बाँसुरी बजाइबौ बिसारौ ना ॥२७॥

कोऊ कहै लच्छ औ अलच्छ पुनि कोऊ कहै,
दोऊ पच्छ-भेद तौ प्रतच्छ दरसाए ना।
कहै रतनाकर दुहूँ के अनुमान-बाद,
बिगत-बिबाद औ प्रमाद ठहराए ना॥
देखिनि अदेखिनि की एकै दसा देखि परै,
लेखि परै लेखा कछु रावरौ लिखाए ना।
देख्यौ जिन नाहिं ते अलच्छ कहिबोई चहैं,
देख्यौ जिन तेऊ चौंधि लच्छ करि पाए ना॥२८॥

आपही कौं आपही न पावत हौ हेरैं रंच,
आपै आपु आपुही मैं आपुही हिराने हौ।
बूँद लौं समाने हौ अपार रतनाकर मैं,
पुनि रतनाकर लौं बूँद मैं समाने हौ॥
ऐसे कछु लच्छ कै समच्छ दसहू दिसि मैं,
पूरे प्रति कच्छ मैं प्रतच्छ दरसाने हौ।
ऐसे पै अलच्छ कै जतन जोग लच्छहू सौं,
काहू ज्ञान-दच्छ हू सौं जात ना पिछाने हौ॥२९॥

मंजु मनि कामद मयूष परमानु आनि,
माटी माहिं निपट निराटी ह्वै धरत हौ।
कहै रतनाकर समेटि बगरावौ फेरि,
याही हेर-फेर कैं बिनोद बिहरत हौ॥

जानौ तुमहीं कै वह जानन जनावौ जाहि,
　　　　और कौन जानै कहा कौतुक करत हौ।
बैठे बिन काज बनिकनि लौँ लगाए साज,
　　　　या घट कौ धान धाइ वा घट भरत हौ ॥३०॥

मेरी जान सोई महा चतुर सुजान जाकी,
　　　　सुमति तिहारैं गुन-गननि ठगी रहै।
कहै रतनाकर सुधाकर सौँ उज्ज्वल सो,
　　　　जामैं सुभ स्यामता तिहारी उमगी रहै॥
तिहिँ मन-मंदिर पतंग दुरभाव नाहिँ,
　　　　जामैँ तव ज्योति की जगाजग जगी रहै।
मगन न होत सो अपार भवसागर मैं,
　　　　तव गरुता की जाहि लगन लगी रहै ॥३१॥

गहकि गह्यौ ना गुन रावरौ गुनी जो गुनि,
　　　　सो पुनि गहीलौ गुन-गौरव गह्यौ कहा।
बूँदहू लही ना तव प्रेम रतनाकर की,
　　　　लाहु तौ अलाहु लहि जीवन लह्यौ कहा॥
रंचहू दह्यौ ना तो बिछोह-दुख दाहनि जो,
　　　　सो करि प्रपंच पंच पावक दह्यौ कहा।
जान्यौ तुम्हैँ नाहिँ सो अजान कहा जान्यौ आन,
　　　　जान्यौ तुम्हैँ ताहि आन जानन रह्यौ कहा ॥३२॥

साधि हैं समाधि औ अराधि हैं न ज्ञान-ध्यान,
बाँधि हैं तिहारैं गुन भान मुकलैं हैं ना।
कहै रतनाकर रहैंगे है तिहारे भृत्य,
दुरभर भार भरतार कौ भरैं हैं ना॥
आपनी ही चिंता सौं न चैन चित रंच लहैं,
जगत निकाय कौ प्रपंच सि लैहैं ना।
एकै घट नाधि साध सकल पुराईं अब,
हम तुम है कै घट-घट मैं समैहैं ना॥३३॥

परि परि प्रबल प्रपंच माहिं पंचनि के,
नाच्यौ हौं जितेक नाच तेतिक नचैया को।
कहै रतनाकर पै औरै खाँच खाँची अब,
तुम बिन ताके पर साँच कौ सँचैया को॥
जौ हम अनाथ औ न माथ पै हमारे कोऊ,
तौ अब हमारौ कर अकर जँचैया को।
जौ पुनि सनाथ हैं तौ तुमहीं बतावौ नाथ,
हमसे सनाथ कौ अनाथ लौं तँचैया को॥३४॥

दीन जन ही के जौ उधारन की टेक तुम्हैं,
तौ पै अब अधम अदीननि उधारै कौन।
कहै रतनाकर बिसारै जो सुधारौ ताहि,
परि इहिं लालच मैं तुमकौं बिसारै कौन॥

तुम तौ अनाथनि की सुनत पुकार सदा,
नाथ होत तुमसे अनाथ है पुकारै कौन ।
होते जौ अनाथ तौ उबारते हमैं हूँ नाथ,
हम तौ सनाथ कहौ हमकौं उबारै कौन ॥३५॥

जौ पै कहौ भावना हमारी ही अनाथनि की,
तौ पै ताहि नाथि कै सनाथ ना बनावौ क्यौं ।
कहै रतनाकर जौ करम-बिवाद तौपै,
आदि ही सौं आप हो न करम करावौ क्यौं ॥
जौ पै अवकास नाहिं रंच आन पंचनि सौं,
तौ पै इते पंच के प्रपंचहि बढ़ावौ क्यौं ।
हम जौ अनाथनि लौं इत उत टेकैं माथ,
तौ पै तुम नाथ नाथ बिस्व के कहावौ क्यौं ॥३६॥

और तौ न रंचहू बिरंचि रचना मैं कछू,
पंचभूत ही कौ तौ प्रपंच सब ठौरै है ।
कहै रतनाकर मिलाप तिनही कौ भिन्न,
सब जड़ जंगम मैं भेद-भाव डौरै है ॥
होहिं हूँ जौ औरौ तत्त्व तिनहूँ के स्वत्व-काज,
त्यागि तुम्हैं और कोऊ ठाकुर न ठौरै है ।
बस सब भूतनि के नाथ तुमहीं जौ नाथ,
नाथ तौ हमारे पंचभूत कौ न औरै है ॥३७॥

होत्यौ मन माँहिँ मन राखिबौ हमारौ जौ न,
तौ पै मनमानौ एतौ करते दुलारौ ना।
कहै रतनाकर बिचार निरधारि यहै,
ढीठ ह्वै उचारैँ तातैँ बिलग बिचारौ ना॥
आपनौ हीँ जानि कृपा कोप जो करौ सो करौ,
आन मानि धारौ तौ कृपा हू रंच धारौ ना।
कै तौ गहि हाथ बिस्व बाहर निकारौ नाथ,
कै तौ बिस्वनाथ निज नाथता बिसारौ ना॥३८॥

पुन्य पाप दोऊ तौ बनाए रावरेई नाथ,
फेरि फलाफलहू फराए रावरेई हैँ।
कहै रतनाकर चहत पुन्य कौँ तौ सबै,
गाहक पै पाप के लखात बिरलेई हैँ॥
दोऊ मैँ न भेद पै लखात हमकौँ है कछू,
दोऊ सुख साधन के बाधन बनेई हैँ।
दुसह बियोग-ज्वाल-जरत बियोगिनि कौँ,
अमर-अवास सुर-बास एक सेई हैं॥३९॥

सोई सो किए हैँ जो जो करम कराए आप,
तिनपै भले की औ बुरे की छाप छापौ ना।
कहै रतनाकर नचाइ चित चाह्यौ नाच,
काच-पूतरी पै गुन दोष आप आपौ ना॥

खोटे खरे भेद औ प्रभेद धरि राखौ उतै,
बिवस बिचारे पै वृथा ही थाप थापौ ना।
थापौ जहाँ भावै तुम्हैं थापिबौ हमैं पै नाथ,
माथ पै हमारे पाप-पुन्य-थाप थापौ ना ॥४०॥

कीन्यौ आपही तौ रचि कठिन कुभाव ताकौ,
जाकौ अब प्रबल प्रभाव इमि भावै है।
कहै रतनाकर सुरासुर प्रसिद्ध सिद्ध,
ताके परपंच सौं न कोऊ पार पावै है॥
तापै सब दोष नाथ आवत हमारैं माथ,
साहस कै तातैं यह गाथ मुख आवै है।
भूल तुमहूँ कौं बस करि जो भुलावै हमैं,
कीजै कहा सोई हमैं तुमकौं भुलावै है ॥४१॥

होत्यौ पंचतत्त्व मैं न स्वत्व तव संचित जौ,
तौ पै बुधि तिनकैं प्रपंच पढ़ती कहा।
कहै रतनाकर गुनाकर न होते तुम,
तौ पै भेद-भावना-बिभूति बढ़ती कहा॥
पावती न साँचौ जो तिहारी मनसा कौ मंजु,
तौ पै कृति प्रकृति बिचारी गढ़ती कहा।
लहती प्रभाव-पौन जौ न तव पायनि कौ,
तौ पै धूरि धमकि अकास चढ़ती कहा ॥४२॥

कामना-बिहीन कबौं नाम ना तिहारौ लेत,
बाम-धन-धाम ही की चेत चित ठाई है।
कहै रतनाकर बिलासनि की आस हियैं,
रहति हुलासनि की हौंस हुमसाई है॥
कामी क्रूर कुटिल कुमारग के गामी इमि,
अजहूँ न नैंकु बिषै-बासना सिराई है।
चाहैं वह धाम जहाँ गनिका सिधाई जऊ,
गाँठि मैं न दाम कछू सुकृति कमाई है॥४३॥

केते मनु-अंतर निरंतर व्यतीत ह्वै हैं,
केती चित्रगुप्त-जम औधि उटि जाइगी।
कहै रतनाकर खुल्यौ जो पाप-खाता मम,
तौ गनि बिधाताहू की आयु खुटि जाइगी
जैहै बाँचि-बूझि अबकी ना लिपि भाषा नैंकु,
औरै पाप-पुन्य-परिभाषा जुटि जाइगी।
लाहु लहि संसय कौ संसय बिना ही बस,
पापिनि की मंडली अदंड छुटि जाइगी॥४४॥

ए हो बीर पातकी अधीर जनि होहु सुनौ,
यह ततबीर भीर रावरी भजावैगी।
भाषैं यहै आगैं हूँ अभागे हमसौं जो जाहि,
याही एक बात घात सकल बनावैगी॥

पहिलैँ हमारे सरदार रतनाकर कौ,
पातक-अपार-परतार पार पावैगौ ।
जैहैँ बस चौकड़ी अनेक जुगवारी बीति,
पारी फेरि जाँच की तिहारी नाहिँ आवैगी ।।४५।।

दान देत चेत कै सहस्र गुनौ पैबे हेत,
लाए नेत ईसहू के संपति-भँडारे पै ।
कहै रतनाकर कहत राम-नाम हू के,
रामा कौ अकार चढ़ै चित चटकारे पै ।।
हाथ मैँ हजारा गरैँ माला तुलसी की नीकी,
राँची रुचि जी की नित करम नकारे पै ।
जोरि जोरि नैन सैन करि कछु आपस मैँ,
पाप मुसकात पाले प्राच्छित हमारे पै ।।४६।।

एक तुमही सौँ तौ सकल नेह नातौ बस,
और की तौ जानत न मानत सगाई हम ।
कहै रतनाकर सु वारपार धारहू मैँ,
सोई तुम्हैँ देखत अपार सुखदाई हम ।।
जानते जौ काहू जानकार दूसरे के कहैँ,
पार जान ही मैँ कछु अधिक भलाई हम ।
जप-तप-साधन दुसाध की कमाई करि,
देते मनभाई तुम्हैँ नाथ उतराई हम ।।४७।।

लेते गहि तूमड़ी अनेक एक की को कहै,
साँसनि के सासन सौँ नैकु डरते नहीँ ।
कहै रतनाकर विधान तारिबे के आन,
जेते ध्यान माहिँ तिनहूँ सौँ टरते नहीँ ॥
हाथ पाय मारते विचारते उपाय सवै,
एतनि मैँ हमहीँ कहा धौँ तरते नहीँ ।
होतौ चित चाव जौ न रावरे कहावन कौ,
भाँवरे भवांबुधि मैँ भूलि भरते नहीँ ॥४८॥

सूनौ ठाम जौ पै बिसराम करिबे कौँ चहौ,
तारन के काम सौँ बिरामता सुहाई है ।
तौपै रतनाकर के हिय सौ न सूनौ धाम,
जामैँ होति स्याम नाहिँ आन की अवाई है ॥
बलि तौ नपाई देह बाचा-बद्ध ह्वै कै इहाँ,
द्वग पग धारिबे की लालसा लगाई है ।
खोजत जौ पापिनि के माथ धरिबे कौँ हाथ,
तौपै मम माथ नाथ कौन पुन्यताई है ॥४९॥

भाव दृढ़ता के कछु भरन न पाए उर,
दुख-सुख--झोरनि हिँडोरनि पले गए ।
कहै रतनाकर प्रपंचनि कैँ पेँच परि,
साहस न संचि सके छकित छले गए ॥

घेरि-घेरि ज्यौं-ज्यौं मन माहिँ चढ्यो रावन कौं,
फेरि फेरि त्यौं त्यौं तुम भाजन भले गए।
जानि हमैं कादर निरादर करन नाथ,
मूर के हिये सौं क्यौं न निमुकि चले गए।।५०।।

सूर तुलसी लौं नाहिँ भक्ति अधिकारी हम,
ताके माँगिबे की चित्त चाह गहिबौ कहा।
कहै रतनाकर न पंडिताई केसव की,
तातैं कल कीरति की हौंस बहिबौ कहा।।
मन अभिलाषै धन, धाम वाम नाम सदा,
पूछत तिहारे सकुचात कहिबौ कहा।
तातैं अब तुमहीं बनावौ हू कृपाल टाहि,
अपर हमैं है तुम्हैं चाहि चहिबौ कहा।।५१।।

स्वारथ कौ पथ गथ गूढ़ परमारथ कौ,
पारथ हू पायौ ना तौ और कौन पैहै जो।
कहै रतनाकर न रंच यह पावैं जाँचि,
जाँचै कहा साँच ही प्रपंच-खाँच ख्वैहै जो।।
याही उर अंतर निरंतर प्रतीति धरैं,
याही सुख मंतर हू अंत दुख ध्वैहै जो।
ह्वै है हठि सोई जो तिहारैं मन भैहै नाथ,
भैहै तुम्हैं सोई तौ हमारौ हित ह्वैहै जो।।५२।।

(१) श्री शारदाष्टक

सुमिरत सारदा हुलसि हँसि हंस चढ़ी,
बिधि सौं कहति पुनि सोई धुनि ध्याऊँ मैं ।
ताल-तुक-हीन अंग-भंग छबि-छीन भई,
कविता बिचारी ताहि रुचि-रस प्याऊँ मैं ॥
नंददास-देव-घनआनँद-बिहारी-सम,
सुकवि बनावन की तुम्हैं सुधि द्याऊँ मैं ।
सुनि रतनाकर की रचना रसीली रंच,
ढीली परी बीनहिँ सुरीली करि ल्याऊँ मैं ॥ १ ॥

कहति गिरा यौं गुनि कमला उमा सौं चलौ,
भारत मही मैं पुनि मंजु छबि छाजैं हम।
राखैं जौ न नैंकु टेक जन-मन-रंजन की,
हरि हर बिधि की बृथा हो बाम बाजैं हम॥
माख मानि बैठ्यौ ऐंठि लाड़िलौ हमारौ ताकौ,
करि मनुहार सुधा-धार उपराजैं हम।
साजैं सुख संपति के सकल समाज आज,
चलि रतनाकर कौं नैंसुक निवाजैं हम॥२॥

आवति गिरा है रतनाकर निवाजन कौं,
आनँद-तरंग अंग ढहरति आवै है।
हिय-तमहाई सुभ सरद-जुन्हाई सम,
गहब गुराई गात गहरति आवै है॥
बर बरदाननि के बिबिध बिधाननि के,
दान की उमंग धुजा फहरति आवै है।
लहरति आवै दृग कोरनि कृपा की कानि,
मंद मुसुकानि-छटा छहरति आवै है॥३॥

आवत हीं सारदा अमंद मुख-चंद हियैं,
स्रोति मन-मनि सौं स्रवति कबितानि की।
कहै रतनाकर कढ़ति धुनि है सो पुनि,
पावत उमंग कल किन्नरी-कलानि की॥

स्रौन सुख हेत होति सरस सुधा की धार,
माधुरी अपार सौं मृदुल मुसुकानि की।
होति अनहोनी पुनि तामैं मिठलौनी लहि,
लोनी कृपा-कलित सलोनी अँखियानि की ॥ ४ ॥

बातनि की ललित लपेट कदली कैं फेंट,
अरथ कपूर भरपूर सरसत है।
कहै रतनाकर सुकोस लेखिनी कैं सुचि,
आखर कौ रोचन रुचिर दरसत है॥
रूरे रस-सिंधु-अवगाही मति सुक्ति माहिँ,
उक्ति जुक्ति मुक्तिनि कौ पुंज परसत है।
सारद-सुसीले मंदहास स्वाति-बारिद तैं,
जब सुख कारि कृपा-बारि बरसत है॥ ५ ॥

रावरे अनुग्रह-प्रताप कौ प्रकास पाइ,
बालमीकि - ब्यास - जसचंद उजराए हैं।
कहै रतनाकर त्यौं बानी महारानी मात,
कबि-मनि सूर तुलसी हूँ चमकाए हैं॥
अबिरल रावरे सुवा के मुख मंजुल तैं,
बेद भेद सकल अखेद जात गाए हैं।
जिनके उचारन के हेत करि चेत चारु,
चारि चतुरानन के आनन बनाए हैं॥ ६ ॥

मात सारदा के मुसकात मंजु आनन पै,
कलित कृपा के चारु चाव बरसत हैं।
कहै रतनाकर सुकबि प्रतिभा पै मनौ,
मधुर सुधा से भूरि भाव सरसत हैं॥
सारी सेत ऊपर सुगंध कच कुंचित यौं,
छहरि छबीले मुखानि परसत हैं।
इंद्रनील-खचित कबित्तनि के दाम मनौ,
रजत-पटी पै अभिराम दरसत हैं॥ ७॥

सुनि सुनि भारती तिहारे सुगना के बोल,
किन्नरी कलोल लोल चित्त है लुभाए हैं।
कहै रतनाकर मृदुल माधुरी सौं मोहि,
वैसे ही कबित्त कहिबे कौं हुलसाए हैं॥
अब तौ हमारौ मन राखतै बनैगौ तोहिं,
भाषतै बनैगौ बर जापै मचलाए हैं।
जौ पै हैं सपूत तौ तिहारेई बनाए मातु,
जौपै हैं कपूत तौ तिहारे ही लड़ाए हैं॥ ८॥

---

(२) श्रीगणेशाष्टक

इंद्र रहैं ध्यावत मनावत मुनिंद्र रहैं,
गावत कबिंद्र गुन दिन-छनदा रहैं।
कहै रतनाकर त्यौं सिद्धि चौंर ढारति औ,
आरति उतारति समृद्धि-प्रमदा रहैं॥
दै दै मुख मोदक बिनोद सौं लड़ावत ही,
मोद मढ़ी कमला उमा औ बरदा रहैं।
चारु चतुरानन पँचानन षड़ानन हूँ,
जोहत गजानन कौ आनन सदा रहैं॥१॥

मंजु अवतंसनि पै गुंजरत भौंर-भीर,
मंद-मंद श्रौननि चलाइ बिचलावै है।
कहै रतनाकर निहारि अध चाँपै चख,
चूमिबे कौं संभु कौ अधर फरकावै है॥
कुंडलि सुंडिका पसारि अनचीते चट,
कुंडल षड़ानन कौ छ्वै पुनि छपावै है।
दाबे मुख मोदक बिनोद मैं मगन इमि,
गोद गिरिजा की गहे मोद उपजावै है॥२॥

ठेले कछु दंत सौँ सकेले कछु सुंड माहिँ,
मेले कछु आनन गजानन परात हैं।
कहै रतनाकर जगत मैं न रंच कहूँ,
भगत बिघन के प्रपंच दरसात हैं॥
धाइ धाइ पारत फनी के मुख-मंडल मैं,
लाइ लाइ सोऊ जीभ चट करि जात हैं।
उत तौ उमा के उर उठत अनेस इत,
भेस देखि मुदित महेस मुसकात हैं॥३॥

सुंड सौं लुकाइ औ दबाइ दंत दीरघ सौं,
दुरित दुरूह दुख दारिद बिदारे देत।
कहै रतनाकर बिपत्ति फटकारै फूँकि,
कुमति कुचार पै उछारि छार डारे देत॥
करनी बिलोकि चतुरानन गजानन की,
अंब सौं बिलखि यौं उराहनौ पुकारे देत।
तुमही बताओ कहाँ बिघन बिचारे जाहिँ,
तीनौं लोक माहिँ ओक उनकौं उजारे देत॥४॥

सुमुख कहाइबौ सफल बक्रतुंड ही कौ,
सुमिरत जाहि कौन बिपति बही नहीं।
कहै रतनाकर त्यौं उदर उदार माहिँ,
सकल समानी कला एकौ उबरी नहीं॥

बुधि-बल तीनि हीँ परग मैँ त्रिलोक फिरे,
तातैँ गति मूषहू की मंदता लही नहीँ।
एकै दंत सकल दुरंतनि कौ अंत करै,
दंत दूसरे की तंत तनक रही नहीँ ॥५॥

एक रद ही सौँ रेलि बिघन समूह सबै,
संभु-दृग तीसरे मैँ जौ पै हुनते नहीँ।
कहै रतनाकर बुधाकर तुम्हैँ तौ फेरि,
अंग-हीन हेरि गननाथ गुनते नहीँ॥
होत्यौ गजराज-सुंड-पावन बिना ही काज,
बिटप-अकाज-साज जौ पै लुनते नहीँ।
ऐते बड़े कानन की कानि रहि जाती कहा,
जौ पै हमवार की पुकार सुनते नहीँ ॥६॥

केते दुख दारिद बिलात सुंड-चालन मैँ,
कसमस हालन मैँ केते पिचले परैँ।
कहै रतनाकर दुरित दुरभाग भागि,
मग तैँ बिलग बेगि त्रासनि चले परैँ॥
देखि गननाथ जू अनाथनि कौँ जोरे हाथ,
थपकत माथहूँ न नैँकु निचले परैँ।
मोदक लै मोद देन काज जब भक्तनि कौँ,
गोद तैँ उमा के मचलाइ बिचले परैँ ॥७॥

(३) श्रीकृष्णाष्टक

जाकी एक बूँद कौं बिरंचि बिबुधेस सेस,
सारद महेस ह्वै पपीहा तरसत हैं ।
कहै रतनाकर रुचिर रुचि जाकी पाइ,
मुनि-मन-मोर मंजु मोद सरसत हैं ॥
लहलही होति उर आनँद - लवंगलता,
दुख दंद जासौं ह्वै जवासौ झरसत हैं ।
कामिनी सुदामिनी समेत घनस्याम सोई,
सुरस - समूह ब्रज - बीच बरसत हैं ॥ १ ॥

लीन्यौ रोक जमुना-प्रवाह बाँसुरी कैं नाद,
जाकौ जसबाद लोक सकल बखानैं गे ।
कहै रतनाकर प्रलै की घनधार रोकि,
लीन्यौ ब्रज राखि सहसाखि साखि मानैं गे ॥
उमगत सिंधु रोकि द्वारिका बसाई दिव्य,
जुगजुग जाकी कबि कीरति बखानैं गे ।
हम तौ हमारी दसा दारुन बिलोकि नैंकु,
रोकि लैहौ करुना प्रवाह तब जानैं गे ॥ २ ॥

कोऊ कहैं कंज हैं कलानिधि-सुधासर के,
कोऊ कहैं खंज सुचि-रस के निखारे हैं।
कहै रतनाकर त्यौं साधा करि कोऊ कहैं,
राधा-मुख-चंद के चकोर चटकारे हैं॥
कोऊ अंग-कानन के कहत कुरंग इन्हैं,
कोऊ कहै मीन ये अनंग-केतु-वारे हैं।
हम तौ न जानैं उपमानैं एक मानैं यहै,
लोचन तिहारे दुख-मोचन हमारे हैं॥ ३॥

नेह की निकाई नित छाई अंगअंग रहै,
उठति उमंग रहै अमित अनंद की।
कहै रतनाकर हिये मैं रस पूरि रहैं,
आनि ध्यान-मनि मैं मरीचैं मुख चंद की॥
राँची रसना मैं आठौं जाम मधुराई रहै,
ताके नाम रुचिर रसीले गुलकंद की।
प्रेम-बूँद नैननि निमूँद नित छाई रहै,
लाई रहै ललित लुनाई नँदनंद की॥ ४॥

सुमिरि तुम्हैं जो हिय द्रवत न नैंकु हाय,
स्रवत न आँस लै उसास-रसवारौ है।
कहै रतनाकर पै नित धन-धाम-बाम,
काम ही के काम कौ पसारत पसारौ है॥

ऐसे हमहूँ से जो नकारनि कृपा कैं बारि,
सींचौ घन-स्याम तौ तौ बिरद-सँभारौ है।
भक्तनि के ताप टारिबे मैं ना निहारौ नाथ,
तिनके हियैं तौ निज धाम ही तिहारौ है ॥ ५ ॥

दूरि करि ताप-दाप तिमिर कलाप सबै,
चारौं फल माहिँ मंजु रस सरसाए देति।
दरि दुखदंद की अमंद अति उम्मस कौं,
आनँद सुधा सौं नैन-फलक द्रवाए देति ॥
बिबिध बिलासनि सौं पूरि सुभ आसनि कौं,
पाप-पंक-जात दुरबासनि दबाए देति।
उर रतनाकर के ब्रज के कलाकर की,
मंद-मुसकानि-जोति जीवन जगाए देति ॥ ६ ॥

दुखहू परे पै ना पुकारत गुपाल तुम्हैं,
कबहूँ उचारत उसास भरि राधा ना।
कहै रतनाकर न प्रेम अवराधैं रंच,
नेम ब्रत संजम हू साधैं करि साधा ना ॥
याही भावना मैं रहैं भभरि भुलाने कहूँ,
उभरि करेजैं परै करुना अगाधा ना।
अकथ अनंद जो अकारन कृपा कौ नाथ,
हाथ करिबै मैं तुम्हैं ताहि परै बाधा ना ॥ ७ ॥

पावैँ कहूँ ओक ना त्रिलोक माहिँ धावैँ फिरे,
सुरति भुलाए भूरि भूख औ पिपासा की।
कहै रतनाकर न इत उत चाहैँ नैँकु,
चपल चलेई जात साधे सीध नासा की॥
राख्यौ ना बिरंचि हरि हरहूँ न सक्र रंच,
बक्र गति चाहि चल चक्र के तमासा की।
साप की कहै को मुख बाहिर न स्वासा भई,
दुरित दुरासा भई दूरि दुरबासा की॥ ८॥

करुना प्रभाव कल कोमल सुभाव-वारौ,
जन रखवारौ सदा दिवस त्रिजामा कौ।
कहै रतनाकर कसकि पीर पावै उर,
ध्यान हूँ परे पै दुख दीन नर बामा कौ॥
याही हेत आखत कौ राखत बिधान नाहिँ,
पूजा माहिँ प्रीतम प्रबीन सत्यभामा कौ।
पांडवबधू कौ बच्यौ भात सुधि आइ जात,
छाइ जात नैननि पै तंदुल सुदामा कौ॥ ९॥

(४) गजेन्द्रमोक्षाष्टक

रमत रमा के संग आनँद-उमंग भरे,
अंग परे थहरि मतंग अवराधे पै।
कहै रतनाकर बदन-दुति औरै भई,
बूँदैं छईं छलकि दृगनि नेह-नाधे पै॥
धाए उठि बार न उबारन मैं लाई रंच,
चंचला हू चकित रही है बेग-साधे पै।
आवत बितुंड की पुकार मग आधैं मिली,
लौटत मिल्यौ तौ पच्छिराज मग आधे पै॥१॥

संग के पुराने गज दिग्गज डराने सबै,
ताने कान कुंजर सुरेस कौ चिघारयौ है।
कहै रतनाकर त्यौं करि कमला के काँपि,
चाँपि चख पानिप कहूँ कौ कहूँ पारयौ है॥
संकजुत दौरि पौरि खेलत गजानन हूँ,
गोद गिरिजा की दुरि मौन मुख धारयौ है।
एते माहिँ आतुर उमाहि हरि आइ धाइ,
सुंड गहि बूड़त बितुंडहिँ उबारयौ है॥२॥

सुंड गहि आतुर उबारि धरनी पै धारि,
बिबस बिसारि काज सुर के समाज कौ।
कहै रतनाकर निहारि करुना की कोर,
बचन उचारि जो हरैया दुख-साज कौ॥
अंबु पूरि दृगनि बिलंब आपनोई लेखि,
देखि देखि दीह छत दंतनि दराज कौ।
पीत पट लै लै कै अँगौछत सरीर कर-
कंजनि सौं पोंछत सुसुंड गजराज कौ॥३॥

परत पुकार कान कानि करुना की आनि,
सहित उदेग बेग-बिकल बिकाने से।
कहै रतनाकर रमा हूँ कौं बिहाइ धाइ,
औचक हीं आइ भरे भाइ सकुचाने से॥
आतुर उबारि पुचकारि धरनी पै धारि,
अमित अपार स्रम भभरि भुलाने से।
फेरत सुसुंड पै कँपत कर पुंडरीक,
बिकल-बितुंड-सुंड हेरत हिराने से॥४॥

संगवारे महत मतंगनि के संग सबै,
निज निज प्रान लै पराने पुसकर सौं।
कहै रतनाकर बिचारौ बल हारौ तब,
टेरि हरि पारयौ कल कंज गहि सर सौं॥

पहुँच न पायौ पुनि बारि लौं न जौ लौं वह,
तौ लौं लियौ लपकि उबारि हरबर सौं ।
एक सौं ललायौ चक्र एक सौं चलायौ गह्यौ,
एक सौं भुसुंड पुंडरीक एक कर सौं ।।५।।

देखती रमा जौ यह कानि करुना की कहूँ,
भूलि जाती मान के बिधान जे अभाए हैं ।
कहै रतनाकर पै ताकी हूँ न ताकी फाल,
अतुल उताल है इकाकी उठि धाए हैं ।।
पच्छिराज-बेग कौ गुमान गारिबे कौ गुनि,
औसर अनौसर पियादे पाय आए हैं ।
द्वै ही हाथ कीन्हें काज और अवतारनि मैं,
चारौं हाथ बारन-उबारन मैं लाए हैं ।।६।।

गुनि गज-भीर गह्यौ चीर कमला कौ तजि,
है हरि अधीर पीर-उमग अथाह मैं ।
कहै रतनाकर चपल चक्र बाहि चले,
बक्र ग्राह-निग्रह के अमित उछाह मैं ।।
पच्छीपति पौन चंचला सौं चख चंचल सौं,
चित्त हूँ सौं चौगुने चपल चलि राह मैं ।
बारन उबारि दसा दारुन बिलोकि तासु,
हुचकन लागे आप करुना-प्रबाह मैं ।।७।।

ढारै नैन नीर ना सँभारै साँस संकित सो,
जाहि जोहि कमला उतारयौ करै आरते।
कहै रतनाकर सुसकि गज साहस कै,
भाष्यौ हरैं हेरि भाव आरत अपार ते॥
तन रहिबे कैा सुख सब बहि जैहै हाय,
एक बूँद आँस मैं तिहारे जो बिचारते।
एक की कहा है कोटि करुनानिधान प्रान,
वारते सचैन पै न तुमकौं पुकारते॥८॥

—

(५) श्रीयमुनाष्टक

सूरज-सुता की सुभ सुखमा बखानै कौन,
रौन-रस-राँची साँची पुंज बरकत की।
छबि-मद-छाके नैन चंचल चलाँके मनौ,
लीने सुघराई कंज खंज फरकत की॥
झलकति अंग तैं उमगि अनुराग-प्रभा,
तातैं सुभ स्याम-अंग रंग-ढरकत की।
मरकत मनि तैं मरीचि कढ़ै मानिक की,
मानिक तैं मानहु मरीचि मरकत की॥१॥

ऐसी कछु बानक बनावति बिलच्छन कै,
जासौं डरि जम की जमाति टरि देति है।
कहै रतनाकर न माथ हुमसाइ सकै,
ताकैं हाथ हाय गिरिनाथ धरि देति है॥
जुग पतिनौ कौ पति नीकौ रहि पावै नाहिँ,
सोरह हजार नारि भौन भरि देति है।
जमुना-जवैया पेखि पातक पुकारि कहैँ,
भैया वह न्हात ही कन्हैया करि देति है॥२॥

जम-दम सौं तौ भाजि भभरि चले हैं उत,
कम जमुना की नाहिं जातना-प्रनाली पै।
कहै रतनाकर पुरैहै अभिलाष भूरि,
पहुँचत ताके पूर कठिन कुचाली पै॥
घोंटिबौ परैगौ दाप दुसह दवानल कौ,
ओटिबो परैगौ गिरि देह सुखपाली पै।
घर घर गोरस कौ जाँचिबौ परैगौ,
अरु नाचिबौ परैगौ काली नाग की फनाली पै॥३॥

देत जमराज सौं दुहाई जमदूत जाइ,
जमुना प्रताप-ज्वाल जग यौं बगारी है।
कहै रतनाकर न फटकन पावैं पास,
चटकन लागै चट पाँसुरी-पत्यारी है॥
पापिनि के पातक पहार सब जारे देति,
बसती उजारे देति धमकि हमारी है।
तपन-तनूजा जल-रूपहू भई तौ कहा,
अगिनी अनूप यह भगिनी तिहारी है॥४॥

मुक्ति-खानि पानिप निहारि स्वाति-टेक टारि,
पीउ पीउ धुनि कै पपीहा सोर पारै है।
कहै रतनाकर त्यौं बायस अघाइ नीर,
पाइ बलि-पायस कौ आयस नकारै है॥

मज्जत बिहंग हू जो तरल तरंगनि मैं,
तार्कौ है बिहंगपति बाहन जुहारै है।
बिचरै सिखंडी जमुना के बनखंडनि जो,
ताकौ पच्छ-मंडन कन्हैया सीस धारै है ॥५॥

जाइ रतनाकर पै जम यौं दुहाई देत,
अज अखिलेस सेसनाग पै सुवैया की।
देखौ जागि जमुना कुभाय के हिलोरे आप,
पाप-नाव बोरै मम पुर के जवैया की ॥
बिधि हूँ के रोष की न राखै परवाह रंच,
ऐसी भई सोख पाइ संगति कन्हैया की।
राखी मरजाद पाप पुन्य की सु राखी गनै,
साखी गनै बाप की न भाषी गनै भैया की ॥६॥

चित्रगुप्त कहत पुकारि जमराज सुनौ,
गाफिल है नैंकु निज गौरव गँवैयौ ना।
कहै रतनाकर कहत मत नीकौ हम,
पथ भगिनी कौं निज पुर कौ दिखैयौ ना ॥
ऐसौ कछु ऊधम मचाइ है पधारत ही,
पापिनि कौं पाइ है पछेरि फेरि दैयौ ना।
जैयौ तुम आपु हीं तिलक-हित ताकैं कूल,
भूलि जमुना कौं जमलोक कौं बुलैयौ ना ॥७॥

जम जमुना की होड़ निज निज काजनि मैं,
सकल समाजनि मैं बिसमय छावै है।
कहै रतनाकर करत एक जाँच भाल,
एक पै अजाँच बिन जाँच ही बनावै है॥
न्याय ही जरावैं दुहूँ संतति तपाकर की,
एक मातरा को भेद काज पै बँटावै है।
जम तौ जरावै दापि पापिनि समूहनि कौं,
पापनि समूहनि कौं जमुना जरावै है॥८॥

---

(६) श्रीसुदामाष्टक

जै जै महाराज जदुराज दुजराज एक,
सुहृद सुदामा राजद्वार आज आए हैं ।
कहै रतनाकर प्रगट ही दरिद्र-रूप,
फटही लँगोटी बाँधि बाध सौं लगाए हैं ॥
छीनता की छाप दीनता की थाप धारे देह,
लाठी के सहारैं काठी नीठि ठहराए हैं ।
संकुचित कंध पै अधौटी सी कँधौटी किए,
तापर सछिद्र छोटी लोटी लटकाए हैं ॥१॥

दीन हीन सुहृद सुदामा की अवाई सुनैं,
दीनबंधु दहलि दया सौं मया-पागे हैं ।
कहै रतनाकर सपदि अकुलाइ उठे,
भाइ गुरु-गेह के सनेह-जुत जागे हैं ॥
आइ पौरि दौरि देखि दृगनि अलेख दसा,
धीर त्यागि औरहू बिसेष दुख-दागे हैं ।
ये तौ करुना सौं छकि छिन अगुवाने नाहिं,
जानि वे पिछाने नाहिँ पलटन लागे हैं ॥२॥

आए दौरि पौरि लौं सुदामा नाम स्याम सुनैं,
भुज भरि भेंटि भए पूरन प्रनै मनै।
कहै रतनाकर पधारे बाँह धारे भौन,
बेना उपरेना कौ डुलावत बनै बनै॥
रुकमिनि धाई धारि झारी कर कंचन की,
सीतल सुहाएँ जल पूरित छनै छनै।
वै तौ पाय ऐंचत सकुचि चख नीर आनि,
पीर जानि धोवत ये और हूँ सनै सनै॥३॥

ल्याइ मनि मंदिर बिठाइ पट चंदन कैं,
आगैं धरि धवल परात पूरि पाते सौं।
कहै रतनाकर सुदामा कौ सँकोच मोचि,
कछु बुलकारि बोल रुचि-रस-राते सौं॥
बेगि घनस्याम कृपा-दामिनि दिखाई आनि,
ठानि यह रीति प्रीति-नीति के सुनाते सौं।
एक पग जौ लौं रुकमिनि जल पारयौ सीत,
तौ लौं आप दूसरौ पखारयौ आँस ताते सौं॥४॥

इत उत हेरि फेरि पीठि-पुटकी पै दीठि,
भरि चुटकी लै उपहार बिप्र-बामा कौ।
कहै रतनाकर चह्यौ ज्यौं मुख मेलन त्यौं,
मेला मच्यौ मंजु रिद्धि सिद्धि के हँगामा कौ॥

यौँ कहि निवार्‌यौ हंक बिहँसि बिलोकि बंक,
भीषमसुता कौ औ ससंक सत्यभामा कौ ।
आपने चने कौ अबै बदलौ चुकाए लेत,
चपल चबाए लेत तंदुल सुदामा कौ ॥५॥

दीबैं काज बिप्र कौं बुलाईं जदुराज जानि,
हिय हुलसाईं सुरराज के बगर मैं ।
कहै रतनाकर उमगि रिद्धि सिद्धि चलीं,
होड़ करि दौरत दरेरत डगर मैं ॥
सौहैं आनि पै न उकसौहैं पग रोकि सकीं,
बिबस बिचारी बेग-झोंक के झगर मैं ।
दमकीं दिखाइ द्वारिका मैं हमकीं जो फेरि,
ठमकीं सु आइ कै सुदामा के नगर मैं ॥६॥

हेरत न नैंकु पौरिया कैं नम्र टेरत हूँ,
कहत अबै ना सुर-सदन सिधैहैं हम ।
कहै रतनाकर सुघर घरनी त्यौं आइ,
पाइ गहि बोली चलौ संसय सिरैहैं हम ॥
बैभव निहारि निरधारि पुनि हेत बिप्र,
बदत बिचारि सिद्धि केतिक कमैहैं हम ।
तंदुल दै बदलौ चने कौ तौ चुकायौ कछू,
संपति इतीक कौ प्रतीक कहाँ पैहैं हम ॥७॥

सोई सुभ संपति बिपत्ति माहिँ गोई जऊ,
जोई जदुपति-रति पूरति सदाही मैँ।
कहै रतनाकर पै संपति बिपत्ति यह,
जासौँ प्रभु-सुरति सिराति ममताही मैँ॥
तेरे कहैँ द्वारिका गए सो तौ भली ही भई,
भुज भरि भेँटे स्यामसुंदर उछाही मैँ।
पर पछिताव यहै होत कत तंदुल दै,
हाय अनचाही एती बिपति बिसाही मैँ॥८॥

---

(७) श्रीद्रौपदी अष्टक

घूँटिहैं हलाहल कै बूड़िहैं जलाहल मैं,
हम ना कुनाम कौ कुलाहल करावैंगी।
कहै रतनाकर न देखि पाइबे की तुम्हैं,
पीर हूँ गँभीर लिए संगहीं सिधावैंगी॥
हाय दुरजोधन की जंघ पै उघारी बैठि,
ऐंठि पुनि कैसैं जग आनन दिखावैंगी।
बार बार द्रौपदी पुकारति उठाए हाथ,
नाथ होत तुमसे अनाथ ना कहावैंगी॥१॥

सांतनु की सांति कुल क्रांति चित्र-अंगद की,
गंग-सुत आनन की कांति बिनसाइगी।
कहै रतनाकर करन द्रोन बीरनि की,
स्रौन-सुनी धरम धुरीनता बिलाइगी॥
द्रौपदी कहति अफनाइ रजपूती सबै,
उतरी हमारी सारी माहिँ कफनाइगी।
द्रुपद महीपति की पंच पतिहूँ की हाय,
पंच पतिहूँ के पतिहूँ की पति जाइगी॥२॥

पांडु की पतोहू भरी स्वजन सभा मैं जब,
आई एक चीर सौं तौ धीर सब ख्वै चुकी।
कहै रतनाकर जो रोइबौ हुतौ सो तबै,
धाड़ मारि बिलखि गुहारि सब र्‍वै चुकी ॥
झटकत सोऊ पट बिकट दुसासन है,
अब तौ तिहारीहूँ कृपा की बाट ज्वै चुकी।
पाँच पाँच नाथ होत नाथनि के नाथ होत,
हाय हौं अनाथ होति नाथ बस ह्वै चुकी ॥३॥

भीषम कौं प्रेरौं कर्नहूँ कौ मुख हेरौं हाय,
सकल सभा की ओर दीन दृग फेरौं मैं।
कहै रतनाकर त्यौं अंधहूँ के आगैं रोइ,
खोइ दीठि चाहति अनीठहिँ निबेरौं मैं ॥
हारी जदुनाथ जदुनाथ हूँ पुकारि नाथ,
हाथ दाबि कढ़त करेजहिँ दरेरौं मैं।
देखी रजपूती की सकल करतूति अब,
एक बार बहुरि गुपाल कहि टेरौं मैं ॥४॥

दीन द्रौपदी की परतंत्रता पुकार ज्यौंहीं,
तंत्र बिन आई मन-जंत्र बिजुरीनि पै।
कहै रतनाकर त्यौं कान्ह की कृपा की कानि,
आनि लसी चातुरी-बिहीन आतुरीनि पै ॥

अंग पर्‌यौ थहरि लहरि दृग रंग पर्‌यौ,
तंग पर्‌यौ बसन सुरंग पँसुरीनि पै।
पंचजन्य चूमन हुमसि होंठ वक्र लाग्यौ,
चक्र लाग्यौ घूमन उमगि अँगुरीनि पै ॥५॥

औचक चकित सब जादव-सभा के नाथ,
बोलि उठे कौरव-गुमान अब छूटैगौ।
कहै रतनाकर बहुरि पग रोपि कह्यौ,
पांडव बिचारनि कौ दुख अब छूटैगौ ॥
अंबर कौ काल कौ हली कौ हरि हरहूँ कौ,
संतत अनंतता बिधान जब छूटैगौ।
छूटैगौ हमारौ नाम भक्त-भीर-हारी जब,
द्रुपद-सुता कौ चीर-छोर तब छूटैगौ ॥६॥

भरि दृग नीर ज्यौं अधीर द्रौपदी ह्वै दीन,
कीन्यौ ध्यान कान्ह की महान प्रभुता कौ है।
कहै रतनाकर त्यौं पट मैं समान्यौ आइ,
अकल असीम भाइ दीनबंधुता कौ है॥
भौचक समाज सब औचक पुकारि उठ्यौ,
गारि उठ्यौ गहब गुमान गरुता कौ है।
चौदहै अनंत जग जानत हुते पै यह,
पंद्रहौं अनंत चीर द्रुपद-सुता कौ है ॥७॥

बोलि उठे चकित सुरासुर जहाँ हीँ तहाँ,
हा हा यह चीर है कै धीर बसुधा कौ है।
कहै रतनाकर कै अंबर दिगंबर कौ,
कैधौँ परपंच कौ पसार बिधिना कौ है॥
कैधौँ सेसनाग की असेस कंचुली है यह,
कैधौँ ढंग गंग की अभंग महिमा कौ है।
कैधौँ द्रौपदी की करुना कौ बरुनालय है,
पारावार कैधौँ यह कान्ह की कृपा कौ है॥८॥

धरम-सपूत धरमध्वज रहे हैँ बनि,
पारथ सकल पुरुषारथ बिसारे हैँ।
कहै रतनाकर असीम बल भीम हारे,
सूके सहदेव भए नकुल नकारे हैँ॥
भीषम औ द्रोनहूँ निहारि मौन धारि रहे,
माष नाहिँ ताकौ ये तौ बिबस बिचारे हैँ।
सालत यहै कैं हाथ हालत न रावरौ हू,
मानौ आप नाहिँ दुख देखत हमारे हैँ॥९॥

अंबर लौं अंबर अनंत द्रौपदी कौ देखि,
सकल सभा की प्रतिभा यौँ भई दंग है।
कोऊ कहै अंध-भूप-मोह-अंध नासन कौँ,
चारु चंद्रिका की चली चादर अभंग है॥

कोऊ कहै कुरु-कुल-रूप-पाप-खंडन कौं,
उमड़ति अखिल अखंड-धार गंग है।
मेरैं जान दीन-दुख-दंद हरिबे कौं यह,
करुना - अपार - रतनाकर - तरंग है ॥१०॥

कैधौं पाँडु-पूतनि कौ कछुक पखंड यामैं,
कोऊ अभिहार कै सभा कौ ज्ञान लूट्यौ है।
कैधौं कछु वाही कलछल-रतनाकर कौ,
नटखट नाटक इहाँहूँ आनि जूट्यौ है॥
कहत दुसासन उसास न सँभारयौ जात,
साहस हमारौ जात सब बिधि छूट्यौ है।
लागि गए अंबर लौं अखिल अटंबर पै,
द्रुपद-सुता कौ अजौं अंबर न खूट्यौ है ॥११॥

---

(८) तुलसी-अष्टक

साधन की सिद्धि रिद्धि सगुन अराधन की,
सुभग समृद्धि-बृद्धि सुकृत-कमाई की।
कहै रतनाकर सुजस-कल-कामधेनु,
ललित लुनाई राम-रस-रुचिराई की॥
सब्दनि की बारी चित्रसारी भूरि भायनि की,
सरबस सार सारदा की निपुनाई की।
दास तुलसी की नीकी कबिता उदार चारु,
जीवन अधार औ सिँगार कबिताई की॥१॥

बिसद बिबेकी सुभ संत-हंस-बंसनि कौं,
महिमा महान मंजु मान सरवर की।
कहै रतनाकर रसिक कबि-भक्त-काज,
राम-सुधा-सीँचो साख देव-तरुवर की॥
भव-भय-भूत-भीति निखिल निवारन कौं,
जंत्र-मंत्र पाटी लिखी सिद्ध कर वर की।
दास तुलसी की कल कविता पुनीत लसै,
जग-हित-हेत नीकी नीति नरवर की॥२॥

हृदय कमठ दृढ़ धारि धर्म-ध्रुव-मंजुल-मंदर ।
अति अनंत बिस्वास-बासुकी-पास सविस्तर ॥
बहु बिधि तर्क-वितर्क-सुरासुर करि सहकारी ।
आगम-निगम-पुरान-सिंधु मथि सुधा निकारी ॥
सुभ छंद-प्रबंधनि बाँधि बँध अजर अमर तासौं भरयौ ।
इमि तुलसीदास ललाम यह राम-चरित-मानस करयौ ॥३॥

भाषा जगत प्रकास पूरि जड़ता-तम नास्यौ ।
उक्ति-जुक्ति-बहुरंग-बनज-बन बिमल बिकास्यौ ॥
रसिक मलिंदनि रंजि रुचिर रस पान करायौ ।
कपटी-क्रूर-उलूक-बृंद करि मूक चकायौ ॥
जिहिँ निगुन-सगुन-सुरूप-भ्रम-भाप-झाप-झाईँ झई ।
श्री तुलसिदास की अति अमल कल कविता सविता भई ॥४॥

बिमल बिसद बर रामचरित-मानस अन्हवायौ ।
अलंकार-ध्वनि-भेद सुभूषन बसन धरायौ ॥
भूरि भाव-सुभ-सुमन बासना-बिबिध-रूप धरि ।
सगुन-रूप-रस-रुचिर-रचित मोदक अर्पित करि ॥
बहु दिव्य-उक्ति-मनि-दीप सौँ उमगि उतारी आरती ।
इमि तुलसिदास भाषा-भवन चिर-थिर थापी भारती ॥५॥

हरिहर-चरित अनूप पूप मंजुल मन भाए ।
अपर प्रसंग-बिधान बिबिध पकवान पकाए ॥

साधु-माधुरी-गान पान रोचक सुखदाई ।
खल-दल-तीछन भाइ राय चटनी मिरचाई ॥
श्री तुलसिदास जस चारु चिर लह्यौ बिसद कविता अजिर ।
स्तुतिधार रसिकनि-हित रुचिर थापि भूरि भंडार थिर ॥६॥

कविता-सृष्टि उदार-चारु-रचना-बिरंचि बर ।
भक्ति-भाव-प्रतिपाल-बिस्नु मद-मोह-आदि-हर ॥
बोध-बिबुध-बिबुधेस सेस-ध्रुव-धर्म-धराधर ।
सब्द-सिंधु-बर-बरुन अर्थ-धन-धान्य-धनाकर ॥
भ्रम-बिटप-प्रभंजन कुमति-बन-अगिन तेज-रबि सुजस-ससि ।
गुनि तुलसिदास सब-देव-मय प्रनवत रतनाकर हुलसि ॥७॥

---

(८) बसंताष्टक

एकाएक आई कहूँ वेहर बसंतवारी,
संतवारी मंडली मसूसि त्रसिवै लगी।
कहै रतनाकर दृगनि ब्रज-बासिनि कैं,
रंगनि की बिसद बहार बसिबै लगी॥
मसकन लागे बर बागे अंग-अंगनि पै,
उरज उतंगनि पै चोली चसिवै लगी।
धुनि डफ-तालनि की आनि बसी प्राननि मैं
ध्याननि मैं धमकि धमार धसिबै लगी॥१॥

पथिक तुरंत जाइ कंतहिं जताइ दीजौ,
आइगौ बसंत उर अमित उछाह लै।
कहै रतनाकर न चटक गुलाबनि की,
कोप कै चढ़त तोप मैन बादसाह लै॥
कोकिल के कूकनि की तुरही रही है बाजि,
बिरहिनि भाजि कहौ कौन की पनाह लै।
सीतल समीर पै सवार सरदार गंध,
मंद मंद आवत मलिंद की सिपाह लै॥२॥

कोकिल की कूक सुनि हूक हिय माहिँ उठै,
लूक से पलास लखि अंग झरसान्यौ है।
करिहौं कहा धौं धीर धरिहौं कहाँ लौं बीर,
पीरद समीर त्यौं सरीर सरसान्यौ है॥
पल पल दूजैं पल आवन की आस जियौ,
ताहू पर पत्र आइ बिष बरसान्यौ है।
अवधि बदी है कल आवन की कंत अरु,
आज आइ ब्रज मैं बसंत दरसान्यौ है॥३॥

बारिधि बसंत बढ़्यौ चाव चढ़्यौ आवत है,
बिबस बियोगिनि करेजौ थामि थहरैं।
कहै रतनाकर त्यौं किंसुक-प्रसून जाल,
ज्वाल बड़वानल की हेरि हियैं हहरैं॥
तुम समुझावति कहा हौ समुझौ तौ यह,
धीरज-धरा पै अब कैसैं पग ठहरैं।
भौंर चहुँ ओर भ्रमैं एकौ पल नाहिँ थम्हैं,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं॥४॥

पौन चहुँ-आसी ब्रजबासी चहुँघाँ सौं चले,
बादर गुलाल कौ बिसाल दरसत है।
कहै रतनाकर मुकेस कौ बिलास तामैं,
चंचला कौ चपल प्रकास परसत है॥

डफ-मिरदंग-चंग-बाजन-सुगाजन सौं,
आनँद अथोर मन-मोर सरसत है।
मैन-मघवान मघा-फाव फागही मैं ठानि,
आनि ब्रज राग-अनुराग बरसत है ॥५॥

बिन मधुसूदन के मधु की अवाई भई,
कुटिल कला है मधुकैटभ कुचाल की।
कहै रतनाकर जुन्हाई चंद्रहास भई,
त्रिविध बयारि फुफुकारि फनि-जाल की ॥
आनन कौ रंग उड़ै उड़त अबीर संग,
रंग-धार होति अंग झार ज्वाल-माल की।
किरच मुकेस की करद ह्वै करेजैं लगै,
दरद-दरेरे देति गरद गुलाल की ॥६॥

थोरी थोरी बैस की अहीरनि की छोरी संग,
भोरी भोरी बातनि उचारति गुमान की।
कहै रतनाकर बजावति मृदंग चंग,
अंगनि उमंग भरी जोबन उठान की ॥
घाघरे की घूमनि समेटि कै कछोटी किए,
कटि-तट फेंटि कोछी कलित पिधान की।
झोरी भरे रोरी घोरि केसरि कमोरी भरे,
होरी चली खेलन किसोरी बृषभान की ॥७॥

आयौ जुरि उततैं समूह हुरिहारनि कौ,
खेलन कौं होरी बृषभान की किसोरी सौं।
कहै रतनाकर त्यौं इत ब्रजनारी सबै,
सुनि सुनि गारी गुनि ठठकि ठगोरी सौं ॥
आँचर की ओट ओटि चोट पिचकारिनि की,
धाइ धँसी धूँधर मचाइ मंजु रोरी सौं।
ग्वाल-बाल भागे उत भभरि उताल इत,
आपै लाल गहरि गहाइ गयौ गोरी सौं ॥८॥

---

(१०) ग्रीष्माष्टक

छायौ रितु ग्रीषम कौ भीषम प्रचंड दाप,
जाकी छाप सब छिति-मंडल सही लगी।
कहै रतनाकर बयारि बारि सीरे कहूँ,
पैयै नैंकु एक रहै अहक यही लगी॥
करवट लै लै बरवट ही बिताई राति,
पलक लगाए हूँ न पलक रही लगी।
अबहीं सिरान्यौ ना सँताप कलही कौ फेरि,
ताप सौं तपाकर के तपन मही लगी॥१॥

आवा सौ अकास औनि तावा सी तपति तीखी,
दावा सौं दुगुनि झारझरस झलाका मैं।
कहै रतनाकर गई है रहि रंचक हूँ,
झपट न बाज मैं न झझक बलाका मैं॥
हेरत फिरत बारि बृच्छ कहलाने सबै,
होति अठकौसल कुरंगी औ अलाका मैं।
मंजुल मलाका हू न हिय सियरावैं नैंकु,
तपित सलाका भईं जेठ की जलाका मैं॥२॥

ग्रीषम कौ भीषम प्रताप जग जाग्यौ भए,
सीत के प्रभाव भाव भावना भुलानी के।
कहै रतनाकर त्यौं जीवन भयौ है जल,
जाके बिना मानस सुखात सब प्रानी के ॥
नारी नर सकल बिकल बिललात फिरैं,
भूले नेम प्रेमहूँ की कलित कहानी के।
ताहूँ सौं न काहू कौ हियौ है सरसात रंच,
पंच-सरहूँ के भए सर बिन पानी के ॥३॥

सीरी सी लगति बिरहागिनि बियोगिनि कौं,
जोगिनि कौं होत पंच-तापहू सुहायौ है।
कहै रतनाकर तपाकर ससी कौं जानि,
रैनहूँ चकोरी कैं न चैन चित आयौ है ॥
सोखे लेत बारि सबै भानुहूँ पिपासित ह्वै,
त्रासित ह्वै हिमगिरि-गैल धरि धायौ है।
प्रबल प्रचंड भूरि भीषम अखंड-दाप,
ग्रीषम के ताप कौं प्रताप जग छायौ है ॥४॥

नीर-भरी-नहर-लहर जो चहूँघाँ हुती,
ताहि ताइ तुरत सुखाइ कियौ माटी है।
कहै रतनाकर हिमोपल की रेलारेल,
हेलि हठि पैठति निरंकुस निराटी है ॥

ग्रीषम की भीषम अनीकनी दपेटे लेति,
फोरि गढ़ गहव उसीरनि की टाटी है।
आबवारे-फबत-फुहारे-बान-धारहूँ सौं,
ब्यजन-कुठारहूँ सौं कटति न काटी है ॥५॥

फटिक-सिलानि-रचे राजत अनूप हौज,
मौज सौं फुहारे फबैं आठहूँ पहल मैं।
कहै रतनाकर बिछाइ तिन पास सेज,
सुखद अँगेजि कै सुगंध की चहल मैं ॥
छात छिति छिरकीं कपूर चोवा चंदन सौं,
सीत छिपी आनि जहाँ ग्रीषम दहल मैं।
अंग अंग अमित उमंग की तरंग भरे,
दोऊ सुख लहत उसीर के महल मैं ॥६॥

टटकी उसीरनि की टाटी चहुँ ओर लगीं,
सराबोर सुखद सुगंध बहतोल मैं।
कहै रतनाकर त्यौं फहरैं गुलाब-वारे,
फबत फुहारे मनि-हौजनि अमोल मैं ॥
घसि घनसार चारु चंदन कौ पंक तासौं,
घेरि राखिबे कौं सीत समर-कलोल मैं।
प्यारौ रचै प्यारी के उरोज माहिं मक्र-ब्यूह,
चक्र-ब्यूह प्यारी रचै प्यारे के कपोल मैं ॥७॥

ग्वाल बाल गहकि गुपाल के जुरे हैं इत,

उत ब्रज-बाल राधिका की चलि आवैं हैं।

कहै रतनाकर करत जल-केलि सबै,

तन मन जीवन की तपनि सिरावै हैं॥

कर पिचकीनि हचकीनि सौं हथेरिनि की,

छींटैं चहुँ कोद छाइ मोद उपजावैं हैं।

मंजु मुख मोरि मुलकावतिँ दृगंचल कौं,

अंचल कैं ओट चोट चंचल चलावैं हैं॥८॥

---

(११) वर्षाष्टक

पावस के प्रथम पयोद की परत बूँदैं,
औरै ओप उमड़ि अकास छिति छ्वै रहीँ ।
रंग भयौ बूढ़नि अनूढ़नि अनंग भयौ,
अंग उठि आनँद तरंग दुख ध्वै रहीँ ॥
सूहे साजि सुघर दुकूल सुख-फूलि-फूलि,
चौहरी अटा पै चढ़ी चंद-मुखी ज्वै रहीँ ।
धूम सुखमा की झूम-झूम अलि-पुंजनि की,
अंबनि की डार तैँ कदंबनि पै ह्वै रहीँ ॥१॥

अमित अकार औ प्रकार के पयोद-पुंज,
छहरैँ छबीले छिति छोरनि छए छए।
कहै रतनाकर अनूप रूप-रंगनि के,
बदलत ढंग दृग देखत दए दए ॥
बिबिध बिनोद बारि-बूँदनि के ठानैँ कहूँ,
पावक-प्रमोद कहूँ चपला चए चए।
निज मन-मोहन के मानौ मन मोहन कौं,
मदन खिलारी खेल खेलत नए नए ॥२॥

छाई सुभ सुखमा सुहाई रितु पावस की,
पूरब मैं पच्छिम मैं उत्तर उदीची मैं ।
कहै रतनाकर कदंब पुलके हैं बन,
लरजैं लवंगलता ललित बगीची मैं ॥
अवनि अकास मैं अपूरब मची है धूम,
भूमि से रहे हैं रुचि सुरस उलीची मैं ।
हिरकि रही है इत मोर सौं मयूरी उत,
थिरकि रही है बिज्जु बादर दरीची मैं ॥३॥

घेरि लीनी आनि जानि अबला अकेली मानि,
मरक अनंग की उमंग सरसत हैं ।
कहै रतनाकर पपीहा कड़खैत लिए,
पी कहाँ कहाय चढ़ि चाय अरसत हैं ॥
कंसहू के राज भए ऐसे ना कुकाज हाय,
जैसे आज ऊधौ दुख-साज दरसत हैं ।
बादर से बीर ब्योम बायु के बिमान बैठि,
बूँदनि के बान बनिता पै बरसत हैं ॥४॥

झूमि झूमि झुकत उमंडि नभ-मंडल मैं,
घूमि घूमि चहुँघा घुमंडि घटा घहरैं ।
कहै रतनाकर त्यौं दामिनि दमंकैं दुरैं,
दिसि बिदिसानि दौरि दिब्य छटा छहरैं ॥

सार सुख संपति के दंपति दुहूँ के दुहूँ,
अंग अंग जिनके उमंग भरे थहरैं।
फूलनि के भूलन पै सहित अनंद लेत,
सीतल सुगंध मंद मारुत की लहरैं ॥५॥

भूलत हिँडोरैं दुहूँ बोरे रस रंग जिन्हैं,
जोहत अनंग-रति-सोभा कटि कटि जाति।
मंजु मचकी सौं उचकत कुच-कोरनि पै,
ललकि लुभाइ रसिया की डीठि डटि जाति॥
देखत बनै ही कछु कहत बनै न नैंकु,
बाल अलबेली जब लाज सौं सिमटि जाति।
हटि जात घूँघट लटकि लाँबी लट जाति,
फटि जाति कंचुकी लचकि लोनी कटि जाति ॥६॥

चहुँ दिसि छाई हरियाई सुखदाई जहाँ,
सोहति सुहाई तापै फबनि फुहीनि की।
कहै रतनाकर ब्रजंगना उमंग-भरीँ,
भूलतिँ हिँडोरैं भोरैं सुखमा सुरीनि की॥
भाषै चित-चाव कौन भौन-सुख-भोगिनि कौ,
डहकि डगाए देति मनसा मुनीनि की।
ऊरुनि की हचक सु उचक उरोजनि की,
लंक की लचक औ मचक मचकीनि की ॥७॥

हरी हरी भूमि मैं हरित तरु झूमि रहे,
हरी हरी बल्ली बनीं बिबिध बिधान की ।
कहै रतनाकर त्यौं हरित हिंडोरा पर्यौ,
तापै परी आभा हरी हरित बितान की ॥
ह्वै है हिय हरित हरैं ही चलि हेरौ हरि,
तीज हरियाली की प्रभाली सुभ सान की ।
एती हरियाली मैं निराली छबि छाइ रही,
बसन गुलाली सजे लाली बृषभान की ॥८॥

---

(१२) शरदष्टक

विकसन लागे कल कुमुद-कलाप मंजु,
मधुर अलाप अलि अवलि उचारैं हैं।
कहै रतनाकर दिगंगना-समाज स्वच्छ,
कास-मिसि हास के बिलासनि पसारैं हैं॥
क्वार-चाँदनी मैं रौन-रेती की बहार हेरि,
याही निरधार ही हुलास भरि धारैं है।
जीति दल बादल के परब पुनीत पाइ,
कूल कालिंदी के चंद रजत बगारैं हैं॥१॥

पौन अति सीतल न तपत सुगंध-सने,
मंद मंद बहत अनंद-देन-हारे हैं।
कहै रतनाकर सुकुसुमित कुंजनि मैं,
बैठि उठि भ्रमत मलिंद मतवारे हैं॥
छिटकति सरद-निसा की चाँदनी सौं चारु,
दीपति के पुंज परैं उचटि उछारे हैं।
स्वच्छ सुखमा के परि पूरित प्रभा के मनौ,
सुंदर सुधा के फूटि फबत फुहारे हैं॥२॥

गावैं गीत सरस बजावैं मिलि ताल सबै,
छैलनि की छाती काम-तापनि तचावैं हैं।
घूमि घूमि चारौं ओर कटि-तट दूमि दूमि,
झुकि झुकि झूमि झूमि झूमर मचावैं हैं ॥५॥

बिसद बहार क्वार-राका कौ निहारि कूल,
भूलि गति जमुना-प्रवाह जकि ज्वै रह्यौ।
कहै रतनाकर त्यौं प्रकृति समाजनि की,
सुखमा अमंद सौं अनंद-रस च्वै रह्यौ॥
चंद-बदनीनि-संग रास ब्रज-चंद रच्यौ,
छवि के प्रकास सौं अकास लगि छ्वै रह्यौ।
चेत चलिबे की षट मास लौं न आई इमि,
एते चंद चाहि चंद चकपक ह्वै रह्यौ ॥६॥

पद थरकाइ फरकाइ भुजमूल भरी,
मंद मुसकानि भौंह तानि तमकति हैं।
लंक लचकाइ चल अंचल उचाइ लोल,
कुंडल कपोलनि झुमाइ झमकति हैं॥
स्वेद-सनी-बदन मदन-सुख-देनी बर,
बेनी बाँधि किंकिनी सहौंस हमकति हैं।
करतिं अलाप स्याम-संग ब्रज-बाम मंजु,
मेघ-मेखला मैं चंचला सी चमकति हैं ॥७॥

नचत लचाइ लंक लोचन चलाइ बंक,
करत प्रकास रासि ब्रज-जुवतीनि की।
आनँद-अमंद-चंद उमँग बढ़ावै मनौ,
रस - रतनाकर - तरंग - अवलीनि की॥
काकौ मन मोहत न जोहत जुन्हाई माहिँ,
लहर कन्हाई की मुकट-पँखुरीनि की।
छबि की छटक पीत-पट की चटक चारु,
लटक त्रिभंग की मटक भृकुटीनि की॥८॥

---

(१३) हेमंताष्टक

बिकसन लागे मुचुकुंद लवली औ लोध,
कछु परसौँ तैँ सरसौँ हूँ दलिनी भई।
कहै रतनाकर मनोज-ओज पोषन कौँ,
बन उपबन मैँ प्रफुल्ल फलिनी भई॥
औरै और कलिनि खिलावत समीर हेरि,
माष मन मानि कै मलिन नलिनी भई।
हेँवँत मैँ काम की अपूरब कला सौँ चकि,
कोकिल भुलाने कूक मूक अलिनी भई॥१॥

पौन पान पानी भए सीतल सुहाए स्वच्छ,
असन-सवाद भयौ सबही मिठाई सौ।
कहै रतनाकर बिचित्र चित्र-सारी माहिँ,
उठत सुगंध-धूम मौज मन-भाई सौ॥
बिबिध बिलासनि के हरष-हुलासनि सौँ,
सुखद बसंत होत सुकृत-कमाई सौ।
बाम अभिराम सी सुहाई घाम देह लगै,
लागत सनेह नए नेह की निकाई सौ॥२॥

धारि कै हिमंत के सजीले स्वच्छ अंबर कौं,
आपने प्रभाव कौ अडंबर बढ़ाए लेति।
कहै रतनाकर दिवाकर-उपासी जानि,
पाला कंज-पुंजनि पै पारि मुरझाए लेति॥
दिन के प्रताप औ प्रभा की प्रखराई पर,
निज सियराई-सँवराई-छवि छाए लेति।
तेज-हत-पति-मरजाद-सम ताकौ मान,
चाव-चढ़ी कामिनी लौं जामिनी दबाए लेति॥३॥

अंतपुर पैठि भानु आतुर कढ़ै न बेगि,
चिर निसि-अंक मैं निसापति डरे रहैं।
कहै रतनाकर हिमंत कौ प्रभाव ही सौं,
संत-मनहूँ मैं भाव और ही भरे रहैं॥
नर पसु पच्छी सुर असुर समाज आज,
काम अरचा मैं निसि-बासर परे रहैं।
ह्वै कै कुसुमायुध के आयुध उबारू अब,
सब धरिनी ही मैं धरोहर धरे रहैं॥४॥

भानुहूँ की लागी प्रीति अगिनि दिगंगना सौं,
सीत-भीति जागी इमि सकल समंत कौं।
कहै रतनाकर रहत न अकेले बनै,
मेले बनै रूसिहूँ तिया सौं दोपवंत कौं॥

हिम की हवा सौँ हलि अचल समाधि त्यागि,
लपटनि-लालसा-लसित लखि कंत कौँ ।
पाट की पिछौरी बाहु दाहिनैँ पखौरी किए,
गौरी लगी हुलसि असीसन हिमंत कौँ ।।५।।

हेरत हिमंत के अनंत प्रभुता कौ दाप,
भानु के प्रताप की प्रभाहूँ गरिबै लगी ।
कहै रतनाकर सुधाकर किरन फेरि,
काम के जिवावन कौ जोग करिबै लगी ।।
बदलन बाने सब निज मनमाने लगे,
चारौं ओर और ही बयार भरिबै लगी ।
जोगिनि के होस पै भरोस पै बियोगिनि के,
रोस पै सँजोगिनि के ओस परिबै लगी ।।६।।

बिचलत मान जानि हेँवत अवाई माहिँ,
ढीली परि सकल हठीली सकुचाई हैँ ।
कहै रतनाकर सुलाज राखिबै कैँ काज,
ताके रोकिबे की बृथा बिधि बहु ठाई हैँ ।।
डारि राखे परदे चहूँघाँ मंजु मंदिर मैँ,
अगर सुगंध तैँ दसौँ दिसि रुँधाई हैँ ।
चोली कसमीरी कसी कंपित करेजनि पै,
सेजनि पै साजि धरी दुहरी दुलाई हैँ ।।७।।

गावैं गीत अंगना प्रबीन कर बीन लिए,
आनँद-उमंग-भरी रंग के भवन मैं ।
कहै रतनाकर जवानी की उमंग होइँ,
तंग होइँ बसन सजीले तने तन मैं ॥
सुखद पलँग होइँ दुहरी दुलाई लगी,
आनँद अभंग तब होइ अगहन मैं ।
नूपुर कैं संग संग बाजत मृदंग होइँ,
रंग होइ नैननि तरंग होइ मन मैं ॥८॥

---

(१४) शिशिराष्टक

फूली अवली हैं लोध लवली लवंगनि की,
धवली भई है स्वच्छ सोभा गिरि-सानु की।
कहै रतनाकर त्यौं मरुवक फूलनि पै,
झूलनि सुहाई लगै हिम-परमानु की॥
साँझ-तरनी औ भोर-तारा सी दिखाई देति,
सिसिर कुही मैं दबी दीपति कृसानु की।
सीत-भीत हिय मैं न भेद यह भान होत,
भानु की प्रभा है कै प्रभा है सीतभानु की॥१॥

धाइ धाइ सिंधुर मदंध फूले लोधनि सौं,
गंध-लुब्ध ह्वै कै कंध रगरत गात हैं।
कहै रतनाकर प्रभात अरुनाई माहिँ,
बाघनि के लेखा लरत लुरियात हैं॥
उठि उठि धूम बनबासिनि के बासनि तैं,
त्रासनि तैं सीत के तहाईं मँडरात हैं।
पंछीगन सीस काढ़ि बिटप-बसेरनि तैं,
उमहि कछूक मौन गहि रहि जात हैं॥२॥

सिसिर खिलारी भयौ मिसिर मदारी महा,
करतब आपनौ अनूपम उघारै है।
कहै रतनाकर अखिल हरियारी पर,
कलित कपूर-धूर बिसद बगारै है॥
पावक पै फूँकि कै प्रभाव निज पानी करै,
पानी कौं परसि पल उपल सुधारै है।
प्रबल-प्रचार सीतकार की करामत सौं,
भानु कौं पलटि सीत-भानु करि डारै है॥३॥

छायौ इमि सिसिर-अतंक महि-मंडल मैं,
अंक माहिँ संकित न बाल ठुनकत है।
कहै रतनाकर न बिकसत बोल नैकुँ,
कोकिल न कूजत न भौंर गुनकत है॥
इमि हिम-गाला बरसत चहुँ ओरनि तैं,
ताकौ कहि आवत कसाला-गुन कत है।
सीत-भीत अतुल तुलाई करिबे कौं मनौ,
धुनक बिधाता तूल-धाप धुनकत है॥४॥

ह्वै कै भय-भीत सीत प्रबल प्रभावनि सौं,
पाला माहिँ मेदिनी सुगात निज ग्वै रही।
कहै रतनाकर तपाकर कौं चंद जानि,
मानि सुख चकई-बियोग-ताप ग्वै रही॥

जोगी भयौ चाहत सँजोगी भोगी जोगी भयौ,
मति जुवती मैं पंच-पावक मैं ग्वै रही ।
पैठे जात सिमिट भवानी के पटंबर मैं,
अंबर की चाह यौं दिगंबर कौं ह्वै रही ॥५॥

मृगमद - केसर - अगर - धूप - धूम काँपि,
सीत-भीत काँपनि की रीतिहिँ बुझावैँ हैँ ।
कहै रतनाकर त्यौं परदे दरीचिनि के,
हिलि हिलि हिलन अजोगता सुझावैँ हैँ ॥
संग-सुख-संपति न दंपति बिहाइ सकैँ,
प्रीति सौं परस्पर यौं भाषि अरुझावैँ हैँ ।
सिसिर-निसा मैं निसरन कौ न बाह कहूँ,
गिलिम गलीचा पाइ गहि समुझावैँ हैँ ॥६॥

मृग-मद केसर - अगर - धूम जालनि कौ,
सुखद दुसालनि कौ जदपि सहारौ है ।
कहै रतनाकर पै आनत बिचार आन,
काँपि जात गात सब हहरि हमारौ है ॥
तन की कहा है अब आनि मनहूँ पै पर्यौ,
ऐसौ कछु सिसिर-प्रभाव कौ पसारौ है ।
प्रानहूँ तैं प्यारौ मान लागत सखी पै आज,
मानहूँ तैं प्यारौ लगै पीतपटवारौ है ॥७॥

मंजुल मकंदनि के कोंपल सचोप लखैं,
लागे गान गुनन मलिंद छिन द्वैक तैं।
कहै रतनाकर गुलाबनि मैं बौंड़ी लगीं,
औंड़ी ओप औरही अनूप इन द्वैक तैं॥
केसरि-कुरंगसार-लेप न सुहात अंग,
कन घनसार के मिलावै किन द्वैक तैं।
दाबी रहै हौंसनि की हुमस न ही मैं अब,
फाबी फाब सीत पै गुलाबी दिन द्वैक तैं॥८॥

---

(१५) प्रभाताष्टक

ऊषा कौ प्रकास लाग्यौ लैाकन अकास माहिँ,
सुमन बिकास कैँ हुलास भरिबे लगे।
कहै रतनाकर त्यौँ बिटप निवासनि मैँ,
द्विजगन चेति कसमस करिबे लगे॥
मुनिजन लागे लेन चुभकी गगन गंग,
गौन पौन-पथिक हिये मैँ धरिबे लगे।
तमचुर-बंदी धरे अरुन-सुबाने सीस,
ताकौ राज-रोर चहुँ ओर भरिबे लगे॥१॥

साजे सीस बानौ तमचुर ज्यौँ प्रभाकर कौ,
प्रगट पुकारि तासु आगम जनायौ है।
कहै रतनाकर गुलाब चटकारी देत,
दिसि बिदिसानि त्यौँ सुगंध सरसायौ है॥
आयौ अगवानी कौँ समीर धीर दक्खिन कौ,
चहकि बिहंग मंगलीक गान गायौ है।
ज्यौँ ज्यौँ ब्योम बढ़त प्रकास-पुंज पूरब सौँ,
त्यौँ त्यौँ तम-तोम जात पच्छिम परायौ है॥२॥

द्विज-गन लाग्यौ मंत्र पढ़न सजीवन औ,
सुमन-समूह दै सचोप चुटकी उठ्यौ।
कहै रतनाकर रुचिर रस रंग पाइ,
उपबन जंगल ह्वै मंगल मई उठ्यौ॥
आनद प्रभात-परमानँद अमंद पाइ,
मंद मलयानिल यौं बरसि अमी उठ्यौ।
आछे अंगधारिनि कौ चरचा-प्रसंग कहा,
नवल उमंग सौं अनंग पुनि जी उठ्यौ॥३॥

पेखन कौं प्रात-प्रभा उपबन बृंदनि की,
नंदन की सोभा सब सिमिटि इतै रही।
कहै रतनाकर त्यौं प्रकृति निछावर कौं,
ओस मुकताली बगराइ अमितै रही॥
मंद मलयानिल कौ परस-प्रमोद पाइ,
बलित बिनोद बल्ली बिटप हितै रही।
बिबस बिसारि चकवा सौं मिलिबे कौ चाव,
चकई चहूँघाँ चित चकित चितै रही॥४॥

प्यारे प्रात आवन की बिसद बधाई देत,
डोलैं मंद मारुत सुगंध सुचि धारे हैं।
कहै रतनाकर सु आहट-प्रमोद पाइ,
गाइ उठे बिपुल बिहंग चहकारे हैं॥

फूलनि पै मंजु महि-हरित-दुकूलनि पै,
ओस-कन झूलैं झलमल-दुतिवारे हैं।
स्वच्छ सुखमा के मनौ छूटत फुहारे ताके,
बिंदु छटकारे चहुँ-ओरनि बगारे हैं ॥५॥

जाके अरुनच्छद उमंग कौ प्रसंग पाइ,
सुखद सुगंध पौन मंद मंद थरके।
कहै रतनाकर सुमन-गन फूलि उठे,
दिग-बनितानि पै अनूप रूप छरके ॥
करत जुहार चारु चहकि उचाइ ग्रीव,
चाय-भरे चपल बिहंग फिरैं फरके।
आयौ देत दिवस बधायौ बर हेम-हंस,
मोती मंजु चुनत सु जोती-पुसकर के ॥६॥

चंचरीक चाय-भरे चाँचरि मचाई चारु,
पच्छिनि धमार राग रुचिर उचारयौ है।
कहै रतनाकर सुमन-गन फूलि फूलि,
परिमल-पुंज लै अबीर मंजु पारयौ है ॥
सुखमा बिलोकि बल्ली बिटप बिनोद-भरे,
झूमि झूमि आनँद-हुलास-आँसु ढारयौ है।
मेलत गुलाल-रंग दिग-बनितानि अंग,
राग भरयौ भानु फाग खेलत पधारयौ है ॥७॥

लागे गान करन बिहंगम-समाज सबै,
रंग-भूमि रूरौ सुखमा कौ साज भ्वै गयौ।
कहै रतनाकर सचेत ह्वै सुमंच बैठि,
कौतुक निहारि मंजु मोद मन म्वै गयौ॥
देखत हीं देखत दिगंगना सु अंग पै,
बाजीगर-भानु कौ कला कौ कर छ्वै गयौ।
नीलम तैं मानिक पदुमराग मानिक तैं,
तातैं मुकता ह्वै पुनि हीरा-हार ह्वै गयौ॥८॥

---

(१६) संध्याष्टक

बालपन बिसद बिताइ उदयाचल पै,
संबलित कलित कलानि ह्वै उमाहै है।
कहै रतनाकर बहुरि तम-तोम जीति,
उच्च-पद आसन लै सासन उछाहै है॥
पुनि पद सोऊ त्यागि तीसरे बिभाग माहिँ,
न्यून-तेज ह्वै कै सून पास मैं निबाहै है।
जानि पन चौथौ अब भेष कै भगौँहौँ भानु,
अस्ताचल थान मैं पयान कियौ चाहै है॥१॥

छाई छबि स्यामल सुहाई रजनी-मुख की,
रंच पियराई रही ऊपर मुरेरे के।
कहै रतनाकर उमगि तरु-छाया चली,
बढ़ि अगवानी हेत आवत अँधेरे के॥
घर घर साजैं सेज अंगना सिँगारि अंग,
लौटत उमंग भरे बिछुरे सबेरे के।
जोगी जती जंगम जहाँ हीं तहाँ डेरे देत,
फेरे देत फुदकि बिहंगम बसेरे के॥२॥

सैल तैं पसरि कर-निकर सुधाकर के,
आनि जल-तल पै लखात लहकत हैं।
कहै रतनाकर प्रभाकर प्रभा के दाम,
छोरि छिति कछुक अकास ठहकत हैं॥
राते अरबिंद कैं पराग मकरंद जात,
कैरव पै मंजुल मलिंद महकत हैं।
अहकत आह कै बराक चक्रवाक दाहि,
चाहि चहुँ ओर सौं चकोर चहकत हैं॥३॥

जानि नभनाथ कौ पयान सैन-मंदिर कौं,
मंगलीक गान मैं दुजाली भूरि भूली है।
कहै रतनाकर बिनोद चहुँ कोद बढ़्यौ,
कामिनी तरुनि पै प्रमोद-प्रभा भूली है॥
मोती-माल वारतीं दिगंगना उमंग भरीं,
तारा ह्वै अकास-अंगना सो परै रुली है।
प्राची मुख सेत उत खेत चाँदनी है कियौ,
तूली साजि अंबर प्रतीची इत फूली है॥४॥

आजु अति अमल अनूप सुख-रूप रची,
सरद - निसामुख की सुखमा सुहाति है।
कहै रतनाकर निसाकर दिवाकर की,
एकै दुति दोऊ दिसि माहिं दरसाति है॥

कुमुद सरोज अध मुकुलित देखि परैं,
चाय-बोरी चहकि चकोरी चकराति है।
चलि चलि चकई चपल दुहुँ ओर चाहि,
चकित कराहि औ उमाहि रहि जाति है ॥५॥

तुंग कुच-स्ट्ंग-सैल-सिखर सराहैं अजौं
मान जुवती तन मैं थान परषत है।
जानि यह उदित निसापति मनोज-बंधु,
धिक निज धाक मन मानि मरषत है ॥
लाल ह्वै बिसाल कर प्रखर पसारि बेगि,
जासौं जोम-धारिनि कौ धीर धरषत है।
मुकुलित कुमुद - मियान तैं अतंक - जुत,
बंक भ्रमरावली - कृपान करषत है ॥६॥

राग की बगीची जो सँजोगिनि प्रतीची गनै,
स्रोनित-उलीची सो बियोगिनि बतावै है।
कहै रतनाकर चकोरनि अनंद देत,
सोई चंद कोकनि कैं ओक सोक छावै है ॥
मनि-गन लागत तुम्हैं तो उड़गन आली,
फनि मनि-माली लौं हमैं सो डरपावै है।
खेलौ हँसौ जाइ जाहि भावत सलोनी साँझ,
ह्याँ तो जरे माँझ सो लुनाई लोन लावै है ॥७॥

लागै रजनी-मुख की सुखमा सुहाई ताहि,
जाहि सुखरासि की न आस टरि गई होइ ।
कहै रतनाकर हिमाकर-मुखी कैं हाँस,
दिवस-कसाला-जगी ज्वाला हरि गई होइ ॥
पूछौ पर जाइ वा बियोगी के हिये सौं नैंकु,
जाकी थाकी पीडँरी भभरि भरि गई होइ ।
उठत न होइ पाय गाँय-सामुहैं लौं आइ,
धाइ मग माँझ हाय साँझ परि गई होइ ॥८॥

---

(१) श्री कृष्ण-दूतत्व

बोधन कैँ काज जदुराज दुरजोधन कौँ,
पाँचौ महाजोधनि के मत सुनि ठानी
कहै रतनाकर मिलाप के अलाप हेत,
आप चलिबे की चारु चाह चित आनी
एते माहिँ द्रौपदी दुखारी दुरी दीठि परी,
सारी संधि साधन की साध सिथिलानी
सानी कछु आँस मैँ उसास मैँ उड़ानी कछू,
छूटे केस-पास मैँ उसेस अरुझानी

बोधन मदंध अंध-पूत दुरजोधन कौं,
दीनबंधु आनि रथ-कंध ठहरत हैं।
कहै रतनाकर तरंगित उमंग-रंग,
स्याम-घन अंग छनदा लौं छहरत हैं॥
निस्वन-निनाद औ असंख संख-बाद मिले,
जान आदि घुमड़ी घटा लौं घहरत हैं।
थहरत चक्रपानि सारँग भुजा पै सज्यौ,
अच्छय धुजा पै पच्छिराज फहरत हैं॥२॥

दुख बनबास के अज्ञात बासहू के त्रास,
रावरे कहै पै कै बिसास सब झेले हैं।
कहै रतनाकर बुलाइ अब कीजै न्याइ,
दूरि करि जेते द्रोह मोह के झमेले हैं॥
दीजै बाँटि बखरे कछू तो बेगि पांडव के,
हस्य रन-तांडव के दारुन दुहेले हैं।
भीषम औ द्रोन सौं बिचार करि देखौ रंच,
द्रोही दुष्ट-पंचक तो पंच पर खेले हैं॥३॥

दीजै गाँव पाँच हीं हमारे कहैं पाँडव कौं,
खाँडव लौं ना तौ राज-साज दहि जाइँगे।
कहै रतनाकर निछत्र छिति ह्वै है सबै,
सूर बीर स्रोनित-नदी मैं बहि जाइँगे॥

सूझत नहीं है तुम्हैं अब तौ सुझाएँ रंच,
पाछैं पछिताएँ कहा लाहु लहि जाइँगे।
जैहैं वृथा आँखैं खुलि तब जब देखन कौं,
जग मैं तिहारे ना दुलारे रहि जाइँगे ॥४॥

भीषम औ द्रोन कृपाचार राखि साखी सुनौ,
भाषी ना हमारी यह टारी टरि जाइगी।
नाथ रतनाकर के कहत उठाए हाथ,
माथ पै अकीरति तिहारे धरि जाइगी ॥
है है दुरजोधन निधन सब जोधनि लै,
सारी औनि स्रोन-सरिता सौं भरि जाइगी।
ए हो कुरुराज जौ न मानि हौ हमारी आज,
तौ पै या समाज पर गाज परि जाइगी ॥५॥

मानी दुष्ट-पंचक न बात जब रंचक हूँ,
बंचक लौं और ही अठान बरु ठानी है।
कहै रतनाकर हुमसि हरि आनन पै,
आनि कछु औरै कोप-ओप उमगानी है॥
हेरि चक्र चहुँघाँ सरोस दृग फेरि चले,
अक्र है सबै ही रहे बक्रता बिलानी है।
सौहैं हाथ-पावनि उठावन की कौन कहै,
दीठि ना उठाई कोऊ ढीठ भट मानी है ॥६॥

त्रिकुटी तनैनी जुटी भृकुटी बिराजैं बक्र,
तोले संख चक्र कर डोले थरकत हैं ।
कहै रतनाकर त्यौं रोब की तरंग भरे,
रोधित-उमंग अंग-अंग फरकत हैं ॥
कर्न दुरजोधन दुसासन कौ मान कहा,
मान इनके तौ पाँसुरी मैं खरकत हैं ।
भीषम औ द्रोनहूँ सौं बनत न डारैं डीठि,
नीठिहूँ निहारे नैन-तारे तरकत हैं ॥७॥

पाँचजन्य गूँजत सुनान सब कान लग्यौ,
दसहूँ दिसानि चक्र चक्रित लखायौ है ।
कहै रतनाकर दिवारनि मैं, द्वारनि मैं,
काल सौ कराल कान्ह-रूप दरसायौ है ॥
मंत्र षडयंत्र के स्वतंत्र ह्वै पराने दूरि,
कौरव-सभा मैं कोऊ हौंठ ना हलायौ है ।
संक सौं सिमिटि चित्र-अंक से भए हैं सबै,
बंक अरि-उर पै अतंक इमि छायौ है ॥८॥

---

(२) भीष्म-प्रतिज्ञा

भीषम भयानक पुकार्‌यौ रन-भूमि आनि,
छाई छिति छत्रिनि की गीति उठि जाइगी।
कहै रतनाकर रुधिर सौं रुँधैगी धरा,
लोथनि पै लोथनि की भीति उठि जाइगी॥
जीति उठि जाइगी अजीत पंडु-पूतनि की,
भूप दुरजोधन को भीति उठि जाइगी।
कैतौ प्रीति-रीति की सुनीति उठि जाइगी कै,
आज हरि-प्रन की प्रतीति उठि जाइगी॥१॥

पारथ बिचारौ पुरुषारथ करैगौ कहा,
स्वारथ - समेत परमारथ नसैहौं मैं।
कहै रतनाकर प्रचार्‌यौ रन भीषम यौं,
आज दुरजोधन-दुख दूरि दैहौं मैं॥
पंचनि कैं देखत प्रपंच करि दूरि सबै,
पंचनि कौ स्वत्व पंचतत्त्व मैं मिलैहौं मैं।
हरि-प्रन-हारी-जस धारि कै धरा ह्वै सांत,
सांतनु कौ सुभट सपूत कहवैहौं मैं॥२॥

मुंड लागे कटन पटन काल-कुंड लागे,
रुंड लागे लोटन निमूल कदलीनि लौं ।
कहै रतनाकर वितुंड-रथ-बाजी-झुंड,
लुंड मुंड लोटैं परि उछरिति मीनि लौं ॥
हेरत हिराए से परस्पर सचिंत चूर,
पारथ औ सारथी अदूर दरसीनि लौं ।
लच्छ-लच्छ भीषम भयानक के बान चले,
सबल सपच्छ फुफुकारत फनीनि लौं ॥३॥

भीषम के बाननि की मार इमि माँची गात,
एकहूँ न घात सव्यसाची करि पावै है ।
कहै रतनाकर निहारि सो अधीर दसा,
त्रिभुवन-नाथ - नैन नीर भरि आवै है ॥
बढ़ि बढ़ि हाथ चक्र-ओर ठहि जात नीठि,
रहि रहि तापै बक्र दीठि पुनि धावै है ।
इत प्रन-पालन की कानि सकुचावै उत,
भक्त-भय-घालन की बानि उमगावै है ॥४॥

छूट्यौ अवसान मान सकल धनंजय कौ,
धाक रही धनु मैं न साक रही सर मैं ।
कहै रतनाकर निहारि करुनाकर कैं,
आई कुटिलाई कछु भौंहनि कगर मैं ॥

रोकि झर रंचक अरोक बर बाननि की,
भीषम यौँ भाष्यौ मुसकाइ मंद स्वर मैं ।
चाहत बिजै कौँ सारथी जौ कियौ सारथ,
तौ बक्र करौ भृकुटी न चक्र करौ कर मैं ॥५॥

बक्र भृकुटी कै चक्र ओर चष फेरत हीँ,
सक्र भए अक्र उर थामि थहरत हैं ।
कहै रतनाकर कलाकर अखंड मंडि,
चंडकर जानि प्रलय खंड ठहरत हैं ॥
कोल कच्छ कुंजर कहलि हलि काढ़ैं खीस,
फननि फनीस कैं फुलिंग फहरत हैं ।
मुद्रित तृतीय दृग रुद्र मुलकावैं मीड़ि,
उद्रित समुद्र अद्रि भद्र भहरत हैं ॥६॥

जाकी सत्यता मैं जग-सत्ता कौ समस्त सत्व,
ताके ताकि प्रन कौँ अतत्त्व अकुलाए हैं ।
कहै रतनाकर दिवाकर दिवस ही मैं,
झंप्यौ कंपि झूमत नछत्र नभ छाए हैं ॥
गंगानंद आनन पै आई मुसकानि मंद,
जाहि जोहि बृंदारक-बृंद सकुचाए हैं ।
पारथ की कानि ठानि भीषम महारथ की,
मानि जब बिरथ रथांग धरि धाए हैं ॥७॥

ज्यौंही भए बिरथ रथांग गहि हाथ नाथ,

निज प्रन-भंग की रही न चित चेत है।

कहै रतनाकर त्यौं संग हीं सखाहूँ कूदि,

आनि अरयौ सौंहैं हाहा करत सहेत है॥

कलित कृपा औ तृपा द्विमग समाहे पग,

पलक उठ्यौई रह्यौ पलक-समेत है।

धरन न देत आगैं अरुझि धनंजय औं,

पाछैं उभय भक्त-भाव परन न देत है॥८॥

---

(१) वीर अभिमन्यु

धरम-सपूत की रजाइ चित-चाही पाइ,
धायौ धारि हुलसि हथ्यार हरबर मैं ।
कहै रतनाकर सुभद्रा कौ लड़ैतौ लाल,
प्यारी उत्तराहू की रुक्यौ न सरबर मैं ॥
सारदूल-सावक बितुंड-झुंड मैं ज्यौं त्यौंहीं,
पैठ्यौ चक्रब्यूह की अनूह अरबर मैं ।
लाग्यौ हास करन हुलास पर बैरिनि के,
मुख मंद हास चंदहास करबर मैं ॥१॥

बीरनि के मान औ गुमान रनधीरनि के,
आन के बिधान भट-बृंद घमसानी के ।
कहै रतनाकर बिमोह अंध-भूपति के,
द्रोह के सँदोह सूत-पूत अभिमानी के ॥
द्रोन के प्रबोध दुरबोध दुरजोधन के,
आयु-औधि-दिवस जयद्रथ अठानी के ।
कौरव के दाप ताप पांडव के जात बहे,
पानी माहिँ पारथ-सपूत की कृपानी के ॥२॥

पारथ-सपूत की कृपान की अनोखी काट,
देखि ठाट बैरिनि के ठठकि ठरे रहे।
कहै रतनाकर सु सक्र असनी लौं पिल्यौ,
चक्र-ब्यूहहू के गुन गौरव गरे रहे॥
मानि निज वीरनि की भीर कौं न गन्य न्यून,
द्रोन आदि बादि भूरि भ्रम सौं भरे रहे।
खंडे रिपु-झुंडनि के मुंड जे अखंडित ते,
मंडित घरीक रुंड-ऊपर धरे रहे॥३॥

चक्रब्यूह अचल अभेद भेदि बिक्रम सौं,
आपुहीँ बनावै बाट आपनी सुढंगी है।
कहै रतनाकर रुकै न कहूँ रोकैं रंच,
झोंके झेलि पावत न कोऊ ज्वान जंगी है॥
बिमुख समूह जम-जूह के हवालैं होत,
सनमुख सूरनि बनावै सुर-संगी है।
पानी गंग-धार कौ कृपानी मैं धरयौ है मनौ,
जाहि करि अंगी होत अरि अरधंगी है॥४॥

बीर अभिमन्यु की लपालप कृपान बक्र,
सक्र-असनी लौं चक्रब्यूह माहिं चमकी।
कहै रतनाकर न ढालनि पै खालनि पै,
झिलिम झपालनि पै क्यौं हूँ कहूँ ठमकी॥

आई कंध पै तौ बाँटि बंध प्रतिबंध सबै,
काटि कटि-संधि लौं जनेवा ताकि तमकी ।
सीस पै परी तौ कुंड काटि मुंड काटि फेरि,
रुंड के दुखंड कै धरा पै आनि धमकी ॥५॥

गांडिव-धनी कौ लाल आइ ब्यूह-मांडव मैं,
ऐसौ रन-तांडव मचायौ कर-कस तैं ।
कहै रतनाकर गुमान अवसान मान,
करिगे पयान अरि-प्रान सरकस तैं ॥
काटे देत रोदा दंड चंड बरिबंडनि के,
छाँटे भुज-दंड देत बान करकस तैं ।
ऐंचन न पावैं धनु नैंकु धाक-धारी धीर,
खैंचन न पावैं बीर तीर तरकस तैं ॥६॥

केते रहे हेरत तरेरत दृगनि केते,
सुनि धुनि-धूम-धाम धनु के टकोरे की ।
कहै रतनाकर यौं घायनि की घाल भई,
झिलिम झपाल भई झिँगुली पटोरे की ॥
बिरचित ब्यूह के बिचलि चल जूह भए,
झेलत बनी न झोंक-झपट झकोरे की ।
इंद्र-सुत-नंदन की बान-बरषा सौं बेगि,
बीरनि की बारि ह्वै दिवारि गई सोरे की ॥७॥

धरि धरि मारि मारि करि करि धाए बीर,
सौंहैं आनि धीर रह्यौ भैया मैं न बाबू मैं।
कहै रतनाकर न बिचल्यौ चलाएँ रंच,
ऐसी अचलाई न लखाई परै आबू मैं॥
आवत हीं पास काटि डारत प्रयास बिना,
मानौ चंद्रहास रास करत अलाबू मैं।
पारथ के लाल पै न काहू की मजाल परी,
काबू मैं न आयौ आयौ जद्यपि चकाबू मैं॥८॥

एक उत्तरा कैं पति राखी पति पांडव की,
दीन्हें पति केतिनि जे पाइ उमगाति हैं।
कहै रतनाकर निहारि रन-कौतुक सो,
जूटी सुर असुर बधूटी ललचाति हैं॥
बड़े बड़े बमकत बीर रनधीरनि की,
कढ़ति मियान तैं कृपान थहराति हैं।
आगैं देखि घाय धाइ बरतिं घृताची आदि,
पाछैं पेखि पकरि पिसाची लिए जाति हैं॥९॥

———

(४) जयद्रथ-वध

पांडव कौ ताप औ प्रताप दुरजोधन कौ,
सूत-सुतहू कौ दाप सोधि सियराऊँ मैं ।
कहै रतनाकर प्रतिज्ञा यह पारथ की,
द्रोनहू महारथ की धाक धोइ धाऊँ मैं ॥
सिंधुराज जटिल जयद्रथ कौ जीवन लै,
आज अंधराज हिय आँखिनि खुलाऊँ मैं ।
कृष्ण-भगिनी के द्रौपदी के उत्तरा के हियैं,
सोक - बिकराल - ज्वाल जरति जुड़ाऊँ मैं ॥१॥

बरुन कुबेर सुरराज आदि साखी राखि,
आज गुरु द्रोनहूँ कौ गौरव गँवाऊँ मैं ।
कहै रतनाकर यौं रोस-रस-घूमि-झूमि,
पारथ प्रचारयौ भूमि-मंडल कँपाऊँ मैं ॥
जौपै मारतंड के रहत नभ-मंडल मैं,
रुंड सौं जयद्रथ कौ मुंड ना गिराऊँ मैं ।
तौपै जरयौ बीर अभिमन्यु तौ मरे पै पर,
इहिँ तन कायर कौं जियत जराऊँ मैं ॥२॥

बीर अभिमन्यु मन्यु मन मैं न हूज्यौ मानि,
जानि अब रन को बिधान किमि पैहौं मैं ।
पायौ पैठि संगहूँ न रंग-भूमि हूँ मैं जब,
जैहै तहाँ को तब जहाँ अब सिधैहौं मैं ॥
कालिह चंद्र-ब्यूह पैठिबे के पहिलैं हीं तुम्हैं,
हाल रन-भूमि कौ उताल पहुँचैहौं मैं ।
कै तौ तव बिजय जयद्रथ सुनै है जाय,
कै तौ लै पराजय - प्रलाप आप ऐहौं मैं ॥३॥

आयौ जुद्ध-भूमि मैं सनद्ध बर बीर क्रुद्ध,
रुद्ध-बुद्धि है है रहे बिरुद्ध दलवारे हैं ।
कहै रतनाकर प्रभाकर-कराकर से,
अबिरल धाए बिसिखाकर करारे हैं ॥
धीर भए ध्वस्त हस्त-लाघव बिलोकि सबै,
भागे जात अस्त-ब्यस्त बीरता बिसारे हैं ।
बान लेत मंडन उमंडत न पेखि परैं,
देखि परैं रुंड मुंड खंडित बगारे हैं ॥४॥

गांडिव के कांड यौं उमंडि रनमंडल मैं,
राँच्यौ रन-तांडव उदंड रिपु-झुंड मैं ।
कहै रतनाकर बिपच्छि बरिबंड लगे,
लुंडमुंड लोटन धरा मैं स्रोन-कुंड मैं ॥

खंडित ह्वै उचटि उमंडि चंड बाननि सौं,
औरनि के मुंड मिलैं औरनि के रुंड मैं ।
कुंडिनि के रुंड मैं बितुंडनि के सुंड लगैं,
कुंडिनि के मुंड त्यौं बितुंडनि के तुंड मैं ॥५॥

सद्रथ धनंजय के धावत जयद्रथ पै,
आठ-आठ प्रबल महद्रथ निवारैं हैं ।
कहै रतनाकर सुभट प्रन-प्रान रोपि,
कोपि कोपि मग पग पग पै जुझारैं हैं ॥
माच्यौ महा संगर अभंग रंग-भूमि माहिँ,
दंग ह्वै सुरासुर अपांग सौं निहारैं हैं ।
आठहूँ महारथ पै पारथ के चंद-बान,
चंद आठवैं लौं लागि मंद किए डारैं हैं ॥६॥

पारथ कियौ जो प्रन घोर ताहि तोरन कौं,
कोरि प्रान-पन सौं महारथ सकैहैं ना।
मींजि मींजि हाथ कहैं नाथ रतनाकर के,
भानुहूँ पयान माहिँ बिलँब लगैहैं ना ॥
सावधान चक्र आज काज अक्रता कौ नाहिँ,
जौपै सक्र-पूत प्रन पालत लखैहैं ना ।
आपनी प्रतिज्ञा की अवज्ञा करि लैहैं पर,
भक्त - भीर - भंजन की संज्ञा जानि दैहैं ना ॥७॥

ऐरे चक्र अक्र ह्वै रह्यौ है कहा बेगि धाइ,

जाइ तितै रंचहूँ बिलंब कहूँ लैयौ ना ।

कहै रतनाकर सँदेस ना निदेस यह,

कहियौ अतंक सौं ससंक सकुचैयौ ना ॥

जौलौं अरि-रक्त सौं धनंजय न पूरै मंग,

तौलौं नील अंबर दिगंगना सजैयौ ना ।

सिंधुराज-जीवन सौं जौलौं ना अघाइ जम,

तौलौं जम-जनक बिराम-ठाम जैयौ ना ॥८॥

गांडिव के मंडल मैं पांडु कौ सपूत क्रुद्ध,

बैरिनि कौं चंड मारतंड लौं चितै गयौ ।

कहै रतनाकर प्रखर किरनाकर से,

तीखे बिसिखाकर सौं अंग अंग तै गयौ ॥

लागी चकचौंध यौं मदंध अंध-पच्छिनि कौं,

अच्छिनि कैं आगैं अंधकार-धुंध छै गयौ ।

सूझि परयौ आपनौही दावँ ज्यौं जुवारिनि कौं,

बूझि परयौ देखत दिवाकर अथै गयौ ॥९॥

रोधन कै भानु दुरदिन दुरजोधन कैं,

जोधनि कौं कैधौं रैनि बोधन करायौ है ।

कहै रतनाकर द्विविध अंधराज कौ कै,

राजनि पै संगति प्रभाव दरसायौ है ॥

कैधौं सिंधुराज तपैं जीवन है धूमधार,
पटल अपार पारि तपन छपायौ है।
मेरी जान कान्ह भक्त-रंजन कृपा कैं पुंज,
नेम पैं धनंजय के छेम-छत्र छायौ है ॥१०॥

जानि-जानि भानु कौ पयान जुरे आनि सबै,
कढ़ि-कढ़ि जूह के अनूह अरबर सौं ।
कहै रतनाकर अभाग निज जारन कौं,
दारुन अरी की चिता-आगि की लबर सौं ॥
तौलौं द्वारिकेस से निमेस कौ निदेस पाइ,
सीस कटि बिकट बिजै के सरबर सौं ।
अंसुधर अंसु जौ लौं पहुँचैं धरा पै पुनि,
सीस उड़्यौ अधर जयद्रथ के धर सौं ॥११॥

टारयौ जौ कलंक- तम - तोम राजपूतनि कौ,
बीस बिसे जाइ सो दिलीस - दृग छायौ है ।
कहै रतनाकर हरयौ जो जाड़ भारत कौ,
सोई पैठि पारस कौ पंजर कँपायौ है ॥
प्रबल प्रताप कौ तपाकर-प्रताप-ताप,
जमन-कलाप-मुख-आप जो सुखायौ है ।
तुरकिनि-आँखिनि मैं भाप ह्वै छयौ सो स्रवै,
रुकत रुकायौ औ न चुकत चुकायौ है ॥३॥

साजि-साजि पागैं बागे पहिरि सुरंग चले,
आनन पै कुंकुम उमंग कल दीपै है ।
कहै रतनाकर बरन कौं सुकीरति कैं,
प्रबल-प्रभाव चारु चाव चढ़यौ जी पै है ॥
कढ़ी परै म्यान सौं कृपान बिनु लाऐं पानि,
ऐसी कछु ठान की उठान आतुरी पै है ।
ब्याह कौ उछाह बढ़यौ चाहि निज बीरनि कैं,
ठाट्यौ लै प्रताप ठाठ घाट हलदी पै है ॥४॥

कीनी मिहमानी मन मानि के अतिथि पर,
कानि रजपूती की न जान दई कर सौं ।
कहै रतनाकर न खायौ बैठि थारौ संग,
सारौ जानि साह कौ टिकायौ दूरि घर सौं ॥

मुगल पठान की न धौंस धमकी सौं डर्यौ,
दीन्हौ छाँड़ि कठिन कृपान छ्वाइ गर सौं ।
मानी मानसिंह को महान मान-हानी कर,
प्रबल प्रताप ठान ठानी अकबर सौं ॥५॥

रोजा औ नमाज हज्ज करि कै हजार हारे,
ऐसी प्रथा पाई पै न पावन प्रनाली की ।
कहै रतनाकर प्रताप कैं प्रताप तपैं,
जैसी होति स्वच्छता बिपच्छिनि कुचाली की ॥
बीररस-मातौ जब घूमै रंग- भू मैं आनि,
प्रगटति पद्धति पुनीत करवाली की ।
काली करै किलकि कलोल स्रोन-कुंड माहिँ,
म्लेच्छनि के मुंड माल होत मुंडमाली की ॥६॥

कुंत असि सायक के फल सौं अघाए इमि,
पायक औ नायक सिपाह सुलतानी के ।
कहै रतनाकर रही न उठिबे की सक्ति,
जित तित लोटैं परे लाड़िले पठानी के ॥
माँगत न पानी हूँ किए यौं तृप्त जीवन सौं,
ठाठि कै प्रताप नए ठाठ मेहमानी के ।
घाट-हलदी सौं जमपुर की बताइ बाट,
म्लेच्छनि उतार्यौ घाट कठिन कृपानी के ॥७॥

सेखनि की सेखी झारहीँ सौँ जरि छार भई,
सूखे घट जीवन पठाननि अठानी के।
कहै रतनाकर त्यौँ गलित गुमान भए,
साहसीक सैयद सिपाह सुलतानी के॥
जागी ज्वाल-कौंध सौं चकाइ चकचौंधि परे,
औंधि परे मुगल महान गोरकानी के।
प्रबल प्रताप कौ प्रताप ताप दानी देखि,
पानी गए उतरि मलेच्छनि कृपानी के॥८॥

सूर-कुल-सूर महा प्रबल प्रताप सूर,
चूर करिबे कौं म्लेच्छ क्रूर प्रन लीन्यौ है।
कहै रतनाकर बिपत्तिनि की रेलारेल,
झेलि झेलि मातभूमि-भक्ति-भाव भीन्यौ है॥
बंस कौ सुभाव अरु नाम कौ प्रभाव थापि,
दाप कै दिलीपति कौं ताप दीह दीन्यौ है।
घाट हलदी पै जुद्ध ठाटि अरि मेद पाटि,
सारथ बिराट मेदपाट नाम कीन्यौ है॥९॥

देस-ब्रत कठिन कठोर महा लोह-मयी,
राजपूत-टेक पै बिबेक सौँ बनाई है।
कहै रतनाकर दढ़ाई दाप-दीपति सौँ,
बिषम बिपत्ति-घन-घातनि गढ़ाई है॥

प्रबल प्रताप की सुढार तरवार-धार,
जमन-कुचक्र खर सान सौं धराई है।
धीर महिषी के उर-ताप मैं तपाई अरु,
बालक-अधीर-नैन-नीर मैं बुझाई है ॥१०॥

बद्दल से ब्यूह मुगलदल के जूह डाँटि,
काटि काटि ठाटनि उघाटि बाट लीन्ही है।
कहै रतनाकर यौं पैठत सबेग जात,
ताकी फहरातिं धुजा परति न चीन्ही है॥
केहरि लौं हेरत अहेर निज सौंहैं हेरि,
फेर चारु चेतक दरेर नैंकु दीन्ही है।
सुंडी के सुसुंड पै उभारि कै अगौंहैं पाइ,
मानौ मानसिंह पै प्रचारि वार कीन्ही है ॥११॥

———

(६) छत्रपति शिवाजी

हिंदू-बेष धारन मैं सूथन पँवारन मैं,
डाढ़ी के उजारन मैं दौरे लगे जात हैं ।
कहै रतनाकर चपल यौं चले हैं धाइ,
मानौं पाय धरत धरा पै दगे जात हैं ॥
मुख नवरंग कैं न रंग एक हूँ है रह्यौ,
छाँड़े संग आपने बिगाने सगे जात हैं ।
साहसी सिवा के बाँके हल्ला कौ धड़ल्ला देखि,
अल्ला अल्ला करत मुसल्ला भगे जात हैं ॥१॥

दच्छिन मैं जानि कै बिकट जमराज-राज,
सूबा लेन कौ सो मनसूबा ना ठहत हैं ।
कहै रतनाकर अमीर रनधीर किते,
त्यागि समसीर बाट हज्ज की गहत हैं ॥
कसि कसि बाँधैं फेँट भेँट करिबे कौं प्रान,
छाने तऊ सूथन ठिकाने ना रहत हैं ।
सरजा सिवाजी की सबेग तेग-बाजी चाहि,
गाजी गजनी के रनसाजी ना चहत हैं ॥२॥

ऐसौ कछु भभरे हिये मैं भय हूलि जात,
भूलि जात गाजिबौ दिल्ली के साह गाजी कौ।
कहै रतनाकर सुध्यात वहै आठौं जाम,
नाम सरजा कौ भयौ कलमा नमाजी कौ॥
धाई धाक धूम यौं भुवाल भौंसिला की भूमि,
कहियै खभार नर नारि के कहा जी कौ।
सरकत सुंडी सुंड दाबत भुसुंडनि मैं,
भरकत बाजी नाम सुनत सिवाजी कौ॥३॥

जंगी सत-द्वादस सवारनि लगाइ घात,
संगी स्वल्प संग अफजल्ल पग धार्‌यौ है।
कहै रतनाकर त्यौं हौंसला अपारि धारि,
भौंसला भुवाल आनि तुरत जुहार्‌यौ है॥
भुज भरि भेंटि भींचि जौलौं करि-काय नीच,
पंजर मैं खंजर लै खोंपिबौ बिचार्‌यौ है।
तौलौं नर-केहरि तमकि नर-केहरि लौं,
केहरि-नहा सौं दरि उदर बिदार्‌यौ है॥४॥

कैधौं खल-मंडल उदंड चंड दंडन कौं,
उद्दत अखंडल कौ अस्त्र दमकत है।
कहै रतनाकर कै जमन-प्रलै कैं काज,
त्र्यंबक कौ अंबक त्रितीय रमकत है॥

कैधौं दीह दिल्ली-दल-बन-घन जारन कौ,
दपटि दवानल स ताप तमकत है।
चमकत कैधौं सूर-सरजा-दुधारा किधौं,
सहर सितारा कौ सितारा चमकत है ॥५॥

माचै सुर-पुर मैं उपद्रव कहूँ ना कछू,
याही हम गुनत हिये मैं गरे जात हैं।
कहै रतनाकर-बिहारी सौं सुरेस लखौ,
आनि आनि जमन असेस अरे जात हैं॥
काम सरजा के अरु नाम गिरिजापति के,
ऐसैं मम धाम कौं निकाम करे जात हैं।
सनमुख जुद्ध के जुरैया जुरे जात अरु,
सिव सिव भाषत भजैया भरें जात हैं ॥६॥

बाजी-घोर पाँड़े कौं कठोर प्रान-दंड दियौ,
साजी सेन सरजा समत्थ बहुरंगी हैं।
कहै रतनाकर चली न अली आदिल की,
बिदलित कीन्हे दल पैदल तुरंगी हैं॥
फजल मुहम्मद के फजल फजूल भए,
तूल भए आवत सलावत भडंगी हैं।
लै लै तोप तुपक तुफंग जंग-साज भेंट,
गोवा के फिरंगी हू सिवा के भए संगी हैं ॥७॥

बीजापुर दिल्ली गोलकुंडा आदि खंडनि मैं,
अमल अखंड कल कीरति बिभाजी है।
कहै रतनाकर नगर गढ़ ग्राम जिते,
तेते अधिकार मैं सुधारि सुभ साजी है॥
मात-भूमि भक्ति सक्ति अविचल साहस की,
सहित प्रमान प्रतिपादि छिति छाजी है।
राना मूल-मंत्र जो स्वतंत्रता प्रकास कियौ,
ताकौ महाभास कियौ सरजा सिवाजी है॥८॥

मान के विरुद्ध सनमान मानि क्रुद्ध भयौ,
आनन पै आनि भाव उद्धत बिराजे हैं।
कहै रतनाकर सो चंड सरजा कौ रूप,
देखि म्लेच्छ मंडल उदंड छोभ छाजे हैं॥
निकसत बैन औ न बिकसत नैन भए,
अकबक साह साहजादे खान खाजे हैं।
भूले अवसान मान गौरव-विधान सबै,
कौरव-सभा मैं जदुराज जनु गाजे हैं॥९॥

(७) श्रीगुरु गोविंदसिंह

पैठि पठनैटनि के उमगे अँगेठनि मैं,
चूर करि ऐंठ सबै धूरि मैं धुरेटू मैं ।
कहै रतनाकर प्रचार्यो गुरु गोबिंद यौं,
मीर मीरजादनि के धीर धरि फेटू मैं ॥
सेखनि की सेखी करि देखत अलेखी सबै,
दूरि दलि भूरि मुगलद्दल दपेटू मैं ।
मेटू भव्य भाव देस-भक्त सदपंथिनि के,
मोहमद-पंथिनि के मोह-मद मेटू मैं ॥१॥

ढाहैं अरि-आस के अकास तिनि सीसनि पै,
होस कौं हवा कै हवा उनकी उड़ावैं हम ।
कहै रतनाकर गरजि गुरु गोबिंद यौं,
जमन-निसानी लोह-पानी सौं बहावैं हम ॥
जारि जारि प्रखर प्रचंड रोष झारनि मैं,
छार उनहीं की उन-आँखिनि पुरावैं हम ।
पंच तत्त्व हूँ मैं निज भाव सत्व संचित कै,
म्लेच्छ-दल बंचक पै पंचक लगावैं हम ॥२॥

चाबि लोह-चनक अघाइ देस दच्छिन सौं,
पच्छिम बढ्यौ जो तृषा-ब्याधि अधिकानी है।
कहै रतनाकर गुबिंद गुरु बिंदि यहै,
लोह ही के पानि सौं सिरावनि की ठानी है॥
जीवन की आस नासि सासक दिली कौ भज्यौ,
बिकल बिहाइ सान कानि गोरकानी है।
छाँड़ि असि परसु कुठार कुंत बान कहूँ,
पंचनद हू मैं जुरचौ रंचक न पानी है॥३॥

चाहि चतुरंगिनी अकालिनि की काल-रूप,
भूप नवरंग रंग एक ना उघारै है।
कहै रतनाकर अमीर मीर पीर कोऊ,
रन रुकिबे कौ धीर रंच हू न धारै है॥
त्यागि त्यागि संगर अभागे फिरैं भागे सबै,
कोऊ ढंग पै ना मीच-फंग सौं उबारै है।
जानि जिय गायनि कौं गोबिंद दुलारै सदा,
बीँदि बीँदि गोबिँद गवासनि सँघारै है॥४॥

देखि देखि बिक्रम अभिक्रम अकालिनि के,
कालिनि के नाद साधुबाद बहु दीन्हे हैं।
कहै रतनाकर कुरंग अवरंग भयौ,
भाजे सेन रौँदत मतंग बिनु चीन्हे हैं॥

आज गुरु गोबिँद बिरंचि रचना मैं जस,
पंचगुने भूपति भगीरथ सौं लीन्हे हैं ।
संचि संचि जमन प्रपंचिनि के स्रोनित सौं,
पंचनद माहिँ और पंचनद कीन्हे हैं ।।५।।

सूबा-सरहिंद संग गब्बर गिरिंद आनि,
जानि जिय अब्बर अनंदगढ़ घेर्यौ है ।
कहै रतनाकर गुबिंद गुरु छिदि घात,
निज रनधीर बीर बृंदनि कौं टेर्यौ है ।।
कढ़ि कढ़ि बाहिर उमहि कहि वाह-गुरु
बढ़ि नेजा असि-न्याव निबटेर्यौ है ।
मारे अरि-करिनि करेरनि दरेर्यौ दौरि,
मानो कुल केहरि अहेर निज हेर्यौ है ।।६।।

थापे भीति माहिँ जो अभीत जुग बाल वृच्छ,
तिनकौं यथेच्छ म्लेच्छ स्रोन सौं सिचाऊँ मैं ।
कहै रतनाकर लहौर सरहिंद-सेन,
कुंत-करवार-बान फलनि अघाऊँ मैं ।।
हम तुम जीवित रहे जौ कछु काल तौब
पुरुष अकाल महा महिमा दिखाऊँ मैं ।
चाहत हमैं जो निज कलमा पढ़ावन सो,
वाह-गुरु मंत्र नव अंत्र मैं मढ़ाऊँ मैं ।।७।।

जैसैं मदगलित गयंदनि के बृंद बेधि,
कंदत जकंदत मयंद कढ़ि जात है।
कहै रतनाकर फनिंदनि के फंद फारि,
जैसैं बिनता कौ नंद कढ़ि जात है॥
जैसैं तारकासुर के असुर-समूह सालि,
स्कंद जगबंद निरद्वंद कढ़ि जात है।
सूबा-सरहिंद-सेन गारि यौं गुबिंद कढ़्यौ,
ध्वंसि ज्यौं बिधुंतुद कौं चंद कढ़ि जात है॥८॥

गढ़ चमकौर सौं चपल चमकाइ तुरी,
आतुरी-समेत रन-खेत बढ़ि आयौ है।
कहै रतनाकर बिपच्छिनि यौं लच्छ कियौ,
उच्चयीस्रवा पै सहसाच्छि चढ़ि आयौ है॥
श्रीगुरु गुबिंदसिंह बैरिनि बिदारत यौं,
मानौ बिकराल काल-मंत्र पढ़ि आयौ है।
ताव देत ताजिहिं सवारनि कौं दाव देत,
पाव देत पैदल बिदलि कढ़ि आयौ है॥९॥

भारत की दीन दसा दारुन निवारन कौं,
श्रीगुरु गुबिंद महा जज्ञ-बिधि चीन्ही है।
कहै रतनाकर कठैटे-पठनैटे-सेख-
सैयद-मुगल-सेन समिधा सु लीन्ही है॥

खड्ग-स्रुवा सौं मेद-मज्जा-स्रौन आहुति दै,
प्रज्वलित जुद्ध-बिकराल-ज्वाल कीन्ही है।
देस-भक्ति-बेदी पै स्वतंत्रता कौ मंत्र साधि,
पूत पंच पूतनि की पंच बलि दीन्ही है ॥१०॥

---

(८) महाराज छत्रसाल

देव-द्विज-द्रोहिन के आँसनि उसाँसनि सौं,
मातृभूमि गात कौ सँताप सियराऊँ मैं ।
कहै रतनाकर बुँदेला भट मानी महा,
जमन-निसानी असि-पानी सौं बहाऊँ मैं ॥
श्रीपति सहाय सौं दिलीपति कौ छत्र सालि,
छत्रसाल नाम निज सारथ बनाऊँ मैं ।
चपल चकत्ता की महत्ता अरु सत्ता चाँपि,
चंपत कौ नंदन अमंद कहवाऊँ मैं ॥१॥

कढ़त बुँदेलनि के रेलनि के नारा रन,
बल्ख बुखारा जिमि पारा थहरत हैं ।
कहै रतनाकर सपीर पीरजादनि पै,
मीर मीरजादनि के धीर भहरत हैं ॥
निपट निसंक बंक बीरनि के जूथनि पै,
सूथन ससंक लंक त्यागि ढहरत हैं ।
मुगल पठाननि की सत्ता औ महत्ता मिटै,
कत्ता कढ़ै छत्ता के चकत्ता हहरत हैं ॥२॥

अन्न-जल जाकौ पाइ परम प्रसन्न रहे,
　　　　ताकौं हाय इमि अवसन्न किमि चैहैं हम।
कहै रतनाकर सपूत राय चंपत कौ,
　　　　म्लेच्छनि अपूत के न पद सौं दलैहैं हम॥
उद्धत अधर्मिनि के कुटिल कुकर्मिनि के,
　　　　दास ह्वै उदास इहिं नरक न रैहैं हम।
कैतौ भूमि भारत कौं सरग बनै हैं अबै,
　　　　कैतौं तेग झारि बेगि सरग सिधैहैं हम॥३॥

लगन धराइ कै लिखाइ बेगि चांठी चारु,
　　　　बाकी खाँ बसीठी दिल्ली नगर पठाई है।
कहै रतनाकर तुरंत रनदूलह की,
　　　　बिसद बरात सेन सज्जित सिधाई है॥
कढ़ि कढ़ि बाँकुरे बुँदेला रन-मांडव मैं,
　　　　बढ़ि बढ़ि घोर घमसान यौं मचाई है।
भागे सबै भभरि अभागे रन त्यागे चंपि,
　　　　चंपत कैं लाल बिजै-बाल बरि पाई है॥४॥

ह्वै कै दलमलित बुँदेलनि के रेलनि सौं,
　　　　मुगल पठाननि के मान मद मरके।
कहै रतनाकर ततार असवार लिए,
　　　　रूम सामहू के सरदार हारि सरके॥

बाकी खान सूबा के बिलाने मनसूबा सबै,
          बिचले हवा ह्वै अवसान हू समर के।
सूरता तहौवर मियाँ की चकचूरि परी,
          धूरि परी नूर पै नवाब अनवर के ॥५॥

समर-समुद्र बैर-अचल सुमेरु अद्रि,
          जीत-आस बासुकी-बरेत बर धारी है।
कहै रतनाकर सुरासुर बुँदेल-म्लेच्छ,
          करसि यथेच्छ कियौ घरसन भारी है॥
प्रगटे सुभासुभ परिनाम रत्न,
          जिनकी सजत्न भई जोग बटवारी है।
फेरि बिजै-लच्छमी प्रतच्छि जस-कंज-माल,
          चंपत के लाल कैं बिसाल बच्छ पारी है ॥६॥

सुतुर-बिहीन सुतुरुद्दीं दलि दीन भयौ,
          ऐसौ मुगलदल बुँदेल बीर लूट्यौ है।
कहै रतनाकर परान्यौ हाथ माथै दिये,
          मानौ टकटोरन कहाँ धौं भाग फूट्यौ है॥
बीर छत्रसाल-करवार-धार-पानिप त्यौं,
          दमकि दिलीस-सेन-सीस इमि टूट्यौ है।
अबदुस्समद की समदता सिरानी सबै,
          अबद अपाय है चुकाइ चौथ छूट्यौ है ॥७॥

जानी निज संपति सिरानी ततकाल सबै,
हाल चाहि चंपति के लाल रनरत्ता कौ।
कहै रतनाकर बिचारै माथ धारे हाथ,
मानि अपमान महा मुगल-महत्ता कौ॥
खीसत खिझात दाँत पीसत अमीरनि पै,
देखत तुरंत अंत होत म्लेच्छ सत्ता कौ।
सुनि गुनि धीर बीर छत्ता की बिजै पै बिजै,
लत्ता अवसान भयौ चकित चकत्ता कौ॥८॥

जोई जात गाजि सोई आवत गँवाइ भाजि,
भारी सेन ऐसहीं हमारी घिसि जाइगी।
बब्बर की धाक औ अकब्बर की साक सबै,
अब्बर की छाक लौं सनैहीं मिसि जाइगी॥
सोच-रतनाकर की तरल तरंगैं पोच,
गनि गनि हाथ कै बिहाइ निसि जाइगी।
बढ़ति महत्ता देखि छत्ता की चकत्ता कहै,
सत्ता इसलाम की सबै धौं खिसि जाइगी॥९॥

———

(८) श्रीमहारानी दुर्गावती

दुर्ग तैं तड़पि तड़िता सी तड़कैं हाँ कढ़ी,
कड़कि न पाए कड़खाहूँ अबै मुरगा।
कहै रतनाकर चलावन लागी यौं बान,
मानौं कर फैले फुफुकारि मारि उरगा॥
आसा छाँड़ि प्रान की अप्रान की दुरासा माँड़ि,
भागे जात गब्बर अकब्बर के गुरगा।
देवी दुरगावती मलेच्छ-दल गेरे देति,
मानौं दैत्य-दलनि दरेरे देति दुरगा॥१॥

देवी दुरगावती के धावत मलेच्छ-सेन,
फाटि चली फेन लौं रुकी ना हरकहु मैं।
कहै रतनाकर निहारि बहु संगर पै,
ऐसे रन-रंग ना बिचारे तरकहु मैं॥
चरबन चाहि जाहि आयौ चढ़ि आसफ खाँ,
ताकी कठिनाई ना लखाई करकहु मैं।
ऐसौ रन-बिमुख मलेच्छनि-झमेला भर्यौ,
मेला भर्यौ माची ठेलठेला नरकहु मैं॥२॥

दुर्ग तैं निकसि दुरगावती स्ववीर धीर,
फूँकि कै स्वतंत्रता कौ मंत्र ललकारे हैं ।
कहै रतनाकर स्वदेस-हित ठानि तिनि,
मुगल-पठान-दल बद्दल बिदारे हैं ॥
धावा करि आपहूँ जहाँ ही तहाँ कावा करि,
दावा करि अरि अरदावा करि पारे हैं ।
मारे किते बान सौं कृपान सौं सँघारे किते,
केते कुंत तानि कै उतान करि डारे हैं ॥३॥

रानी दुरगावती स्वतंत्रता की ठानी ठान,
देस-हित-हानी ना सुहानी छतरानी है ।
कहै रतनाकर लखानी अस्त्र सस्त्र धारि,
अरि-दल मानी मैं भयंकर भवानी है ॥
हेरत हिरानी लंतरानी सब आसफ की,
चलति कृपानी ना चलावत बिरानी है ।
पानी सब मुख कौ उतरि हिय पानी भयौ,
पानी गयो तेग कौ बिलाइ दृग पानी है ॥४॥

दोष दुख दारिद सु चूरि दीनता कै दूरि,
भूरि सुख संपति सौं पूरि प्रजा पाली है ।
कहै रतनाकर स्वतंत्रतानुरक्ति अरु,
देस-भक्ति थापी बाक-सक्ति सौं निराली है ॥

पुनि कढ़ि दुर्ग तैं कृपान दुरगावति लै,
दुष्टनि पै रुष्ट ह्वै अपार वार घाली है।
धोखैं रहैं हेरत त्रिदेव जिय जोखैं यहै,
यह कमला है, कै गिरा है, किधौं काली है ॥५॥

जाकैं रन धावत प्रचारि तरवारि धारि,
धमकि धराधर समेत धरा धूजी है।
कहै रतनाकर उमंडि जिहिं ओर जाति,
ताही ओर लुंडमुंड होत झुंड मूजी है ॥
देवी दुरगावती बजाइ सैफ आसफ सौं,
हर के हिये की हरपाइ हौंस पूजी है।
जोगिनी कहैं को यह जोगिनी नई है अहो,
चंडी कहैं चंडी को प्रचंडी यह दूजी है ॥६॥

देस-प्रेम-पूरन कौं अरि-दल-चूरन कौं,
सूरनि गुहारि मंत्र-माया किए देति है।
कहै रतनाकर कृपान कुंत बान घालि,
अरिनि निकाय कौं निकाया किए देति है ॥
मुंड-हीन दीसत मलेच्छनि के झुंड झुंड,
मानहु चमुंड प्रतिछाया किए देति है।
देबी दुरगावती दपेटि दुरगा लौं दौरि,
आसफ की सफ कौ सफाया किए देति है ॥७॥

देबी दुरगावती कराल कालिका सी कोपि,
काल-बालिका सी रन तारी मारि पहुँची ।
कहै रतनाकर जहाँ ही भीर भारी परी,
तमकि तहाँ ही किलकारी मारि पहुँची ॥
जब सफ आसफ की अमित अपार महा,
ताहि गहिबे कौं सेन सारी मारि पहुँची ।
फूटी आँखिहूँ ना तऊ म्लेच्छनि छटारी चही,
सरग-अटारी पै कटारी मारि पहुँची ॥८॥

---

(१०) सुमति

जानि देस-द्रोही भव-बिभव बिमोही ताहि,
छत्री-कुल-कानि कै महान मन माषी है।
कहै रतनाकर अचेत दुरगावती लौं,
हटकन दीन्हौ ना त्रिदेव राखि साखी है॥
नैंकु पग बंचक के उत कौं बढ़ावत हीं,
चंचा-नर समुझि तपंचा-वार नाखी है।
देसब्रत मानि कै बरेस-ब्रत हू सौं परैं,
मारि पति सुमति सु नारि-पति राखी है॥

(११) बीर नारायण

अमित उमंग जिय जंग जुरिबे की भर्यौ,
कढ़ि गढ़ सिंगर तैं संगर मचायौ है।
कहै रतनाकर पठान पँचहत्थनि के,
मत्थनि पै आनि जम-जत्थनि नचायौ है॥
पैठि अरि ब्यूह मैं अभिक्रम अनूह साधि,
असि सौं हियै पै निज बिक्रम खँचायौ है।
बीर अभिमन्यु लौं समन्यु रनधीर बीर,
भारत मही मैं महाभारत मचायौ है॥१॥

बीर बीरसिंह बीर-माता कैं सपूत धन्य,
बीर अभिमन्यु लौं समर-पन कीन्हौ है।
कहै रतनाकर मलेच्छनि कैं ब्यूह पैठि,
तच्छन अनूह महा नर-पन कीन्हौ है॥
देस-हित नेमिनि स्वतंत्रता के प्रेमिनि कौं,
आपनौ चरित्र दिव्य दरपन कीन्हौ है।
तरपन कीन्हौ जननी कौ अरि-स्रोनित सौं,
सीस कौं गिरीस-माल अरपन कीन्हौ है॥२॥

(१२) श्री नीलदेवी

मृतक पती की कटि-तट की कटारी खोलि,
तोलि कर ताहि बोलि तोहिँ अपनाऊँ मैँ ।
कहै रतनाकर प्रतिज्ञा नीलदेवी करी,
आर्य-महिला की महा महिमा दिखाऊँ मैँ ॥
पति के बियोग हूँ सौं तेरौ तृषा-सोग भारी,
तातैं सती पाछैं है सुपति-पद पाऊँ मैँ ।
अबदुस्सरीफ-हिय सोनित कौ आज तोहिँ,
पान पहिलैं हीँ निज पानि सौं कराऊँ मैँ ॥१॥

अबदुस्सरीफ सौं हरीफ ह्वै सुजुद्ध जुरैं,
कीरति तिहारी तौ अबाध रहि जाइगी ॥
भाषै नीलदेवी सुत सील-रतनाकर सौं,
भाजि बच्यौ सो तौ दीह दाध रहि जाइगी ॥
प्यास रहि जाइगी असाध इहिँ खंजर की,
भारत की त्रास हूँ अगाध रहि जाइगी ।
आधि रहि जाइगी मरे हूँ पै हमारे हियैं,
हाय मनहीँ मैँ मन-साध रहि जाइगी ॥२॥

भारत की भव्य भामिनीनि की कहानी कल,
मंडित करौं मैँ म्लेच्छ-मुखनि वजीफा सी।
कहै रतनाकर पुकारि नीलदेवी आज,
करनी करौँ जो जगै जग मैँ लतीफा सी॥
देस-प्रेम-प्रबल-प्रभाव दिव्य देखैँ सबै,
करति कहा है एक अबला जईफा सी।
दारि डारौं देखत हीँ देखत बिथारि डारौं,
अबदुस्सरीफ की सराफत सरीफा सी॥३॥

ऐसौ नाच नाची नीलदेवी म्लेच्छ-मंडल मैँ,
मंडि नीच-मुंडनि पै मीच कौँ नचायौ है।
कहै रतनाकर अमोल गुनरूप तोलि,
अबदुस्सरीफ लोल ललकि लुभायौ है॥
निकट बुलाइ कै बिठाइ हुलसाइ हियैँ,
मद-मतवारौ मद-पान हठ ठायौ है।
ज्यौँ ही चह्यौ चसक चखायौ ताहि कंजर सो,
पंजर मैँ त्यौँ ही पेसि खंजर खपायौ है॥४॥

पेसि कै कटारी धरमारी के करेजैँ बीच,
तारी दई तरकि तराक नीलदेवी ज्यौँ।
कहै रतनाकर त्यौँ संग कै हथ्यार धारि,
कीन्हीँ चहुँवार वार दारु की जलेबी ज्यौँ॥

पैठि परयौ बीरगनि समेत सोमदेव धीर,
चेते कछु चकित अचेत सुरासेवी ज्यौं।
एकाएक आनि कै महान् अजगैबी परी,
दीसति फरेबी सभा रकत-रकेबी ज्यौं ॥५॥

फूँकि कै स्वतंत्रता कौ मंत्र सेन-अंत्र माहिँ,
छत्री-धर्म-कर्म की समर्म सुधि धाई है।
कहै रतनाकर सपूत राजपूतनि कैँ,
पूत-देस-भक्ति-महा-सक्ति जिय ज्याई है॥
दुवन फरेबी कौँ फरेब-फल देवै काज,
चाय की रचाय नीलदेवी सुरा प्याई है।
जमन जरार फौजदार फारि खंजर सौँ,
पंजर सौँ पति की निकासि लास ल्याई है ॥६॥

मारि निसि-छाप सूरदेव कौँ गह्यौ जो क्रूर,
फलन न पायौ सो फतूर वा फरेबी कौ।
कहै रतनाकर सु आर्य-महिला कैँ कर,
छाकैँ बन्यौ ताकैँ निज परस्यौ रकेबी कौ॥
जाकौ चारु चरित समच्छ सब कच्छनि कैँ,
लच्छ ह्वै प्रतच्छ लसै दच्छ देस-सेवी कौ।
जमन कुडीलनि के मंद मुख नील करै,
सुजस समुज्ज्वल सुसील नीलदेवी कौ ॥७॥

चढ़त चिता पै नीलदेबी के उमंगि जुरीँ,
देवनि कैँ संग देव-अंगना जुहारती।
कहै रतनाकर करनि कुसुमाकर लै,
पुलकित है है धन्य-धुनि कै उच्चारती ॥
द्वै द्वै दिव्य आसन सिँघासन पै रीते राखि,
आँखिनि निहारती सुभाषनि उचारती।
जौलौँ कबि भारत के भारती सँवार्यौ करैँ,
तौलौँ तव आरती उतर्यौ करै भारती ॥८॥

---

(१३) महारानी लक्ष्मीबाई

दीह दल साजि गाजि नत्थे खाँ समत्थ चढ़्यो,
झाँसी के निवासी भरे भूरि भय भारे हैं ।
कहै रतनाकर प्रतच्छ लच्छमी सो लच्छि,
दच्छ निज पच्छिनि समच्छ ललकारे हैं ॥
धधकत गोलनि के तांतें अरि-मुंडनि पै,
तुंग गढ़-स्रंग तैं भुसुंडिनि प्रहारे हैं ।
खूटे-आयु-औधि-त्रास फूटे-भाग बैरिनि के,
टूटे मनो नभ तैं कतारे बाँधि तारे हैं ॥१॥

पीठि बाँधि बालक बिराजि बर बाजि ईठि,
जाकी दौर देखि दीठि छकित छली गई ।
कहै रतनाकर बिपच्छिनि के कच्छनि सौं,
लच्छमी प्रतच्छ अच्छि आगे निकली गई ॥
अचल उदंड बरिबंडनि के मंडल मैं,
डंड लौं अखंडल के खंडत हली गई ।
झारति कृपान सौं गुमान ज्वान जंगिनि के,
फारत फिरंगिनि के फर कौं चली गई ॥२॥

सेन लै तुरंगी संग सेनप फिरंगी बीर,
जंगी नारि धीर धाइ धारिबौ बिचार्यौ है।
कहै रतनाकर भँडेर ग्राम नेरैं घेरि,
राहु कौ रिसाला हाला चंद पर पार्यौ है॥
रानी लच्छमी त्यौं रन-दच्छता प्रतच्छ करि,
कावा काटि धावा कै समच्छ ललकार्यौ है।
ठोकर दै अस्व कौं उड़ाइ बेगि वोकर पै,
तीखी तरवारि सौं बिदारि महि डार्यौ है॥३॥

पेस पेसवा की औ नवाब की न ताब लच्छि,
भेस करि लच्छमी प्रतच्छ मरदाने कौ।
कहै रतनाकर सवार है तुरंगम पै,
संग लै रिसाल बिकराल लाल बाने कौ॥
दोऊ कर झारति झपटि करवार-वार,
फारति फुरत फौज-फर फिरगाने कौ।
मंद करि दीन्हौ धावा धवल अरिंदनि कौ,
बंद करि दीन्हौ दीह दंद तोपखाने कौ॥४॥

ओलनि लौं गोलनि की बाढ़ सेँधिया की परैं,
ताब गई तरकि नवाब पेसवाजी की।
कहै रतनाकर त्यौं लच्छमी उमंगि बढ़ी,
संग लिए बाहिनी बिकट बर बाजी की॥

तोपचिनि मारि लोपि वार तोपखाननि की,
भानन लगी ज्यौं अरि-पाँति भाँति भाजी की।
भाजी सिलेदारी घाटवारी सेन-राजी सबै,
साजी रन-बाजी गई बिचलि जयाजी की ॥५॥

कोटा की सराय सौं धधाइ कै फिरंगी-फौज,
ग्वालियर-कोट पै लगाइ चोट चमकी।
कहै रतनाकर समच्छ लच्छमी त्यौं कढ़ि,
सबल सवार-सेन-संग धाइ धमकी॥
काटि-काटि डारन लगी यौं महि रुंड मुंड,
पैठि अरि-झुंड मैं जमात मनौ जम की।
धमकी जहाँ हीं जहाँ संगर-घटागी घोर,
बिज्जु की छटारी ह्वै तहाँ हीं तहाँ तमकी ॥६॥

ग्वालियर-कोट सौं सचोट सिंहनी सी कढ़ि,
लच्छमी समच्छहीं बिपच्छि-सेन भारी के।
कहै रतनाकर उमंगि जुरी जंग धाइ,
संग लै सवार गने करनी करारी के॥
झारति कृपान फौज फारति फिरंगिनि की,
दारति दरेरि दल जंगिनि हुजारी के।
धधकत गोलनि कैं द्वंदर धँसी यौं जाति,
धँसत समंदर ज्यौं अंदर दवारी के ॥७॥

अच्छिनि-समच्छ गई छिति सौं अलच्छित ह्वै,
लच्छ बनि लच्छमी बिपच्छिनि रिसाला कौ ।
कहै रतनाकर सुधाकर कौ बिंब बेधि,
प्रान कियौ तुरत पयान सुर-साला कौ ॥
अधरहिँ धार्यौ धर धाइ जगधाइ जानि,
पावै धरा पीर ना सरीर बीर बाला कौ ।
इत तैँ उमंडि संडिया पै मुंडमाली आनि,
मुंड मध्य-मंडन बनायौ मुंड-माला कौ ॥८॥

---

(१४) श्री ताराबाई

राजपूत बीर जो निसेस देस-पीर करै,
ताकौं सुख मानि पानि आपनौ गहाऊँ मैं ।
कहै रतनाकर तिवारा भगि तारा वाच,
ना तरु कुमारी रहि आप चढ़ि धाऊँ मैं ॥
मंडि रन-मंडल उमंडि चंड चंडी सम,
मखर प्रचंड खंड-धार धमकाऊँ मैं ।
तात की बिपत्ति-बिथा बिषम बहाऊँ अरु,
मात की अपूती-दाह दारुन सिराऊँ मैं ॥१॥

साजै बीर बाहिनी बरातहिँ उछाहि नीकैं,
बैरिनि की खाल खैंचि दुंदुभी मढ़ावै जो ।
कहै रतनाकर पछाड़ि देस-द्रोहिनि कौं,
फाड़ि कै करैजौ हाड़-भूषन गढ़ावै जो ॥
मातभूमि-बेदी पै हिए की दाह साखी राखि,
सविधि स्वतंत्रता के मंत्रहिँ पढ़ावै जो ।
वाही बर बीर कौं बरौं मैं अनुराग पागि,
अरि उर-राँग माँग सेँदुर चढ़ावै जो ॥२॥

झेलति तुफंग-तीर-वार सुकुमार अंग,
आइ पति संग पैठि संगर मैं तमकी।
कहै रतनाकर नवाब मालवा की ताब,
रंचक रही न भई हीन सब हम की ॥
बलगद बाजी पै बिराजि सेन-राजी साजि,
घेरि मल्ल सूरज निसा मैं लोह-तमकी।
धावत घुमाइ चमकावति दुधारा खग्ग,
तारा मेदपाट कौ सितारा बनि चमकी ॥३॥

---

(१) श्रीराधा-विनय

जानत न पीर-हीन पीर पीर-वारनि की
तातैं तिन्हैं पीर-पाक रोचक चिखाइ दै ।
कहै रतनाकर प्रिया के नख-रेखनि सौं
जन्म-कुंडली मैं प्रेम-परख लिखाइ दै ॥
सलिता दया की लली ललिता सुनी मैं कान
प्रगट प्रमान ताकौ नैननि दिखाइ दै ।
सरल-सुभाइ स्वामिनी कौं समुझाइ टेक
पैयाँ परौं नैंकु मान करिबौ सिखाइ दै ॥ १ ॥

जोगी जोग साधैं भोगी भोग-भौन बाँधैं सबै
ब्रह्म अवराधैं ज्ञानी गूढ़-सुख-साधा कैं।
कहैं रतनाकर बिरागी राग त्यागैं ऐंठि
रागैं पटराग रागी बिरति अबाधा कैं॥
ऐसौ कछु बानक बनाइ दै बिधाता जदि
तौ पै गुनैं ताकी ताकि करुना अगाधा कैं।
धाइ ब्रज-बीथिनि अन्हाइ जमुना कैं बारि
एकौ बार उमगि पुकारैं हम राधा कैं॥ २॥

भ्रुकुटि न नैं की ऐंठि कुटिल कटाच्छ बेधि
उनहीं-कमान-प्रभा भौंहनि मैं भाई है।
कहै रतनाकर प्रभावहीन बैननि औ
भावहीन नैननि दिखाति दुचिताई है॥
हा हा किन कारन उचारन करति कहा
बारन-उबारन की सुधि बिसराई है।
कीन्यौ मनुहार ना निहारै कौन सेवक कौं
जाहि ताप मानस की भाप दृग छाई है॥ ३॥

(२) श्रीब्रज-महिमा

दूरि करिबे कौं तन मन कौ मलान सबै
आयौ इहिं ओक आप तीन लोक-त्राता हूँ।
कहै रतनाकर रुचिर रुचिकारी जाहि
जानैं संभु-सहित गजानन की माता हूँ॥

आइ इहिँ घाट पै धुवाइ पट मानस कौ
होत सुचि स्वच्छ सेँतहू मैँ सूप दाता हूँ ।
ऐसौ देखि पातक पखारन कौ याँमैँ ख्वार
ब्रजरज संचि बन्यौ रजक बिधाता हूँ ॥ १ ॥

सिद्धनि की सिद्धि औ समृद्धि तप-वृद्धनि की
परम प्रसिद्ध रिद्धि प्रेम-निधि नर की ।
कहै रतनाकर सुरस-रतनाकर की
सुचि रतनाकर-निधान धूरि छरकी ॥
भक्ति की प्रसूति भुक्ति मुक्तिनि की सूति मंजु
परम प्रभूत है बिभूति बिस्व-भर की ।
बृंदारक-बृंद जामैँ लहत अनंद-कंद
ऐसी रज बंध बृन्दाबन के डगर की ॥ २ ॥

भेजे देत जीव जंतु संतत न जानैँ कहाँ
मानैँ यहै तंत पै पतौ न लहि जाइगौ ।
कहै रतनाकर बिधाता कहै त्राता टेरि
कब लौँ कहौ तो खीस-खाता सहि जाइगौ ।
हेर-फेरहू तौ मेरु होत या जरा मैँ नाथ
अब ना नए सिर सौँ ठाठ ठहि जाइगौ ।
भाव रहि जाइगौ यहै जौ ब्रजमंडल कौ
मानिनि के भाव कौ अभाव रहि जाइगौ ॥ ३ ॥

तन की कहै को मन प्रान आतमा हूँ सबै
याही के कनूका पै तिनूका लौं लुटैहैं हम ।
जौ हूँ ब्रजबासी प्रेम पद्धति उपासी तऊ
अन्य धाम स्याम हूँ सों मिलन न जैहैं हम ॥ ६ ॥

(३) श्रीराम-विनय

पाइ बर गोपी ग्वाल ह्वै कै संग खेलन कौ
आनँद सकेलन कौ मौज मन भाई मैं ।
कहै रतनाकर मुनीस बन दंडक के
मगन उमंग की तरंग सुखदाई मैं ॥
भूलि भूलि देस-काल-ज्ञान गुन-मान सबै
पूछत परसपर सरस अतुराई मैं ।
ब्रज की जवाई मैं कितेक बेर लागै कहौ
कैक दिन और अहो द्वापर अवाई मैं ॥

(४) श्रीअयोध्या-महिमा

जिनके परत मुनि-पतिनी पतित तरी
जानि महिमा जो सिय छुवत सकानी है ।
कहै रतनाकर निषाद जिन जोग जानि
धोए बिनु धूरि नाव निकट न आनी है ॥

ध्यावैं जिन्हैं ईस औ फनीस गुन गावैं सदा
नावैं सीस निखिल मुनीस-गन ज्ञानी हैं ।
तिन पद पावन की परस-प्रभाव-पूँजी
अवध-पुरी की रज रज मैं समानी हैं ॥

(५) श्रीशिव-वंदना

अरक धतूरौ चाबि रहत सदाई आप
भोग जथाजोग बगरावत घने रहैं ।
कहै रतनाकर त्यौं संपति असेस देत
निज कटि मेख धारि आनँद सने रहैं ॥
ललकि लुटाइ दिव्य भूषन अदूषन जे
दोषाकर भाल भव-भूषन गने रहैं ।
पुरट पटंबर कै अखिल अडंबर कै
बाँटि सब अंबर दिगंबर बने रहैं ॥

बेर बेर बिलखि बिधाता सौं कुबेर कहै
हम पैं तिहारी परैं संपति सँभारी ना ।
कहै रतनाकर लुटाए देत संभु सबै
देखी कहूँ ऐसी मति दान-मतवारी ना ॥

रावरे कुअंकहू की टारैं मरजाद सबै
 जाकी पै निरंकुस कुटेव टरै टारी ना।
सब हमही से किए देत अब कोऊ करै
 सोन-टोकरी हू दिये नोकरी हमारी ना ॥२॥

सुमति गजानन को देत कबिराजनि कौं
 राजनि पै बीरता खड़ानन की छाए देत।
कहै रतनाकर त्यौं अन्नपूरना की सुचि
 रुचिर रसोई जग-बीच बरताए देत ॥
चैतै घरबार ना बिलोकि द्वार मंगन कौं
 सीस धरी गंग हूँ उमंग सौं बहाए देत।
द्वै ही एक अंगुल गयौ है रहि चाँदी जानि
 माँदी चंदचूर चंद चूर कै लुटाए देत ॥३॥

कैसैं सूलपानि ह्वै अपार खल खंडि देते
 जन-मन कौ जौ सूल पानि करते नहीं।
कहै रतनाकर न बात हम काँची कहैं
 साँची कहिबे मैं पुनि नैंकु डरते नहीं ॥
पावते कहाँ तैं गंग बिष के निवारन कौं
 कान जौ भगीरथ की आन धरते नहीं।
ल्यावते लुकार धौं कहाँ तैं काम-जारन कौं
 जौ पै तीन लोक के त्रिताप हरते नहीं ॥४॥

गंग की न धार जो सिधारि जटा-जूटनि मैं
भूप बिनती बिनु धधाइ धरा धैहै ना।
कहै रतनाकर तरंग भंगहू की नाहिं
जो निज उमंग और अंग दरसैहै ना॥
यह करुनाहूँ की कदंबिनी न नाथ सुनौ
ताप बिनुहीं जो द्रवि आप झर लैहै ना।
यह तौ कृपा की धुनि-धार है अपार संभु
मानस दरारे मैं तिहारे रुकि रैहै ना॥५॥

(६) श्रीकाशी-महिमा

साधौ गंग ढुंढी डंडपानि कछु छीने लेत
कछु कर कीने लेति भैरव-जमाति हैं।
कहै रतनाकर हमारी पाप-रासि सबै
देखत ही संभु कैं हठाहठ हिराति है॥
इमि चहुँ ओर सौं झपट झकझोर हेरि
तूँ हूँ मुख फेरि अंब मंद मुसकाति है।
कासी की कहा है अब जगत न ऐहैं हम
माई इहाँ जनम-कमाई लुटि जात है॥ १॥

बिधि औ निषेध कौ न भेद कछु राखति है
ताहू पर बेद मंजु महिमा प्रकासी है।
कहै रतनाकर हमारैं जान यामैं कछू
राजति नवल नटराज की कला सी है॥

तकत त्रिलोक कौ त्रिसूल निरमूल करै
आप त्रिपुरारि के त्रिसूल पै तुला सी है ।
सबकी बिलाति महा-पातक जमाति यामैं
तौहूँ पुन्य-रासी ही कहाति यह कासी है ॥ २ ॥

छूटत ही साथ भूतनाथ के नगर माँहिं
बिषम बिचित्र बने बानक लखात हैं ।
कहै रतनाकर ये जनम-सँघाती जऊ
तौहूँ नाहिं भेंटिबे कौं पुनि समुहात हैं ।
भेद-कूटनीति सौं कछूक फूट फैलै इमि
फेरि ना परस्पर कदापि नियरात हैं ।
पंचभूत भूत-मंडली मैं जाइ बैठैं ऐंठि
प्रान त्यौं अभूति की बिभूति मिलि जात हैं ॥ ३ ॥

बिधि सौं कहत जम जिय बिलखाइ हाय
कासी कौ सुभाय काहू भाय सुधरै नहीं ।
कहै रतनाकर सो लोक तीनि हूँ तैं कढ़ी
सूली के त्रिसूल चढ़ी तदपि डरै नहीं ॥
राखति है अकस तिहारी रचना सौं इमि
बस परि याकैं प्रानी उतकौं ढरै नहीं ।
ऐसौ कछु मंतर फुँकाइ देति काननि मैं
पंच कैं प्रपंच रंच सो पुनि परै नहीं ॥ ४ ॥

मानि कासिका कौं सुभ-सासिका बस्यौ हौं आनि
जानि सरनागत कौं स्वगत सुखारे देति ।
कहै रतनाकर लखात सही सो तौ सबै
बिबिध बिनोद मोद तन मन वारे देति ॥
पर अब जान्यौ जन भावत न नैंकु याहि
पूँजी ही बिलोकि रोकि आनँद-सहारे देति
जनम अनेकनि की करम कमाई छीनि
आपकी कहै को तीनि लोक सैं निकारे देति ॥ ५ ॥

(७) श्रीहनुमद्महिमा

संतत हिमायत-हमेव में छक्यौ सो रहै
ताकी छाक छनक उछाकि को सकत है ।
कहै रतनाकर जमी जो जग ताकी धाक
ताहि फलफंदनि फलाकि को सकत है ॥
ताके सामना की करि कामना कुटिल कूर
मूढ़ मदचूर है न थाकि को सकत है ।
बाँह दै बसावै जाहि बाँकौ हनुमान ताहि
तनक तेरेरि तीखैं ताकि को सकत है ॥१॥

दलिमलि जात दर्प दुष्ट-दल-दानव कौ
पूरै आयु पिसुन-पिसाचनि पत्यारी की ।
कहै रतनाकर बिलाति सुख-स्वप्न-साध
बाधक बिपच्छि-पच्छ-राच्छस कुचारी की ॥

बिमुख-बितंडी-प्रेत-मंडी खंड खंड होति
अंडबंड बात चाई-भूत-भीर सारी की।
बैरिनि के फेफरे फलकि फटि फाँक होत
हाँक होत बाँके बजरंग धाक-धारी की ॥२॥

आपि अवलंब जगदंब अवधेस्वरी कौं
अरि की असोक-बाटिका धरि उजारैगौ।
कहै रतनाकर त्यौं अच्छय-घमंड खंडि
चंडकर-पूत-दीठि चंडनि पै पारैगौ ॥
दैहै अमी-मूलिका सुमित्रानंद रच्छन कौं
बेगि हीं बिपच्छिनि के पच्छनि कौं छारैगौ।
भारी-भीर-भंजन प्रभंजन कौ पूत बीर
गंजन गनीम कौ गुमान करि डारैगौ ॥३॥

कैधौं बलसागर की उद्धत तरंग तुंग
बोरन कौं सेना रजनीचर अकूत की।
कहै रतनाकर कै संत-मान-रच्छन कौं
महिमा बसिष्ठ-दंड परम प्रभूत की ॥
जानकी के सोक जलजान की मथूल किधौं
कैधौं बर ब्रज की बिभूति पुरहूत की।
कठिन कराल काल-दंड की रुजा है राम
जीत की धुजा है कै भुजा है पौनपूत की ॥४॥

याही तैं हँकारत हुते ना हनुमान होति
हलबल भारी तुम्हैं जन-रखवारी मैं।
कहै रतनाकर पै आनन उदास चाहि
लीनी थाहि बात जो न सकुचि उचारी मैं॥
कर भुजडंडनि न फेरौ औ न हेरौ गदा
इतनौ बखेरौ ना हिमायत हमारी मैं।
हखिमलि जाइ हैं बिपच्छिनि के पच्छ सबै
तनक सरीखी तीखी ताकनि तिहारी मैं॥५॥

एहो हनुमान मान एतौ जो बढ़ायौ जग
राखियै तौ ध्यान आन-बान के निभाए कौ।
कहै रतनाकर बिसारियै न कानि बर
बिरद सँभारियै कृपाल के कहाए कौ॥
और की न पौरि पै पठैयै मन ढैयै यहै
आपही बनैयै सब काज अपनाए कौ।
फेरियै निगाह ना गुनाह हूँ किये पै लाख
राखियै उछाह निज बाँह दै बसाए कौ॥६॥

(८) श्रीज्वालामुखी-विनय

ज्वाला-मुखी माइ दिब्य दरस तिहारौ पाइ
भव्य भावना मैं इमि मति अनुरागी है।
कहै रतनाकर दिवाकर दिया के यह
लेसन कौं मानहु असेस लव लागी है॥

कैधौं मनि कामद-मयूष की छटा है किधौं
सुर-मुनि-तेज-लय अमल अदागी है।
कैधौं वेद-कबि की प्रतच्छ प्रतिभा है
कैधौं प्रगट-प्रभा है आदि जोत जग जागी है॥ १ ॥

सकल मनोरथ की सिद्ध बल-बुद्धि-वृद्धि
संवति-समृद्धि दै दुलारतै रहति है।
कहै रतनाकर निहारि करुना की कोर
करवर-निकर निवारतै रहति है॥
दारिद के ब्यूह औ समूह दुरभागनि के
पातक के जूह जोहि जारतै रहति है।
ज्वालामुखी मातु निज भक्तनि सुखी कै सदा
भुक्ति-मुक्ति-बृंदनि बगारतै रहति है॥ २ ॥

सकल सँवारन की सिद्धि सुभ तोमैं ताकि
बिधि-बुधि जोग औ अजोग की बिसारी है।
कहै रतनाकर तिहारौ प्रतिपाल हेरि
परिहरि चिंता सुख-नींद हरि धारी है॥
दुष्ट-दल-घालन की घात मैं बिलोकि तोहिं
अचल समाधि साधि राखी त्रिपुरारी है।
भारत की आरत पुकार सुनिबै कौं एक
ज्वालामुखी मात जोति जागति तिहारी है॥ ३ ॥

(९) श्रीसती-महिमा

बैठि कै हुतासन कैं आसन अकास जाइ
लीन्ही हठि संगति उमंगति पती की है।
कहै रतनाकर निहारि सब दंग भए
ऐसी रही रंगत न जंगम जती की है॥
जाकौ गुन सुनि मुनि-पतनी सिहातिँ सदा
कहत रसालि रीझि रसना रती की है।
बेदनि सौँ उमड़ि पुराननि कैं पूरि बढ़ी
तीनौँ महि माहिँ महा महिमा सती की है॥

(१०) दीपक

बिधि-बिरचित दिव्य दीप अस्ताचल जावै।
दुख-दायक तम-तोम ब्यौम-छिति-छोरनि छावै॥
गुन-रासि कपास नेह भरि हृदय हुलासै।
निज काया करि नास और कौ बास प्रकासै॥१॥

सानंद सुबंदनीय दीपक-पद पावै।
ज्यौति-रूप कौ रूप जानि तिहिँ जग सिर नावै॥
मंदिरनि माहिँ पाइ सुभ ठाम बिराजै।
राजनि के सुभ सदन माहिँ मंजुल छबि छाजै॥२॥
पंडित कैं धाम होत आदर अधिकारी।
सुजन-सभा मैं करति प्रभा ताकी उजियारी॥
यह लहि सनमान नैंकु निज बानि न त्यागत।
सबही कैं उपकार हेत एकहि सौ जागत॥३॥

नीच दरिद्री मूढ़ कूढ़ मूरख पापी कौं।
देत प्रकास समान रूप रुचि सौं सबही कौं॥
स्वर्न रजत के पात्र माहिँ नहिँ अधिक प्रकासै।
नहिँ माटी के घटित दिया मैं कछु घटि भासै॥
जब रोम रोम इमि नेह भरि गुनमय सब कौ हित करै।
तब लहि पदवी कुल दीप की दीप दीप दीपति भरै॥४॥

(११) भारत

भारत पै दुरभाग्य-प्रबल-बज्री कोप्यौ है।
इहिँ हिय जानि अनाथ नाथ चाहत लोप्यौ है॥
महा घोर अज्ञान-तिमिर-घन चहुँ दिसि छावत।
मूसलधार अपार बिपति-जल खल बरसावत॥
अब धाइ कृपाचल धारि ध्रुव बेगहिँ आइ उबारियै।
नतु गिरिवर-असरन-सरन बाँको बिरद बिसारियै॥१॥

अहो आर्य संतान मान उन्नत अति धारी॥
सब मिलि अब इहिँ भाँति मनाऔ दिब्य दिवारी॥
ज्ञान-दीप की मंजु माल उर-अंतर मेलौ।
उन्नति-चौसर चारु प्रान-पन सौं खुलि खेलौ॥
सुभ मनसा बाचा कर्म के अच्छ दच्छताजुत धरौ।
जुग बाँधि साधि निज चाल चलि सार काढ़ि बाहिर करौ॥२॥

आरत होहु न भारतबासी सँभारत दुःख सबै ठिलि जात है।
त्यौं रतनाकर हाथ औ माथ हिलाएँ हिमाचल हूँ हिलि जात है॥
काह न होत उछाहनि सौं मृदु कीट हू पाहन मैं पिलि जात है।
आरस त्यागि कै ढारस कीन्हैं सुधारस पारस हूँ मिलि जात है॥३॥

क्या अब कृपा का भी न यह अधिकारी रहा
या कुछ कृपा ही ने निठुरपन धारा है।
कहै रतनाकर उसी की तौ दसा है यह
जिसको अनेक बार तुमने दुलारा है॥
हारा बल पौरुष न इष्ट रहा कोई कहीं
एक आपही की दया-दृष्टि का सहारा है।
हाथ पावँ मारा भी न जाता इससे है अब
गारत हुआ यौं हाय भारत हमारा है॥ ४॥

(१२) हरिश्चन्द्र

मूरति सिँगार कौ अगार भक्ति-भायनि कौ
पारावार सील औ सनेह सुघराई कौ।
कहै रतनाकर सपूत पूत भारती कौ
भारत कौ भाग औ सुहाग कविताई कौ॥

धरम धुरीन हरिचंद हरिचंद दूजौ
मरम जनैया मंजु परम मिताई कौ।
जानि महिमंडल मैं कीरति समाति नाहिँ
लीन्यौ मग उमगि अखंडल अथाई कौ॥

(१३) शुद्धि

क्रुद्ध ह्वै मलेच्छनि की सुद्धि के बिरुद्ध बने
जाल जे कुबुद्धि तनैं उद्धत अड़ंगा कौ।
कहै रतनाकर न संकुचित होत रंच
परम प्रपंच रचैं दंभ अरु दंगा कौ॥
लाइ कै लबार हरताल निगमागम पै
छाइ कै बिकार निज कुमति कुढंगा कौ।
झाँप हरिनाम के प्रताप पर पारत हैं
गारत हैं गौरव गँवार गुनि गंगा कौ॥ १॥

मानत हुते कै यह मंजुल महान मंत्र
सब सुख-साधन की सिद्धि उपजावैगौ।
कहै रतनाकर पै धरम-धुरीननि सौं
जानि पर्यौ सो तौ कछु काम नहिँ आवैगौ॥
म्लेच्छनि के रंचक प्रपंच-पेंच सौं जो ऐंचि
हिंदुनि की पाँति मैं सुभाँति ना बिठावैगौ।
सोई हरि नाम जम-पास तैं निकासि कहा
सुखद सुपास सुर-बास मैं बसावैगौ॥ २॥

बेद कौं न मानैं ना पुरान भेद जानैं कछू
ठानैं ठान आपने लबेद अड़बंगा की।
कहै रतनाकर नसावैं सुद्ध स्वारथ हूँ
आड़ मैं अनोखे परमारथ-भड़ंगा की॥
जैन अरु बुद्ध स्वामि-संकर किये जो सुद्ध
ताहू के बिरुद्ध जुक्ति जोरत लफंगा की।
भक्ति तौ बखानैं पर रंचक प्रमानैं सक्ति
गुरु की न गोबिंद की गाय की न गंगा की॥३॥

(१४) अन्योक्ति

आयसु दै टेरि बलि-पायस खवैऐं खिन
निज गुन रूप की हमायस बढ़ावै ना।
कहै रतनाकर त्यौं बावरी बियोगिनि कैं
कंचन मढ़ाऐं चंचु चाव चित ल्यावै ना॥
निज तन धारे इंद्र-नंद मतिमंद जानि
मानि दृग-हानि हियैं हाँस हुमसावै ना।
हंस कौं दिखावै ना नृसंस गति-गर्व छाक
ए रे काक कोकिल कौं काकली सुनावै ना॥

(१५) शांत रस

देखै देखि देखन की दीठि दई जाहि दई
इहिँ जग जंगम न कोऊ थिर थावै है।
कहै रतनाकर नरेस रंक सूधौ बंक
कोऊ कल नैंकु एक पलक न पावै है॥

ऐसी कछु चपल चलाचल चली है इहाँ
जीवन तुरी पै अति आतुरी मचावै है।
किरन-छटा सौं दिन तरनि ततावै रैनि
बेगि चलिबै कौं चंद चाबुक लगावै है॥

× (१६) गंगा-गौरव

गंग-कछार कैं मंजुल बंजुल, काक कोऊ महामोद उफानै।
देखत प्राकृत सुंदरता पद, प्राकृत ही के हियैं ठिक ठानै॥
पाइ सुधा-सम बारि अघाइ न, आपनी जोट कोऊ जग जानै।
हंस कौं हाँस मजूर मयूर कौं, कोइला कोकिला कौं मन मानै॥१॥

पापिनि की मंडली लुकाए देति जानैं कहाँ,
धाए तिहुँ लोक पै न पावति पतीजियै।
कहै रतनाकर बिधाता सौं पुकारै जम,
खाता खीस होत सबै याही दुख छीजियै॥
पूछैं उठै गाजि तापै हँसत समाज सबै,
लाजनि कहाँ लगि लहू की घूँट पीजियै।
कैतौ कैद कीजियै कमंडल मैं गंग फेरि,
कैतौ यह साहबी हमारी फेरि लीजियै॥२॥

(१७) स्फुट काव्य

जाके सुर प्रबल प्रबाह कौ झकोर तोर
सुर-नर-मुनि-बृंद-धीर-बिटप बहावै है।
कहै रतनाकर पतिब्रत परायन की
लाज कुलकान कौ करार बिनसावै है॥
कर गहि चिबुक कपोल कल चूमि चाहि
मृदु मुसुकाइ जो मयंकहिँ लजावै है।
ग्वालिनि गुपाल सौँ कहति इठलाय कान्ह
ऐसी भला कोऊ कहूँ बाँसुरी बजावै है॥ १।

जब तैँ रची है रूप रावरे रसिकलाल
तब तैँ बनी है बाल बात बरकत की।
कहै रतनाकर रही है रुचि नैननि मैँ
मीन मुख मंजुल मुकुत ढरकत की॥
आठौ जाम बाम मग जोहत मृगी सी जब
चौँकै पाय आहट तिनूका खरकत की।
अनुराग रंजित अवाज सौँ कढ़त स्याम
मानिक तैँ मानहु मरीचि मरकत की॥ २॥

ज्यौँ भरि कै जल तीर धरी निरख्यौ त्यौँ अधीर ह्वै न्हात कन्हाई।
जानैँ नहीँ तिहिँ ताकनि मैँ रतनाकर कीनी कहा ढुनहाई॥
छाई कछू हरुवाई सरीर कै नीर मैँ आई कछू भरुवाई।
नागरी की नित की जो सधी सोई गागरी आजु उठै न उठाई॥३॥

लै लियौ चुंबन खेलत मैं कहूँ तापै कहा इतनौ सतरानी ।
होंठनि हीं मैं कछू करि सौंहैं बृथा भरि भौंह कमान हैं तानी ॥
लीजियै फेरि सबेर अबै अबहीं तौ मिठासहुँ नाहिं सिरानी ।
यौं कहि सौंहैं कियौ अधरा इन वे तिरछौंहैं चितै मुसकानी ॥४॥

स्वासनि की मृदु मंजुल बास सु एला बरास-बिलास बसावति ।
सील सकोच की रोचकता रतनाकर त्यौं रसता अधिकावति ॥
दाँतनि की दुति बातनि मैं बिथुरे त्वग छीरक की छबि छावति ।
पाटल की पँखुरी अधरानि कौं मंद हँसी गुलकंद बनावति ॥५॥

तंग अँगिया सौं तन्यौ चोटी सौं चमोटी पाइ
हिय हुमसावत सुढंग चल्यौ जात है ॥
कहै रतनाकर त्यौं जोबन उमंग भरचौ
ग्रीवा तानि उन्नत उतंग चल्यौ जात है ॥
पायौ मरुभूमि मैं कहाँ तैं इतौ पानिप जो
पूरत तरंग अंग अंग चल्यौ जात है ।
घूँघट बनाए ठमकत पैंड़ पैंड़ लखौ
एँड़त अनंग कौ तुरंग चल्यौ जात है ॥ ६ ॥

देति ही काल्हि ही सीख हमैं पर आपु ही आज मलोलन लागी ।
सामुहैं आयौ सुबोल बड़ौ अब तौ लघुता लिए बोलन लागी ॥
रूप-सुरा रतनाकर की चख तैं अँखियाँ इमि लोलन लागी ।
बावरी लौं बलि कुंजनि कुंजनि भाँवरी देत सी डोलन लागी ॥ ७ ॥

मोहन की मनमोहनी मूरति देखैं बिना कल पावत नाहीं।
देखैं अदेखिनि की अवली कहूँ तालु सौं जीभ लगावत नाहीं॥
कीजियै कैसी दई की दया मरिबेहूँ कौ ब्यौंत बनावत नाहीं।
मीच की कौन कहै रतनाकर नींद हूँ नीच तौ आवत नाहीं॥८॥

ठाढ़ी अबै चलि होहु कहूँ न तु बीर न भीर मैं पावँ थिरैंगे।
हाट औ बाट अटारिनि के घर-द्वारिनि के सब ठाम घिरैंगे॥
देखन कौं रतनाकर के बस नैंकु मैं एक पै एक गिरैंगे।
धेनु चराइ बजावत बेनु सुन्यौ इहिं गैल गुपाल फिरैंगे॥ ९॥

जोग का भोग न भैहै हमैं सो सँजोग की भावना टारी न जैहै।
रूप-सुधा-रतनाकर छाँड़ि तृषा मृग-नीर निवारी न जैहै॥
हौड़ न आइबे आइबे की परी ऊधव सो अब हारी न जैहै।
धारी न जैहै तिहारी कही वह मूरति मंजु बिसारी न जैहै॥१०॥

हटकन संभु कौ न मानि हठ ठानि चली
आई पितु गेह बात जानि सु उछाह की।
कहै रतनाकर तहाँ न सनमान पाइ
मन पछितान मैं बिलानी गति चाह की॥
पति अपमान मानि जदपि जराई देह
तदपि समस्या भई कठिन निबाह की।
भावी बस और की कहै को यौं सती हुती कै
ती हुती पतिब्रता कही न मानी नाह की॥ ११॥

दंत मुकतावली मैं निराली लसै लाली वलि
अधर चुनी तैं प्रभा नीलम की फूटी है।
कहै रतनाकर कपोल पद्मरागनि पै
कल कुरुबिंद की छबीली छटा छूटी है॥
कैसी मनवारी माल धारी है अनोखी यह
जाकी बिन गुन ही पत्यारी रहै जूटी है।
जूटी है कहाँ तैं यह संपति प्रबीन आज
कौन से नबीन जौहरी की हाट लूटी है॥ १२॥

जमुना-कछारनि पै बन-द्रुम-डारनि पै
औरै कछू मंजु मधुराई फिरि जाति है।
कहै रतनाकर त्यौं नगर अगारनि पै
बारनि पै बनक-निकाई फिरि जाति है॥
नर-पसु पच्छिनि की चरचा चलावै कौन
पौन गौनहू मैं सरसाई फिरि जाति है।
जहाँ जहाँ बाँसुरी बजावत कन्हाई बीर
तहाँ तहाँ मदन-दुहाई फिरि जाति है॥ १३॥

मन होत्यौ न जौ पहिलैं हीं तौ ता बिन होती न ऐसी दसा तन की।
रतनाकर जानै सु मानै बिथा निधि पाइ कै हाय गँवावन की॥
नहिं आनन की कछु आनन पै चतुराई चितै चतुरानन की।
हाथ ही पारिबौ हो मन जौ तौ रच्यौ किन मोहिँ बिना मन की॥१४॥

फूल मंडली कौ बर बानक बन्यौ है बन
चारौं आस सुख सुखमा की रासि छै रहीं।
कहै रतनाकर रसिकमनि स्यामास्याम
झूलत हिँडोरैं सखि चहुँघाँ उनै रहीं॥
केती रस घूमि रहीं केती झुकि झूमि रहीं
चूमि चूमि आँगुरी बलैया किती लै रहीं।
केती झनकारि नचैं नूपुर नगीना अरु
बीना लिए केतिक प्रबीना गान कै रहीं॥ १५॥

लै लियौ चुंबन तौऽब कहा अधरा तौ रह्यौ तुम पास तुम्हारौ।
एते ही पै इतनौ करि रोस कियौ इमि तेवर तानि करारौ॥
पै अपनौ तौ कियौ नहिँ देखतिँ लेखतिँ ताहि तौ खेल पसारौ।
देखौ हियैं धरि हाथ अहो तन मैं न रह्यौ मन हाय हमारौ॥ १६॥

भाव नए चित चाव नए अनुभाव नए उपराजति ही रहै।
आँस सौं नैन उसास सौं आनन गाँस सौं प्राननि छाजति ही रहै॥
कीजै कहा रतनाकर हाय अकाज के साजनि साजति ही रहै।
कानन मैं बिन बाजैं हूँ बैरिनि काननि मैं नित बाजति ही रहै॥ १७॥

लालसा लगीयै रहै भरि दृग देखन कौं
सुंदर सलोने वहै साँवरे पुरुष के।
जोहि जोहि मोहौं जाहि सो छबि न जोहौं फेरि
घेरि रहौं याही हेर फेर मैं बपुष के॥

पारावार सुखमा अपार के हलोरनि सौं
औरै और चोप चढ़ै होत सनमुख के।
पल पल माहिं होति प्लावित पयोनिधि मैं
बिपुल बियोग औ सँजोग दुख सुख के ॥१८॥

मोहे नैन जोहि कै सुरूप सुखमा कौ ऐन
स्रौन सुनि बैन जो सु-चैन-रस बोयौ है।
कहै रतनाकर रसीली रसना रुचि कौं
बतरस-लालच छकाइ छरि छोयौ है॥
सुखद सुबास पै लुभानी बास-बासना है
अंग-अंग परस उमंग-रस पोयौ है।
सोयौ है कहा पै तोहिं परत न जानि मोहिं
एरे मन जानि तैं अजान कहा मोयौ है ॥१९॥

खेलन कौं ख्याल औ गुलाल रंग मेलन कौं
साल पाछिले लौं संग सखिनि सिधारी मैं।
कहै रतनाकर पै अब कैं अनोखी कछू
अति बिरीपति रीति नवल निहारी मैं॥
हाँ तौ लख्यौ साबर-बसीकर-प्रभाव मंत्र
निपट स्वतंत्र गीति अटपटवारी मैं।
तंत्र-मूठि चलति गुलाल की निहारी अरु
मोहन कौ मंत्र जग्यौ जंत्र पिचकारी मैं॥२०॥

सारी सखी मंडली मनाइ समुझाइ थकीं
निज-निज गुन के गुमान सब गारैं हैं।
कहै रतनाकर रसिक मनि मोहन हूँ
मोहन कौं करि मनुहार मन हारैं हैं॥
एते माहिं धाइ लगी लाल के हिये सौं बाल
चातक कलापी दापी सुनि ललकारैं हैं।
ढारैं स्वच्छ सुरस सदाई घनस्याम तातैं
लच्छ करि पच्छ मोर-पच्छ सिर धारैं हैं॥२१॥

तौ कत अक्रूर क्रूर आए इहिं गाम लैन
एक ही सौं सो जो ठाम ठाम ठहरायौ है।
कहै रतनाकर हतायौ किन तासौं कंस
घट-घट जाकौ निरगुन गुन छायौ है॥
बिन सिर पाय की उचारन चले जो बात
ताकौ यहै कारन हमारैं मन आयौ है।
रूप तौ इहाँहीं रह्यौ हिय मैं हमारैं तुम्हैं
ताही तैं अरूप-रूप भूप दरसायौ है॥ २२॥

थाती राखि रूप की हमारी हाय छाती माहिं
बाल कौ सँघाती घाती बनि बिलगायौ है।
कहै रतनाकर सो सूधौ न्याव ही तौ ऊधौ
मधुपुरि माहिं जो अरूप सो लखायौ है॥

परम अनूप एक कूबरी विरूप छाँड़ि
रूपवती जुवती न कोऊ मोहि पायौ है।
तातैं तुम्हैं अब मनभावन सुरूप सोई
हिय तैं हमारे काढ़ि ल्यावन पठायौ है। २३ ॥

रूप-रतनाकर-अनूप-ओप आनन पै
बिलुलित लोल लट ललित लटूरी है।
मैन-मद-माते नैन ऐंड़-इठलाते बैन
जोबन कैं ठैन छक्यौ आसव अँगूरी है॥
रोम-रोम रमत निहारैं छबि पानिप सो
ताहू पै दरस रस-तृपति अधूरी है।
लहियत प्रान कान्ह लखत हजारनि पै
वारनि की होति तऊ लालसा न पूरी है ॥२४॥

ऐसी दसा लखि कै सखि रावरी बावरी होति न धीर धरयौ परै।
कौन के रूप के पानिप कौ रतनाकर यौं भरि कै उबरयौ परै॥
बूझैं न मानति भेद कछू पर स्वेद ह्वै रोमनि सौं सु ढरयौ परै।
बैननि सौं रस ह्वै निकरयौ परै नैननि सौं बनि आँस झरयौ परै ॥२५॥

१२—७—३०

आशा-व्योम-मंडल अखंड तम-मंडित मैं
उषा के शुभागम का आगम जनाता है।
उच्च-अभिलाषा-कंज-कलिका अधोमुख को
प्रान फूँक फूँक मुकुलित दरसाता है॥

भारत-प्रताप भानु उच्च उदयाचल से
कुहरा कुबुद्धि का चिरस्थित हटाता है।
भावी भव्य सुभग सुखद सुमनावली का
गंधी गंधवाहक सुगंध लिए आता है ॥ २६ ॥

२—८—३०

आई सहेट मैं भेंटन कौं चलि कान्ह की चेटक सी बतिया सौं।
देखी तहाँ इक सुंदरी नौल बिलोकति लोल कछू घतिया सौं ॥
लौटन कौं ज्यौं कियौ रतनाकर सोच सकोच सनी गतिया सौं।
त्यौं उन धाइ चितै हँसि कै कसि कै लपटाइ लई छतिया सौं ॥ २७ ॥

१२—८—३०

साँवरी राधिका मान कियौ परि पाइनि गोरे गुबिंद मनावत।
नैन निचौंहैं रहैं उनके नहिं बैन बिनै के न ये कहि पावत।
हारी सखी सिख दै रतनाकर आन न भाइ सुभाइ पै छावत।
ठानि न आवत मान उन्हैं इनकौं नहिं मान मनावन आवत ॥२८॥

१९—८—३०

बेष हमारौ किए कहा बैठि बिसूरति कुंजनि मैं बनवारी।
यामैं है घात कछू न कछू तुम हौ रतनाकर चेटक-चारी ॥
घात कहा गुनौ साँची सुनौ हम तौ यह बैठि मनावत प्यारी।
देखन कौं यह रूप अनूप तुम्हैं अँखियाँ दई देहि हमारी ॥२९॥

२९—८—३०

जानि बल पारुष बिहीन दलि दीन भयौ
आपने बिगाने हूँ कटाई जाति काँधी है।
कहै रतनाकर यौं मति गति साधी मची
जाकी क्रांति बेग सौं असांति महा आँधी है ॥

कुटिल कुचारी के निगीरन मुखारी पर
बक्र चाहि चक्र चरखे की फाल बाँधी है।
ग्रसित गुरंड-ग्राह आरत अथाह परे
भारत-गयंद कौ गुबिंद भयौ गाँधी है॥ ३० ॥
१—१—३१

बौरे बैद बींदत कहा धौं इहिँ रोग माहिँ
सारे जोग जतन अजोग-जोगवारे हैं।
कहै रतनाकर गुनत गारुड़ी तू कहा
यामैं जंत्र मंत्र तंत्र निपट नकारे हैं॥
हाय हितचिंतक चितावत कहा तू चिंति
चाव चित इनकैं अचिंत-गति-वारे हैं।
एरे गुनी गनक गुनत तू कहा धौं बैठि
प्रेमिनि के नभ मैं न ग्रह हैं न तारे हैं॥३१॥
८—१—३१

बिषम बियोग-रोग-पीर सौं अधीर ह्वै कै
बेदन कौ भेद मन बैद कौं सुनायौ है।
कहै रतनाकर सुनारी-उदबेग जानि
निपट निदान कै बिधान ठहरायौ है॥
नेह कौ पचैबौ तप्यौ जीवन अँचैबौ घूँटि
नींद भूख प्यास कौ बचैबौ समुझायौ है।
नैननि कैं पाथ क्वाथ कुमुद-हिये कौ कह्यौ
दलित करेजौ पथ्य पावन बतायौ है॥३२॥
३१—१—३[illegible]

चल चित चाहि इन्हैं चंचल बतावत पै
ये तौ आनि अचल हिये मैं करैं डेरे हैं।
कहै रतनाकर निकाम कामबान गनै
ये तौ कामना के घाय पूरत घनेरे हैं॥
कहत सरोज जे न पावत प्रमान-खोज
ये तौ रूप-पानिप-अनूप-मोज हेरे हैं।
कहत कुरंग जे न जानैं कछु रंग ढंग
परम सुरंग ये तिरंग नैन तेरे हैं॥ २३॥
६—२—३१

परम प्रचंड मारतंड की मरीचिनि सौं
ग्रीषम कौ भीषम प्रताप इमि छायौ है।
कहै रतनाकर मयंक मनि-कांत भयौ
सांत राति हू मैं पारि किरन जरायौ है॥
बहति लुवार मनौ दहति दवारि देह
कैधौं फनिपति फुफकार-झार लायौ है।
कोऊ किधौं बिकल बियोगिनि बिनै कै फेरि
तीसरो त्रिलोचन को लोचन खुलायौ है॥ २४॥
७—२—३१

कूजन लगे हैं पिक पंचम रसीले राग
गूँजन लगे हैं भौंर-संघ सुघराई मैं।
कहै रतनाकर रसाल बौरि झूलि उठे
फूलि उठे सुमन अनंद अधिकाई मैं॥

साजन लगे हैं साज सुखद सँजोगी-गन
बाजन लगे हैं बाज बिसद बधाई मैं ।
दंत लागे चाँपन बियोगी कहि हाय हंत
संत लागे काँपन बसंत की अवाई मैं ॥ ३५ ॥
८—२—३१

नाचत स्याम सदा इन पै तऊ ये तौ रहैं दिखसाध मैं सानी ।
चाहति रूप कौ लाहु लहैं पै सहैं सुख संपति नित हानी ॥
है बिपरीत महा रतनाकर रीति परै इनकी नहिं जानी ।
पानिप ही की तृषारत हैं तऊ ढारति हैं अँखियाँ नित पानी ॥ ३६ ॥
११—२—३१

करति बिचार नाहिं घाम छाहिं हूँ कौ कछू
चाहन-उमाह सौं अथाहनि भरी रहै ।
कहै रतनाकर सु रोकत रुकै न रंच
टोकत सखीनि हूँ कैं बिलखि लरी रहै ॥
लटकि मुरेरे सौं करेरे कुच टेकि नैकुं
कान दिये आहट पै थानहिं थरी रहै ।
जब तैं निहारी लाल रावरी छटा री बाल
तब तैं अटारी आनि अटकि अरी रहै ॥ ३७ ॥
१०—२—३१

लाल पै गुलाल की चलाई राधिका जो मूठि
झूठि ह्वै परी सो कर-कंपन तैं खोटी है ।
कहै रतनाकर सम्हारि पिचकारी उन
प्यारी कुच-कोर कौं निहारि उत जोटी है ॥

नैंकु नैन सौंहैं तैं टरै न इनके सोभाइ
मुरि मुसुकाइ जो पिछौंहैं चोट ओटी है।
चोटी लहरी जो लुरि पीठि पै सुहागिनि की
नागिनि है कान्ह के करेजैं वह लोटी है ॥३८॥

तरुवर-झुंड कहूँ झुकि झहरात कहूँ
सघन लतानि के बितान झपि झूमि रहे।
कहै रतनाकर कहूँ हैं सर ऊसर औ
कहूँ कुस कास के बिलास भरि भूमि रहे॥
फुदकि बिहंग कहूँ कौंपल कँपावै कहूँ
कुदकि प्लवंग कहूँ साखनि कौं दूँमि रहे।
जुरत जलासनि चरासनि कुरंग संग
बाघ कहूँ तिन पै लगाए लात घूमि रहे ॥३९॥
१४—२—३१

तरनि तनूजा तीर बीर अवलोक्यौ आज
बर ब्रजराज साज सुषमा अभाषी कौ।
रस रतनाकर की तरल तरंगनि सौं
होत चल बिचल सुचित्त अभिलाषी कौ॥
चाह भरि चाहिबौ सराहिबौ उमाहि ताहि
थाहिबौ है अमित अकास लघु माखी कौ।
पूरती कछूक रूप-रासि लखिबे की आस
आँखिनि मैं होत्यौ जौ निवास सहसाखी कौ ॥४०॥
१५—२—३१

छूटै जटा जूट सौँ अटूट गंगधार धौल
मौलि सुधागार कौ अधार दरसत है।
कहै रतनाकर रुचिर रतनारे नैन
कलित कृपा कौ चारु चाव सरसत है॥
चारौँ कर चारौँ फल बितरत चारौँ ओर
और लेन हारे ना निहारैँ अरसत है।
दै दै बरदान ना अघात पंच आनन सौँ
देखि सहसानन सिहात तरसत है॥४१॥
१५—२—३१

आए बुझावन कौँ ब्रज मैँ पर
ब्रह्म हुतासन की लव लावत।
है रतनाकर-मीत अहो नहिँ
रंचक धीरज-नीर सिँचावत॥
लाज की आहुती पारि चले इत
ताही सौँ ऊधव हाय कहावत।
लाइ गए हरि आगि बियोग की
औ तुम जोग की बात चलावत॥४२॥
१७—२—३१

खेलन मैँ मिस कै गुलाल मूठि मेलन कौ
नैननि अनूठी मूठि चेटक की दै गयौ।
कहै रतनाकर सुरंग रंग पारि अंग
स्याम निज रंग हियैँ रुचिर रचै गयौ॥

करि कै बहानौ मनमानौ फाग भैंटन कौ

बीज अनुराग कौ सु रोमनि मैं बै गयौ।

जानी पहिलैं तौ हाय होली की ठठोली पर

चोली की टटोली मैं मरोरि मन लै गयौ ॥४३॥

१८—२—३१

कीजियै हाय उपाय कहा

अपने सियराइबे कौं हमैं दाहतिँ।

रूप-सुधा रतनाकर की सु-

चखावन काज निरंतर नाहतिँ॥

और रहीं कितहूँ की नहीं

अँखियाँ दुखियाँ उतही कौं उमाहतिँ।

ऐसी भई दिखसाध असाध कै

देख्यौ अबै पुनि दोखिबौ चाहतिँ ॥४४॥

१८-२-३१

देखिबे कौँ अकुलानी रहैं नित

पीर सौँ रंचक धीर न धारतिँ।

त्यौँ रतनाकर रैन-दिना कलपैं

पल पै पल नैंकु न पारतिँ॥

ये अँखियाँ पँखियाँ बिनु हाय

सहाय कौँ और न ब्यौँत बिचारतिँ।

धाइबे कौँ उत ध्याइ मनाइ कै

पाइनि पै जल-अंजलि ढारतिँ ॥४५॥

१८—२—३१

राधिका कौ इक चित्र लिए कोऊ
आई सकाति सँभारति चीरैं ।
पाइ चितेरिनि त्यौर मैं सो
रतनाकर औरही आतुरी-भीरैं ॥
ठाढ़ी छकी सी रही पल रोकि
बिलोकि चकी सी रहीं सब बीरैं ।
दोय तैं एक भए मन दोऊ के
एक तैं ह्वै गईं द्वै तसवीरैं ॥ ४६॥

१९—२—३१

एक ही साँचौ स्वरूप अनूप है
खाँचौ यहै मन एक लकीरैं ।
त्यौं रतनाकर सेस कौ भेस
असेस लसैं भ्रम की भरी भीरैं ॥
ता बिनु और जो देखि परै
थिति ताकी सुनौ औ गुनौ धरि धीरैं ।
लोचन द्वैतता दोष लगैं
यह एक तैं ह्वै गईं द्वै तसवीरैं ॥४७॥

१९—२—३१

सासु के नैंकु न त्रास गुनै
न सुनै कछु सीख जो देति जिठानी ।
त्यौं रतनाकर आन धरै न तौ
कान करै सखियानि की बानी ॥

देखन ही की सु घात मैं डोलति
बोलति बात सबै बिततानी
रोवत रोवत ही अब तौ गिरि
बाकी गयौ अँखियानि कौ पानी ॥४८॥

२०—२—३१

नीरव दिगंगना उमंग रंग-प्रांगन में
जिसके प्रसंग का अभंग गीत गाती हैं।
अतुल अपार अंधकार विश्वव्यापक में
जिसकी सुज्योति की छटाएँ लहराती हैं।
जिसके अमंद मुखचंद के बिलोके बिना
पारावार-तरल-तरंगें उफनाती हैं।
पाने को उसी की बाँकी झाँकी मन-मंदिर में
मंद मुसकाती गिरा गुप्त चली आती हैं ॥४९॥

औधि तौ ज्यौं त्यौं व्यतीत भई अब
जात न धीरज बोधि धरयौ है।
त्यौं रतनाकर बातनि सौं न तु
पातिनि सौं तन-ताप सरयौ है॥
आपुहीं धारियै पाइ उतै हम पै
तौ उपाय न जाय करयौ है।
प्रान उसास ह्वै जात उड़यौ अरु
आँसु ह्वै जीवन जात ढुरयौ है॥५०॥

४—३—३१

चोरमिही चिनि-हार-गिलानि न
मानि इतौ मन मैं अवसेरौ ।
प्यारी दिवारी की रैनि अहो
रतनाकर सौं इमि नैन न फेरौ ॥
चुंबन की बदि बाजी अबै तुम
सारि लै आपनैं हीं कर गेरौ ।
हार औ जीत हू कौ सुख सौं रहै
रावरे ही मुख सौं निबटेरौ ॥५१॥

१२—३—३१

तू तौ कहै अलकावली भौंर सी
मो मत ये अलि आहिं जजीरैं ।
तोहिं तौ कंज से नैन लगैं पर
मैन के बान लौं मोहिं बिदीरैं ॥
है कछु नैननि ही कौ बिबेक कै
एक सौं ह्वै गईं द्वै तसबीरैं ।
तोहिं तौ मूक है चित्र पै मोहिं
बतावत भाव बिचित्र की भीरैं ॥५२॥

२५—३—३१

निकसत चारु चुभकी लै मुख मंडल पै
केसनि कौ कलित कलाप मढ़ि आयौ है ।
मानौ निज बैरि के कढ़त रतनाकर तैं
व्योम तैं पसरि तम-तोम बढ़ि आयौ है ॥

ताहि सरुझाइ उझकाइ सीस टारचौ बाल
भाव यह चित पै सचाव चढ़ि आयौ है।
मानौ मंद राहु के निवारि तम फंद बंद
अमल अमंद चारु चंद कढ़ि आयौ है ॥५३॥

१५—४—३१

आवत ही सुधि रावरी रंचक
ही मैं हजार हुलास भरैं हैं।
औ रतनाकर नाम लिऐं सु
उसास ह्वै आनन आनि अरैं हैं॥
जानि यहै मन मैं रतनाकर
रावरे पंथ की धूरि धरैं हैं।
राखत आँखिनि मैंन रहैं
अँसुवा बनि पाइनि आनि परैं हैं॥५४॥

१५—४—३१

कोऊ उठै काँपि कोऊ रहति करेजौ चाँपि
कोऊ झाँपि ठौरही ठगी सी मढ़ि जाति है।
कहै रतनाकर त्रिभंगी कौ सुधंग चाहि
गोपिनि कैं और ही उमंग बढ़ि जाति है॥
रीझै काहि जोहि काहि चाहत रिझैबौ मोहिँ
सो तौ बात त्यौरि सौं न ब्यौरि पढ़ि जाति है।
जितै जितै चारु चितै भ्रकुटी बिलासै कान्ह
तितै तितै काम की कमान चढ़ि जाति है॥५५॥

२४—४—३१

लै अधरानि की माधुरी मंजुल
ऊष महूष हूँ लाजति ही रहै।
भावनि के रतनाकर मैं
अलखी लहरैं उपराजति ही रहै॥
प्राननि मैं हिय मैं अँग अंग मैं
यौं धुनि पै धुनि छाजति ही रहै।
कानन मैं तो बजै न बजै
पर काननि बाँसुरी बाजति ही रहै॥५६॥

२९—४—३१

आली दिन द्वैक तैं न जानैं कहा कौतुक सौं
तन मन माहिँ देखि दरसन लाग्यौ री।
बैठत उठत बतरात जल जात गात
कछु न जनात कहा अरसन लाग्यौ री॥
लखि रतनाकर की बंक भ्रकुटी कौ लोच
अकथ सकोच सोच परसन लाग्यौ री।
तरसन लाग्यौ जिय जानति न जानि कहा
औरै रंग ढंग अंग सरसन लाग्यौ री॥५७॥

२३—५—३१

गोकुल गावँ मैं फाग मच्यौ
हुरिहारनि के उर आनँद झूले।
मूठ चलावत स्याम चितै
रतनाकर नैन निमेष हैं भूले॥

लाल गुलाल की धूँधरि मैं
ब्रज-बालनि के इमि आनन तूले।
काम-कलाकर की मनौ मूठ सौं
पावकपुंज मैं पंकज फूले॥५८॥
२४—५—३१

सेस दिनेस लैं श्री अवधेस को
लाइ चिता चित सूल सौं हूले।
जानकी जाइ निसंक चढ़ी
रतनाकर मानि दई अनुकूले॥
आनन नैन प्रसन्न महा लखि
देव अदेव सबै सुधि भूले।
गौरि गिरा मन माहिं कह्यौ
मनौ पावक पुंज मैं पंकज फूले॥ ५९॥
२४—५—३१

फूले फूले फिरत कहौ तौ तुम कापै अहो
याकी तौ महत्ता सत्ता सब कछु जानी है।
कहै रतनाकर बिडंबना विचित्र जेती
जीवन के चित्र सौं न अधिक प्रमानी है॥
हाँ सौं नहीं होति औ नहीं सौं होति हाँ है सदा
तातैं हाँ चहैयनि नहीं सौं रुचि मानी है
इहिं भवसागर मैं स्वास आसही पै बस
पानी के बबूले सी थिरानी जिंदगानी है॥६०॥
२४—५—३१

भारत निर्बासिनि कौ सहन-सुभाव देखि
बिस्व चकरान्यौ परि बिस्मय भ्रमर मैं
कहै रतनाकर बिलोकी बीरता तौ बहु
ऐसी पर धीरता न नर मैं अमर मैं ॥
एक ओर कुंतल कृपान घमसान तोप
एक ओर टूटी हू कटारी ना कमर मैं ।
भूले से भ्रमे से भकुवाने से बिलोकि रहे
हारि रहे हिंसक अहिंसा के समर मैं ॥६१॥
२४—५—३१

लागैं नैकुं नैननि अचैन चित-ऐन भरैं
अंग करैं सकल अनंग मतवारे हैं ।
कहै रतनाकर बढ़त तन ताप होत
दरस-तृषा सौं प्रान परम दुखारे हैं ॥
औषध उपाय ना बिहाइ बिष सोई और
तलफत हाय परे नंद के दुलारे हैं ।
धारे सुरमे की सान-ओप अनियारेअति
लोचन तिहारे बलि बिसिष बिसारे हैं ॥६२॥
२५—५—३१

आए हैं कहाँ तैं कहाँ जाइबौ कहाँ है फेरि
काकी खोज माहिँ फिरैं जित तित मारे हैं ।
कहै रतनाकर कहा है काज तासौं पुनि
काज औ अकाज के बिभेद कत न्यारे हैं ॥

सिंह-पौर सज्जित सौं लज्जित करत काम
नैन अभिराम स्याम जमकत आवै है।
कहै रतनाकर कृपा की मुसक्यानि मढ़्यौ
आनन अनूप चारु चमकत आवै है॥
माते मद-गलित गयंद लौं सु मंद-मंद
चलि चलि ठाम ठाम ठमकत आवै है।
दमकत दिव्य दिपत अनूप-रूप
झाँझरौ मुकुट झूमि झमकत आवै है ॥६६॥

१—८—३१

देखत तुम्हैं ना तौ कहा हैं नैन देखत ये
सुनत तुम्हैं ना तौऽब स्रवन सुनैं कहा।
कहै रतनाकर न पावैं जौ तिहारी बास
नासा तौ प्रसूननि सौं ललकि लुनै कहा।
तेरे बिनु काकौ रस रसना लहति यह
परसन माहिं त्वक अपर चुनैं कहा।
कोऊ धुनैं ज्ञान की कहानी मनमानी बैठि
अलख लखैयनि कौं हम पै गुनैं कहा ॥६७॥

१—९—३१

देखैं नभ-मंडल तैं सहित अखंडल के
मंडल अखंड सब सुरनि अनी के हैं।
कहै रतनाकर न पावैं पर कोऊ लखि
कौतुक अनोखे आज होत जो अलीके हैं॥

पाइ निज तारौ नैन स्रवन चवाइनि के
खुलि गए द्वार कारागार के दरी के हैं।
नींद सौंपि आपनी प्रगाढ़ पाहरू गन कौं
जागि उठे भाग बसुदेव देवकी के हैं ॥६८॥

५—९—३१

आवन लगी है दिन द्वैक तैं हमारैं धाम
रहै बिनु काम जाम जाम अरुझाई है।
कहै रतनाकर खिलौननि सम्हारि राखि
बार-बार जननी चितावत कन्हाई है॥
देखीं सुनी ग्वारिनि कितेक ब्रज बारिनि पै
राधा सी न और अभिहारिनि लखाई है।
हेरत हीं हेरत हरयौ तौ है हमारौ कछू
काह धौं हिरानौ पै न परत जनाई है॥६९॥

१९—१०—३२

राका रजनी की सज नीकी गंग की यौं लसैं
मानौ मुकता के भरे थार थलकत हैं।
कहै रतनाकर यौं कल धुनि आवै होति
मानौ कलहंसनि के गोत ललकत हैं॥
हिलि मिलि मंद लहरी के माल-जालनि पै
झिलिमिल चंद के अनंद झलकत हैं।
मानौ चारु चादरे बिसाल बादले के बने
पवन प्रसंग सौं सुढंग हलकत हैं॥७०॥

१५— ७—३१

गमकत मंजु कहूँ प्रफुलित कंज-गंज
गुंजरत जापै अलि-पुंज झमकत हैं।
कहै रतनाकर सिवारनि के झारनि मैं
करत झमेला कहूँ चेल्हा चमकत हैं॥
लोल लहरी की सुखमा पै हेम-मंडित कै
अरुन प्रकास के बिलास दमकत हैं।
तट तटिनी के चख चंचल जहाँ हीं जात
चंचलता त्यागि कै तहाँ हीं ठमकत हैं॥७१॥
१५—१२—३१

सरद निसा की सरिता की सुखदाई छवि
हेरत हीं हेरत हिये मैं सरसाति है।
कहै रतनाकर अमंद चंद्रिका के परैं
सारी जरतारी की छटा री छहराति है॥
मीन दृग चंद्र-बिंब आनन सिवार केस
कल कल नूपुर की सु धुनि सुहाति है।
सज्जित सिँगार अभिसारिका रसीली मनौ
जीवन-अधार कैं अगार चली जाति है॥७२॥
१५—१२—३१

लाए घात बाघ कौं बिलोकि हूँ टरैं ना मृग
आएँ पास मृग हूँ पै बाघ ना झरापै है।
कहै रतनाकर लगाए थन आनन मैं
बछरा न चाँपै औ न गाय पय आपै है॥

पाय परयौ पन्नग हूँ रहत रिसैबौ रोकि
जब नँदनंद नैकुँ बाँसुरी अलापै है।
भोगिनि की पाँसुरी सु साध छाप छापै नई
जोगिनि की साँसु री समाधि थिर थापै है ॥७३॥

१७—१२—३१

पावस अमावस की रैनि मैं बिलोकी जाइ
सुर-सरिता पै छबि छलकति छाजी है।
कहै रतनाकर चहूँघाँ अंधकार-रासि
अवनि अकास एकमेक रुचि साजी है ॥
हिलिमिलि तामैं धौल धार की अनोखी छटा
कबि-मुख चोखी चारु उक्ति उपराजी है।
तम-गुन-तोम गिरि कज्जल के बीच मनौ
उज्जल सतोगुन रजत रेख राजी है ॥७४॥

१७—१२—३१

एहो लंदनेस नंदनेस लौं बिराजे रहौ
छाजे रहौ छाया सुभ नीति सुरबेली की।
ह्वै है सांति फेर वाही भाँति भव्य भारत मैं
पाँति पछितैहै क्रांतिकारिनि झमेली की ॥

....

....

पैहै एक बाल एकबाल कम होन नाहिँ
ढाल कम ना है एक मालकम हेली की ॥७५॥

ललकति लोनी लटैं ललित कपोलनि कौं
अधर अमोलनि बुलाक थलकति है।
कहै रतनाकर रुचिर ग्रीव-सीव पाइ
दुलरी दमकि दुलराइ दलकति है॥
अंग अंग आनँद तरंग की उमंग उठैं
आनन पै मंजु मुसुकानि छलकति है॥
फलकति काँधैं चढ़ी चटक पिछौरी पीत
हुलसि हिये पै बनमाल हलकति है॥७६॥
२८—१—३२

तेरौ रोस रुचिर सदोस हू ह्वै हेरन कौं
लागी मन लालसा न नैंकुँ डगि जाति है।
कहै रतनाकर रुखाई माहिं मान हूँ की
सहज सुभाव सरसाई खगि जाति है॥
फीकी चितवनि हूँ न नीकी भाँति जानी जाति
तामैं लोल लोचन लुनाई लगि जाति है।
कहति कछू जो कटु बानि हूँ अठान ठानि
आनि अधरा सो मधुराई पगि जाति है॥७७॥
५—२—३२

गंग-कछार कैं मंजुल बंजुल काक कोऊ महा मोद उफानै।
देखत प्राकृत सुंदरता पद प्राकृत ही के हियैं ठिक ठानै॥
पाइ सुधा-सम बारि अघाइ न आपनी जोट कोऊ जग जानै।
हंस कौं हाँस मजूर मयूर कौं कोइला कोकिला कौं मन मानै॥७८॥
३२—५—२

राँच्यौ रति जाग नींद सौंपि कै हमारै भाग
सो तौ सोध आप ही झपकि ठहि देत हैं ।
बाढ़ै उहिं प्यारी-मुख मंजुल सुधाकर सौं
रस-रतनाकर की थाह थहि देत हैं ॥
पानिप के अमल अगार सुख सार तऊ
लाइ उर दुसह दवारि दहि देत हैं ।
नैन बिन-बानी कहि कबिनि बखानी बात
ये तौ पर सकल कहानी कहि देत हैं ॥७९॥

२९—४—३२

दुख सुख रावरे हमारे ह्वै रहे हैं एक
सारे भेद-भाव के पसारैं दरे देत हैं ।
कहै रतनाकर तिहारे कजरारे ओंठ
कालकूट नैननि हमारैं धरे देत हैं ॥
जावक के दाग रहे जागि रावरैं जो भाल
सो तो मम अंतर अँगारैं भरे देत हैं ।
कठिन करारे कुच उर जो तिहारे अरे
हिय मैं हमारे सो दरारैं करे देत हैं ॥ ८० ॥

१—५—३२

फाटि जात बसन हिये मैं लागि काँट जात
कैसैं डाँट आपने बिराने की बरैहैं हम ।
कहै रतनाकर त्यौं सखिनि सहेलिनि के
कूट-कालकूट-घूँट घातक अँचैहैं हम ॥

अब लौं भई सो भई कब लौं दई कै गई
  ननद-जिठानी-सास-त्रास सिर सैहैं हम।
लैहैं बर बेली चारु चटक चमेली चुनि
  सुमन गुलाब के न चुनन सिधैहैं हम ॥ ८१ ॥
५—५—३२

कलित कलापी पन्नगेस मोती-मात मंजु
  खंजरीट कीर के सरीर जात जाने हैं।
कहै रतनाकर बलाक कल कोकिल औ
  पारावत चारु चक्रवाक रुचि साने हैं॥
कोमल पुरैनि-पात सुढर मलिंद-पाँति
  केहरि करिंद हंस कविनि बखाने हैं।
ढंग पसु पच्छिन के तेरैं अंग अंगनि ज्यौं
  रंग मानहूँ मैं त्यौं अमानवी समाने हैं ॥ ८२ ॥
११—५—३२

सघन सुदेस केस-कलित-कलाप हेरि
  ललित अलाप कै कलापी बहकत हैं।
कहै रतनाकर तिहारी भ्रकुटी की सान
  देखि देखि कुसुम-कमान अहकत हैं॥
अधर बिलोकि कीर लोलुप अधीर होत
  बानी ढंग कान कै कुरंग गहकत हैं।
ठहकत भौंर भोर जात कुंज-कानन कौं
  रैनि चाहि आनन चकोर चहकत हैं ॥८३॥
१३—५—३२

देखि तव आनन अपार सुखमा कौ भार
चित्त चतुरानन कैँ अजगुत जाग्यौ है।
कहै रतनाकर सुधा के मंजु आकर सौँ
तोलन कौँ ताहि लोल अति अनुराग्यौ है॥
समता न पाइ पै उपाय करिबे कौँ कछू
हमता लगाइ ममता सौँ मोह पाग्यौ है।
तारनि की रासि सौँ बढ़ायौ तासु गौरब पै
तौ हूँ पला चंद कौ अकास जाइ लाग्यौ है॥८४॥
१४—५—३२

देखि तव आनन अनूप सुख रूप महा
जाकी सुखमा कौ जग होत गुन-गुंज है।
कहै रतनाकर सुधाकर बनावै बिधि
ताकी समता कौँ हमता कैँ परि तुंज है॥
तेरौ दिब्य दुति सो न दीपति बिलोकि ताकी
सकुचि सिहाइ होति मति गति लुंज है।
तोरि तोरि डारत बिथोरि रिस भारनि सौँ
होत दिसि चारनि सो तारनि को पुंज है॥८५॥
१६—५—३२

जारे देत किंसुक उजारे देत गंधबाह
दाप कै बिचारे बिरहीनि के निकर पै।
कहै रतनाकर प्रचारि बाट पारे देत
पिक मतवारे ब्यथा-मारे की डगर पै॥

एहो ऋतुराज कैसौ राज है तिहारौ हाय
जामैं बली गाजि गाज गेरत निबर पै।
काम हूँ जनावै बल आनि अबलानि ही पै
करत न वार पै नकार गिरिधर पै ॥ ८६ ॥
१७—५—३२

होत चल अचल अचल चल होत अहो
होत जल पाहन पखान जल-खाता है
कहै रतनाकर अनंग अंग धारि नयौ
स्वर-सर साधत न जाकौं जग-त्राता है ॥
रहतिं न रूँधी ब्रजबाम चलैं सूधीं धाइ
त्याग्यौ पति पतिनी स्वपूत त्याग्यौ माता है।
संचि संचि मूर्छना प्रपंच षटराग पागि
कान्ह मुख लागि भई बाँसुरी बिधाता है ॥८७॥
१८—५—३२

फेरि मुख नैननि निबेरि कहा बैठी बीर
रावरौ कटाच्छ महा तीर बृथा छीजै ना।
कहै रतनाकर निहारि ये तिहारे ढंग
कान्हर कैं और हूँ उमंग अंग भीजै ना॥
प्रीति-रंग-भूमि-नीति-निपुन नवेलिनि कौ
सखिनि सहेलिनि कौ हास सिर लीजै ना।
आर करि कीजै निचवार नीठि हूँ ना दीठि
रार करि बैरी कौं अनैरी पीठि दीजै ना॥ ८८ ॥
२०—५—३२

लखि ब्रजराज कौ लड़ैतौ उहिँ ग्वैंड़ अरी
पैंड़ पैंड़ ऐंड़ि पग धारत चलत है।
कहै रतनाकर बिछाई मग आँखिनि के
लाख अभिलाषनि उभारत चलत है॥
सुमन सुबास लाइ रुचिर बनाइ रच्यौ
कंदुक अनंद सौं उछारत चलत है।
करि करि मनौ हाथ मन दिखवैयनि के
परखत पारत सँभारत चलत है॥ ८९॥
२१—५—३२

संग यैँ तरैयनि के राका रजनीस चारु
चौहरे अटा पै छटा बलित बिराज्यौ है।
कहै रतनाकर निहारि सो नवेली निज
आनन सौं करन-मिलान-ब्यौंत साज्यौ है॥
संग लै सयानी सखियानि नियरान चली
पग-पग नूपुर-निनाद मग बाज्यौ है।
ज्यौं-ज्यौं मंद-मंद चढ़ी आवति गरूर बढ़ी
त्यौं त्यौं मद-चूर चंद दूरि जात भाज्यौ है॥९०॥
३—६—३२

सकत न नैकुँहूँ सँताप सहि मित्रनि के
होत आप द्रवित गिरीस सुखकारी हैँ।
कहै रतनाकर सु थँभत न थाँभौ फेरि
चलत धधाइ भए औढर ढरारी हैँ॥

कृपा-छमा-दान-बरदान-सनमान रूप
थाह-हीन प्रचुर प्रवाह होत भारी हैं।
एक गंग-धारी तुम्हैं कहत सबै हैं पर
आप तौ पुरारी किये पंच गंग जारी हैं॥९१॥
६—६—३२

देखि मुगलदल मैं बिबस प्रताप परयौ
आड़े कैलवाड़े कौ सु झाला झूमि आयौ है।
कहै रतनाकर स्वदेस अनुरक्ति आनि
स्वामि-भक्ति ठानि प्रान पानि धरि धायौ है॥
चीरि भीर काढ़यौ ताहि तुरत अलच्छित कै
लच्छ परपच्छिनि कौ आप कौं बनायौ है।
दीन्ही भुजा साथ मेदपाट की धुजा लै हाथ
हेम-छत्र लै कै छेम-छत्र सिर छायौ है॥९२॥
९—६—३२

रानी पृथिराज की निहारति सिँगार-हाट
पारति सु दीठि गथ बिबिध बिसाती पै।
कहै रतनाकर फिरी त्यौं फँसी फंद बीच
लपक्यौ नगीच नीच धरम अराती पै॥
परसत पानि आनबान राजपूती आनि
औचक अचूक घात कीन्ही घूमि घाती पै।
झटकि झटाक कर पटकि धरा पै धरी
काती-नोक गब्बर अकब्बर की छाती पै॥९३॥
१६—६—३२

(१८) दोहावली

भौं चितवनि डोरे बरुनि असि कटार फँद तीर ।
कटत फटत बँधत बिंधत जिय हिय मन तन बीर ॥ १ ॥

कापैं तेरे दृगनि की कही बड़ाई जाइ ।
त्रिभुवन जाके मुख बसै सो जिहिं रह्यौ समाइ ॥ २ ॥

किये लाल जब तैं ललकि बाल-नैन निज ऐन ।
बरुनी ओट उसीर की तब तैं सींचत मैन ॥ ३ ॥

छाके नेह निरास की तब लौं प्यास न जाइ ।
जब लौं हियौ अघाइ नहिं दृग-सर-पानिप पाइ ॥ ४ ॥

चित चितवनि कौं दीन्यौ बिन तकरार ।
सहत्यौ कौन तगादौ बारंबार ॥ ५ ॥

ऋनी धनी सौं हैं परत यों परिहरत उदोत ।
देखत दिनकर दरस ज्यौं चंद मंद-मुख होत ॥ ६ ॥

चंद-मुखिनि के बृंद-बिच निरतत श्री ब्रजचंद ।
एते चंद बिलोकि भो चंद चकित-चित मंद ॥ ७ ॥

नभ जल थल नैना करत निसि दिन रहैं अहेर ।
खंज मीन मृग कहन के बाज ग्राह अरु सेर ॥ ८ ॥

सौति-फंद ब्रजचंद लखि चंद-गहन मन मानि ।
देन चहंति जिय-दान तिय तुरत न्हाइ अँसुवानि ॥ ९ ॥

आस-पास मैं परि रह्यौ प्रान-पखेरू पाइ ।
हाय करत पंजर गरत परत न तऊ उडाइ ॥ १० ॥

नव नीरद-दामिनि-दुति जुगल-किसोर।
पेखि मुदित मन नाचत जीवन मोर ॥११॥

ब्रज-जीवन-जीवन सो जीवन मोर।
ब्रज जीवन जीवन सो जीवन मोर ॥१२॥

पिय पयान की बतियाँ सुनि सखि भोर।
आँस नहीं दृग आवत जीवन मोर ॥१३॥

जतन परोसी-चैन कौं करिबौ अति सुख देत।
सुनत कहानी कान ज्यौं नैन-नींद के हेत ॥१४॥

ऊँचौ नीचौ ह्वै रहत अगनित लहत उदोत।
जात सिंधुतल सुक्ति परि मुक्ति स्वाति-जल होत ॥१५॥

संतत पिय प्यारे बसत मो हिय दर्पन माहिं।
धँसत जात त्यौं त्यौं सखी ज्यौं ही ज्यौं बिलगाहिं ॥१६॥

होत सीस नीचौ निपट नीच-कुसंगति पाइ।
परत बारि-बिच जाइ ज्यौं काम छाइ दरसाइ ॥१७॥

सुबरन-कनक प्रभाव तैं सुमन-कनक कौ बीस।
वह महीस कैं सीस यह चढ़त ईस कैं सीस ॥१८॥

दारिद-बाय प्रभाय सौं पीड़ित जाकी देह।
ताके क्लेस निसेस कौं चहत धनेस-सनेह ॥१९॥

दारिद-दुख सौं जासु हिय होय दीन छत छीन।
साधक ताकी ब्याधि कौ कहत मृगांक प्रवीन ॥२०॥
मोसे तारौ तौ बदौं तारैं कहा पषान।
बानर हूँ के परस सौं होति सिला जलजान ॥२१॥
बरुनी के नीके बने द्वै पिँजरे कलदार।
फाँसत खंजन-नैन औ फँसत नैन रिझवार ॥२२॥